स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

०

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन, एम. ए., डी. लिट्.

डॉ. आ० ने० उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्.

०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

०

[illegible] : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ० विक्रम सं० २००० ० १८ फरवरी सन् १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANPITHA MURTIDEVI JAIN GRANTHAMALA SANSKRIT GRANTH No. 29

BHOJACHARITRA

of

SHRI RAJAVALLABHA

with

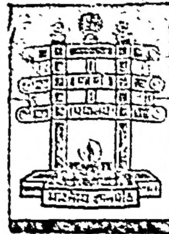
ENGLISH INTRODUCTION, NOTES & APPENDICES

EDITED BY

Dr. B. Ch. CHHABRA, M.A., M.O.L., Ph. D. (Lugd.), F.A S.,
Joint Director General of Archaeology in India.

and

S. SANKARANARAYANAN, M. A., Siromani,
Assistant Superintendent for Epigraphy.



BHARATIYA JNANPITHA PUBLICATION

VIRA SAMVAT 2490
V. S. 2020, 1964 A. D.

First Edition
Rs. 8/-

BHĀRATĪYA JÑĀNPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAIN GRANATHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂŚA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

General Editors

Dr. Hiralal Jain. M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

●

Bharatiya Jnanpith
Head office : 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office : Duragakund Road, Varanasi-5.
Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr. 1944

ग्रन्थमाला सम्पादकीय

यह बात सच है कि भारतीय प्राचीन साहित्यमें पूर्णतः ऐतिहासिक कृतियोंका प्रायः अभाव है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस साहित्यमें ऐतिहासिक तथ्यों और व्यक्तियोंका कोई उल्लेख या परिचय ही न हो। यहाँ ऐतिहासिक घटनाओं और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियोंका उतना ही परिचय मिलता है जितना मानवीय जीवनमें आदर्श व उत्कर्ष लाने तथा नीति और सदाचार स्थापित करनेके लिए आवश्यक समझा गया। जैन साहित्यमें प्रायः सर्वत्र ही प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे इस प्रकारके उल्लेख ओत-प्रोत हैं। जैन अर्धमागधी आगमसे लेकर समस्त प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश रचनाओंमें तथा आधुनिक भाषात्मक कृतियोंमें सैकड़ों आख्यान व उल्लेख ऐसे पाये जाते हैं जिनसे भारतीय प्राचीन इतिहासकी अस्पष्ट कड़ियोंको जोड़नेमें बड़ी सहायता मिलती है। मध्यकालीन साहित्यमें तो अनेक ऐसे कथानक, प्रबन्ध, चरित्र और रास मिलते हैं जिनके नायक सर्वथा ऐतिहासिक पुरुष हैं। हाँ इतना अवश्य है कि उनमें ऐतिहासिक तत्त्वोंके अतिरिक्त अतिशयोक्ति व अलौकिक बातोंका भी इतना समावेश हो गया है कि उक्त दोनों भागोंको पूर्णतः पृथक् कर यथार्थताका निर्णय करना जरा टेढ़ी खीर है।

इस सन्दर्भमें प्रस्तुत ग्रन्थ अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें ग्यारहवीं शतीके भारतीय सम्राट् भोजका चरित्र वर्णित है। राजा भोजके कथानक भारतीय आख्यान-परम्परामें बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। वे ऐसे दानशील और विद्याप्रेमी थे कि बल्लाल कविने अपने भोजप्रबन्धमें भारतके कालिदास व भारवि-जैसे प्राचीन महाकवियोंको उनकी राजसभामें ला बैठाया है और एक-एक सुन्दर पद्यकी रचनापर उन्हें एक-एक लक्ष सुवर्णमुद्राएँ दान करते हुए दिखलाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ भोज-सम्बन्धी कथा-श्रृंखलाकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसके रचयिता राजवल्लभ जैनधर्मके अनुयायी व पाठक थे, तथा उन्होंने अन्नदानकी महिमा बतलानेके लिए यह रचना की। वे राजा भोजसे प्रायः चार सौ वर्ष पश्चात् पन्द्रहवीं शतीके मध्यभागमें हुए थे। ग्रन्थके देखनेसे स्पष्ट है कि उन्होंने अपने समयमें उपलभ्य भोजराजसम्बन्धी सभी वार्ताओंका संग्रह कर उन्हें अपने ढंगसे रीतिबद्ध शैलीमें रखनेका प्रयत्न किया है।

इस संस्कृत पद्यात्मक रचनाका प्रथम बार सम्पादन श्रीमान् डॉ० बहादुरचन्द्र छाबड़ा तथा श्री एस० शंकरनारायणन् ने आठ प्राचीन प्रतियोंके आधारसे किया है। जिनमें सबसे प्राचीन प्रति संवत् १४९८ (सन् १४४१) की है, और यही उन्होंने कर्ताके कालकी अन्तिम अवधि मानी है। ग्रन्थका सम्पादन बहुत कुशलतासे किया गया है, तथा प्रस्तावनामें ग्रन्थ व उसके कर्ताके सम्बन्धकी समस्त ज्ञातव्य बातोंका विद्वत्तापूर्ण रीतिसे विवेचन किया गया है। इस बहुमूल्य देनके लिए हम प्रथितयश विद्वान् सम्पादकोंके बहुत कृतज्ञ हैं। ऐसी महत्त्वपूर्ण प्राचीन रचनाओंको आधुनिक ढंगसे सुसम्पादित कराकर प्रकाशित करनेके लिए भारतीय ज्ञानपीठ व उसका अधिकारी वर्ग धन्यवादके पात्र हैं।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
ग्रन्थमाला सम्पादक

जबलपुर स्टेशन
२७-१२-१९६३

Contents

scholarship in so many varied fields of knowledge, must ever remain a remarkable personality in the record of time".[1] Moreover the Udayapur *prasasti*[2] declares that Bhoja "made the world worthy of its name by covering it all around with temples dedicated to different deities,"[2] though no such work of art is now extant to corroborate such claim. We have got many epigraphs which attest that Bhoja was a great soldier and statesman. Thus viewing him from different angles it is well said that "as a conqueror, as a poet and as a builder of architecture, he deserves a high place among the sovereigns of ancient India. As a benevolent monarch he had already no parallel. He left behind him an abiding impression that survives even to this day."[3] Therefore it is quite natural that he had many admirers and panegyrists not only during his lifetime but also during the centuries after his death; and consequently "about few kings of India have more myths accumulated than about Bhoja or Bhojadeva."[4]

Pathaka Rājavallabha, the Jaina author of the *Bhojacharitra* which is being edited in this book was one such admirer of Bhoja.

THE CRITICAL APPARATUS

DESCRIPTION OF THE MANUSCRIPTS

The following eight manuscripts have been utilized for editing this work :

I-III manuscripts are from the Bhandarkar Research Institute, Poona, which are called here as P1, P2 and P3. These are Nos. 1236, 1237 and 1238 of the *Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Government Manuscripts Library,* B.O.R.I., Poona, 1950.

IV manuscript is from the Ātmānanda Jain Library, Ambala, here referred to as A.

V manuscript is from the Punjab University Library, Lahore, here marked as L.

VI-VIII manuscripts are from the Śrī-Ātmarāmā Jaina Jñānamandir, Baroda, which we call here as B1, B2 and B3.

P1 is a complete, neatly written and well preserved manuscript, consisting of 39 numbered leaves, each measuring about 9.8" x 4", with 16 or 17 lines of writing on each side, bounded by treble red marginal lines. It begins with : आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान्। चरित्रमन्नदानस्य कुर्वे कौतूहलप्रियम् ॥१॥ and ends in : वसुनवोदधिइन्दुमिते समे बहुलमासितेतरद्वादशी। अमृतसूनुदिने वरपुस्तकं अपि प्रचारु मया लिखितं मुदा ॥ The details of the date given here, viz. year 1498 *(Vasu-nava-udadhi-indu),* evidently of the Vikrama era, Ba(Bā)hula (i. e. Kārttika) ba. 12 and Amṛitasūnu-dina, regularly correspond to Monday, November 21, A. D. 1440. The Vikrama year was current.

1. Ray, op. cit., p. 872.
2. Op. cit., p. 286 : सुराश्रयैर्व्याप्य च यः समन्ताद्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार ॥ (Verse 20).
3. Ganguly, op. cit., p. 122.
4. Tawney: The *prabandhachintamani*, (English Translation 1901) p.x.

Since Rājavallabha, as shown below, lived in the first half of the 15th century, this manuscript was evidently written during his lifetime. It is, however, difficult to say whether the word *maya* in the concluding verse refers to Rājavallabha himself. A close examination of this manuscript, anyway, shows that portions of its text were copied from some other manuscript, most probably P3.

P2 is a worn out manuscript, consisting originally of 37 leaves, each measuring about 10.8" x 4.8" and bearing on either side 16 or 17 lines of writing, bounded by treble black marginal lines. The first leaf is missing.

It begins with :.........नमामि ॥ आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in: इति श्रीभोजचरित्रं समाप्तम् । संवत् १७५९ आषाढमासे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने शनिवासरे ॥ लिखितं मिहिरचन्द्र-ऋषि[णा] आत्मार्थे । शुभं भूयात् कल्याणमस्तु लेषकपाठक[योः] शुभं भवतु ॥१॥ छ ॥ श्री ॥ समाणे नगरमध्ये लिषतम् आत्मार्थे शुभं भवतु कल्याणमस्तु ॥ छ ॥ श्री ॥ छ ॥

The details of the date, at the end, viz. V. S. 1759, Āshāḍha śu. 6 and S'ani-vāsara, regularly correspond to Saturday, June 20, A. D. 1702.

P3 is a neatly written, well preserved and complete manuscript, consisting of 27 numbered leaves, each measuring about 10.8" x 4.4" and bearing 17 or 18 lines of writing on either side bounded by fourfold black marginal lines. It begins with : आश्वसेनिं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति धर्मघोषगच्छे राजवल्लभकृते भोज-चरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराजसज्जीभवनवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः ॥ छ ॥ श्रेयोस्तु । This manuscript is not dated. However, as indicated above, it may be the original copy from which at least some portions were copied by the scribe of P1. We may therefore assign P3 also to the period of Rājavallabha himself. It is noteworthy that this manuscript contains the least number of mistakes.

A is a complete, neat and well preserved manuscript, consisting of 57 leaves, each measuring about 10.2" x 4.4", and bearing 13 to 15 lines of writing on either side bounded by treble red marginal lines.

It begins with : श्रीवीतरागाय नमः ॥ आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति श्रीधर्मघोषगच्छे धर्मसूरिसन्ताने पाठकराजवल्लभकृते श्री भोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराज-सज्जीभूतवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः श्रीभोजचरित्रं समाप्तमिति भद्रम् संवत् १६६५ वर्षे प्रथमभाद्रपदमासि[1] द्वितीयातिथौ गुरुवासरे गणिरत्नसागरलिखितं साङ्गानगरे शुभं भवतु ॥

The details of the date, viz. V. S. 1165, the first or *adhika* Bhādrapada, probably ba. 2 and Guru-vāsara, regularly correspond to Thursday, August 18, A. D. 1608. The ital ended at .55 of the previous day.

L is an incomplete manuscript with leaves 1, 3, 27–33, 36–37, 39-41, 51, 66 and a few at the end missing. Each leaf measures about 11.5" x 4.7", and bears 9 to 11 lines of writing on either side bounded by double red marginal lines.

It begins with : पट्टराज्ञीपदे न्यस्ता नाम्ना रत्नावलीत्यहो । भुनक्ति तत्समं भोगान् राज्यलीलो-चितान् सुखम् ॥१०॥ and ends in : स्वरक्षार्थं वररुचिः स गतोन्यत्र कुत्रचित् । प्राप्तो मृगाक्षिणी लात्वा ववक्रोपि नृपान्तिके ॥ ७१ ॥ Unfortunately the last leaf, which might have contained the details of the date, is missing.

---

1. Probably the expression like *bahula-paksha* is inadvertently omitted after this word.

B1 is a complete and well preserved manuscript, consisting of 43 numbered leaves, each measuring about 11.5" x 4.5", and bearing 13 to 16 lines of writing on either side bounded by fourfold black marginal lines. There are many verses written in the margins of the first ten pages. They appear to have been meant to supplement the text. We shall discuss them in the explanatory notes at the end.

It begins with : आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति धर्मघोषगच्छे श्रीधर्मसूरिसन्ताने मूलपट्टश्रीमहीतिलकसूरिशिष्यपाठकश्रीराजवल्लभकृते भोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः ॥ ५ ॥ संवत् १६८० वर्षे आश्विनसुदि १० दिने शुक्रवारे धनिष्ठानक्षत्रे लिखितं त्प(?)लवरदुर्गे वा° देवकीर्तिलिखितम् आत्मार्थे शुभं भूयात् ॥ श्री ॥ सत्कर्मा दहते नारी स्व(सु)शीला कुलवर्धनी । दुष्कर्मा या (सा?) दहतेव कलौ विद्वान्न विश्वसेत् ॥

The details of the date, viz. V.S ,1680 Ās'vina su. 10, S'ukra-vāra, and Dhanishṭhā *nakshatra*, regularly correspond to Friday,October 4,A.D. 1622. The Vikrama year 1680 was current Chaitrādi.

Some irrelevant matter is added at the end of this manuscript, written by a different hand in a local dialect, recording the consecration of some deities like Rakta Bhairava in V. S. 1825, Māgha su, 5 (?).

B2 originally consisted of 33 numbered leaves, very thin and well written, each measuring about 11.1" x 4. 2", and bearing 15 to 17 lines of writing on either side bounded by treble red marginal lines. The first three leaves are now missing. It starts with : जिते च लभ्यते लक्ष्मीर्मृते चापि सुराङ्गनाः । and ends in : इति धर्मघोषगच्छे धर्मसूरिसन्ताने मूलपट्टे श्रीमहीतिलकसूरिशिष्यपाठकश्रीराजवल्लभकृते श्रीभोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराजसज्जीभूतवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः ॥ छ ॥ श्रीसण्डेरकीयगच्छे श्रीजिशोभद्रसूरिसन्ताने तत्पट्टे श्रीसुमतिसूरिः तत्पट्टे श्रीशान्तिसूरयः । तदन्वये श्रीशान्तिसूरिविजयराज्ये वा० श्रीनदकुञ्जरद्वितीयस(शि)ष्यमु० हंसराजः । श्रीभोजचरित्रं सम्पूर्णं कृतम् । शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु लेखकपाठकयोः ।

This manuscript is not dated. However if this S'āntisūri mentioned in the colophon, in whose time Haṁsarāja claims to have completed copying this manuscript, is identical with his namesake of the Saṇḍerakagachchha for whom the inscriptions supply dates in V. S. 1532 to V. S. 1572 (A. D. 1475-1515)[1], this manuscript may be assigned to that period.

Further on, at the end of the manuscript, there is some writing by a different hand, which runs : पं । राजविजयानां पौस्तकमिदं पं० शक्तिविजयपार्श्वे विक्रयेण गृहीतम् ॥

B3 contains 103 numbered leaves, each measuring about 9. 5" x 4. 9", and written on both sides. Each page contains seven lines of Sanskrit text. Above each line there are two lines of commentary in a local dialect written in smaller characters. The margin is marked by double red lines on either side. It starts with : आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति श्रीघोषगच्छे[2] धर्मसूरिसन्ताने पाठकराजवल्लभकृते श्रीभोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराजसज्जीभूतवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः । ५ । इति भोजचरित्रं सम्पूर्णम् ॥ ग्रन्थाग्रन्थ सर्वश्लोक ६००० श्रीनागोरनयरे संवत् १८८४ रामिती पोषवदि ५ तिथौ श्री ॥

1. Puran Chand Nahar : *Jaina inscriptions*, Part I, Calcutta, 1918, Nos. 820, 751, 824, 564, 626, 593 and 611.

2. Obviously meant for श्रीधर्मघोषगच्छे.

The details of the date viz. V. S. 1884, Pausha ba 5, do not admit of verification.

All the above manuscripts have been written in what Professor Peterson called Jaina Nāgarī[1] An examination of these manuscripts reveals these facts : P1, P3 and L form more or less one group and are generally correct in their readings; P2, A, B1 and B2 form a second group with some mistakes crept in; and B3, though it follows B1, is hopelessly corrupt. In other words, in manuscripts the 'earlier the better'.

RAJAVALLABHA

The colophon at the end of each *prastava* of the *Bhojacharitra* tells us that Rājavallabha was a *pathaka* or teacher and was a *sishya* i. e. student or follower of Mahītilakasūri of the *Dharmaghoshagachchha* evidently of the S'vetāmbara Jaina sect. Besides these no other details about him are available. Yet there are inscriptions of the time of Mahītilakasūri of the same *gachchha* dated from V.S. 1486 to V.S. 1513 or 1429-56 A. D[2]. Therefore we may assign our author Rājavallabha also to more or less the same period. Again one of the manuscripts, viz. P1, bears, as we have seen the details of a date which correspond to November 21 A.D. 1440; and this manuscript appears to be copied from some other manuscript, probably P3. From this it is evident that Rājavallabha had completed his *Bhojacharitra* by 1440 A. D. or a little earlier.

THE BHOJACHARITRA : AN ESTIMATE

Rājavallabha's *Bhojacharitra* is divided into five *Prastavas* or topics. There are altogether about 1575 verses of which about 35 verses are in Apabhraṁśa and the other verses are in Sanskrit, though Prakrit words are found here and there even in the Sanskrit portion. The distribution of verses in each *prastava* is as follows : I contains about 334 verses; II 89 verses, III 164 verses; IV 601 verses and V 288 verses. They have been written mainly in the simple *Anushtubh* metre, though we occasionally come across verses in other metres also like *Indravajra*, *Upendravajra*, *Salini*, *Vasantatilaka*, *Sardulavikridita*, *Sragdhara*, *Arya* etc. of which many are quotations from other works. A general reader may easily find that the work of Rājavallabha is not of a high literary standard. There are numerous errors in grammar and in syntax. In some places Rājavallabha is very vague in his expression and description; in some other places he does not hesitate to drop letters of some words or to add synonyms for the sake of metre. Instead of composing new stanzas, he prefers often to quote those of other authors. Sometimes his ignorance of geography of India and lack of time cons-

---

1. Tawney, op. cit. p. xix., Cf. *Prabandhachintamni, Singhi Jaina Series*, No. 1, Introduction, plate between pp. 6-7.
2. *Jaina Inscriptions*, Nos. 1180, 2311, 1144, 1492 and 1538; *Bikaner Jaina Lekhsangraha*, Nos. 901 and 1985.

B1 is a complete and well preserved manuscript, consisting of 43 numbered leaves, each measuring about 11.5" x 4.5", and bearing 13 to 16 lines of writing on either side bounded by fourfold black marginal lines. There are many verses written in the margins of the first ten pages. They appear to have been meant to supplement the text. We shall discuss them in the explanatory notes at the end.

It begins with : आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति धर्मघोषगच्छे श्रीधर्मसूरिसन्ताने मूलपट्टश्रीमहीतिलकसूरिशिष्यपाठकश्रीराजवल्लभकृते भोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः ॥ ५ ॥ संवत् १६८० वर्षे आश्विनसुदि १० दिने शुक्रवारे धनिष्ठानक्षत्रे लिखितं त्व(?)लवरदुर्गे वा° देवकीर्तिलिखितम् आत्मार्थे शुभं भूयात् ॥ श्री ॥ सत्कर्म दहते नारी स्व(सु)शीला कुलवर्धनी । दुष्कर्मा या (सा?) दहतेव कलौ विद्वान्न विश्वसेत् ॥

The details of the date, viz. V.S ,1680 Ās'vina su. 10, S'ukra-vāra, and Dhanishṭhā *nakshatra*, regularly correspond to Friday,October 4,A.D. 1622. The Vikrama year 1680 was current Chaitrādi.

Some irrelevant matter is added at the end of this manuscript, written by a different hand in a local dialect, recording the consecration of some deities like Rakta Bhairava in V. S. 1825, Māgha su, 5 (?).

B2 originally consisted of 33 numbered leaves, very thin and well written, each measuring about 11.1" x 4. 2", and bearing 15 to 17 lines of writing on either side bounded by treble red marginal lines. The first three leaves are now missing. It starts with : जिते च लभ्यते लक्ष्मीर्मृते चापि सुराङ्गनाः । and ends in : इति धर्मघोषगच्छे धर्मसूरिसन्ताने मूलपट्टे श्रीमहीतिलकसूरिशिष्यपाठकश्रीराजवल्लभकृते श्रीभोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराजसज्जीभूतवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः ॥ छ ॥ श्रीसण्डेरकीयगच्छे श्रीजिशोभद्रसूरिसन्ताने तत्पट्टे श्रीसुमतिसूरिः तत्पट्टे श्रीशान्तिसूरयः । तदन्वये श्रीशान्तिसूरिविजयराज्ये वा० श्रीनदकुञ्जरद्वितीयस(शि)ष्य-मु० हंसराजः । श्रीभोजचरित्रं सम्पूर्णं कृतम् । शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु लेखकपाठकयोः ।

This manuscript is not dated. However if this S'āntisūri mentioned in the colophon, in whose time Haṁsarāja claims to have completed copying this manuscript, is identical with his namesake of the Saṇḍerakagachchha for whom the inscriptions supply dates in V. S. 1532 to V. S. 1572 (A. D. 1475-1515)[1], this manuscript may be assigned to that period.

Further on, at the end of the manuscript, there is some writing by a different hand, which runs : पं । राजविजयानां पौस्तकमिदं पं० शक्तिविजयपार्श्वे विक्रयेण गृहीतम् ॥

B3 contains 103 numbered leaves, each measuring about 9. 5" x 4. 9", and written on both sides. Each page contains seven lines of Sanskrit text. Above each line there are two lines of commentary in a local dialect written in smaller characters. The margin is marked by double red lines on either side. It starts with : आश्वसेनं जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् । and ends in : इति श्रीघोषगच्छे[2] धर्मसूरिसन्ताने पाठकराजवल्लभकृते श्रीभोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराजसज्जीभूतवर्णनो नाम पञ्चमः प्रस्तावः । ५ । इति भोजचरित्रं सम्पूर्णम् ॥ ग्रन्थाग्रन्थ सर्वश्लोक ६००० श्रीनागोरनयरे संवत् १८८४ रामिती पौषवदि ५ तिथौ श्री ॥

1. Puran Chand Nahar : *Jaina inscriptions*, Part I, Calcutta, 1918, Nos. 820, 751, 824, 564, 626, 596 and 611.

2. Obviously meant for श्रीधर्मघोषगच्छे.

The details of the date viz. V. S. 1884, Pausha ba 5, do not admit of verification.

All the above manuscripts have been written in what Professor Peterson called Jaina Nāgarī[1] An examination of these manuscripts reveals these facts : P1, P3 and L form more or less one group and are generally correct in their readings; P2, A, B1 and B2 form a second group with some mistakes crept in; and B3, though it follows B1, is hopelessly corrupt. In other words, in manuscripts the 'earlier the better'.

RAJAVALLABHA

The colophon at the end of each *prastava* of the *Bhojacharitra* tells us that Rājavallabha was a *pathaka* or teacher and was a *sishya* i. e. student or follower of Mahītilakasūri of the *Dharmaghoshagachchha* evidently of the Śvetāmbara Jaina sect. Besides these no other details about him are available. Yet there are inscriptions of the time of Mahītilakasūri of the same *gachchha* dated from V.S. 1486 to V.S. 1513 or 1429–56 A. D[2]. Therefore we may assign our author Rājavallabha also to more or less the same period. Again one of the manuscripts, viz. P1, bears, as we have seen the details of a date which correspond to November 21 A.D. 1440; and this manuscript appears to be copied from some other manuscript, probably P3. From this it is evident that Rājavallabha had completed his *Bhojacharitra* by 1440 A. D. or a little earlier.

THE BHOJACHARITRA : AN ESTIMATE

Rājavallabha's *Bhojacharitra* is divided into five *Prastavas* or topics. There are altogether about 1575 verses of which about 35 verses are in Apabhraṁśa and the other verses are in Sanskrit, though Prakrit words are found here and there even in the Sanskrit portion. The distribution of verses in each *prastava* is as follows : I contains about 334 verses; II 89 verses, III 164 verses; IV 601 verses and V 288 verses. They have been written mainly in the simple *Anushtubh* metre, though we occasionally come across verses in other metres also like *Indravajra, Upendravajra, Salini, Vasantatilaka, Sardulavikridita, Sragdhara, Arya* etc. of which many are quotations from other works. A general reader may easily find that the work of Rājavallabha is not of a high literary standard.There are numerous errors in grammar and in syntax. In some places Rājavallabha is very vague in his expression and description; in some other places he does not hesitate to drop letters of some words or to add synonyms for the sake of metre. Instead of composing new stanzas, he prefers often to quote those of other authors. Sometimes his ignorance of geography of India and lack of time cons-

---

1. Tawney, op. cit. p. xix., Cf. *Prabandhachintamani, Singhi Jaina Series*, No. 1, Introduction, plate between pp. 6–7.
2. *Jaina Inscriptions*, Nos. 1180, 2311, 1144, 1492 and 1538; *Bikaner Jaina Lekhsangraha*, Nos. 901 and 1985.

ciousness are manifested—He enhibits very little originality and his theme is more or less based on that of the *Prabandhachintamani* and the *Kathasaritsagára*. These points have been discussed and explained in the explanatory notes at the end of the book.

In spite of all these defects, the story narrated by Rājavallabha is, in general, as interesting as the legends of Vikramāditya. It does amply serve the purpose of the author, viz. to explain the merit of the *anna-dana* or offering food to the hungry, and to illustrate the greatness of the religion of Mahāvīra. Again a student of the Jaina *ptabandhas* and inscriptions of the later mediaeval period may not attach much importance to the above mentioned errors which may be serious only according to the classical Sanskrit and Pāṇini's grammar. For, the Jaina literature and inscriptions are meant to edify the congregation, the majority of which can neither twist their tongues, nor understand what is spoken, according to Pāṇini's rules. One may have to bear in mind the fact that, for the purpose of preaching, both the Buddha and Mahāvīra preferred the language of the ordinary man to that of Pāṇini. All these factors must have contributed to the fact that from the days of Rājavallabha down to the last century, the *Bhojacharitra* had been continuously popular enough, at least among the Jaina schools, as shown by the dates of the manuscripts, to be copied and recopied and also to be commented upon. No doubt Rājavallabha very closely follow Merutuṅga to record the traditions based on some historical events. Yet sometimes he exhibits, as we shall see while analysing the historical facts, some originality and adds to our knowledge some informations which are not altogether unsupported by epigraphic materials.

SUMMARY

PRASTĀVA I : Once upon a time, the king Sindhu of Mālava found a male child on a heap of the *munja* grass in a forest. He took it and gave it to his queen Ratnāvalī so secretly that everyone believed that she herself had given birth to the child. The king named it Muñja. Shortly afterwards Ratnāvalī really became preganant and gave birth to a male child which was named Sindhula.

When both Muñja and Sindhula came of age, king Sindhu once went to the palace of Muñja and disclosed to him his origin. He, however, promised to give the kingdom to him, entreating him at the same time to take Sindhula under his protection. In order to guard the secret, Muñja went to the extent of killing his own wife who happened to have overheard the above conversation. Sindhu, accordingly, consulted his minister S'ivāditya, enthroned Muñja and appointed S'ivāditya's son, Rudrāditya, as the minister. In course of time, Sindhu went to heaven.

Now, the *yuvaraja* Sindhula was very obedient and loyal to the king Muñja who, however, was inwardly afraid and envious of Sindhula's strength. Muñja

managed to get him blinded secretly through some wrestlers, but protected him by granting him some villages. After sometime Sindhula's wife Ratnāvalī gave birth to a male child who was named Bhoja. The king wanted to let the child be exposed to death in the forest, owing to a manipulatedly ill-boding horoscope thereof. Fortunately the child was saved at the timely production of the correct horoscope, which revealed that Bhoja was to rule over the entire Dakshiṇāpatha together with Gauḍa for fifty-five years, seven months and three days.

When Bhoja was eight years old, the king, being jealous of the boy's excellent character, beauty, strength and virtues, determined to put him to death and passed orders accordingly. The executioners failed to kill the prince, because they were very much captivated by his personality. They hid the boy and informed Muñja that Bhoja had been duly executed, at the same time delivering a letter which, they said, the dying prince had given. It contained a verse saying : "There had been great kings like Māndhātṛi, Rāma and Yudhishṭhira in the past. None of them could take this earth along. You are sure to take it with you." This stanza moved the king so much that he shed tears and intended to commit suicide out of repentance. At that moment, the executioners disclosed the truth. The king rejoiced, revealed his own origin and crowned Bhoja as the king of Mālava, retaining for himself part of the army for carving out a separate kingdom for himself.

Muñja began invading the country ruled by Tailapa, in spite of Rudrāditya's sound advice to the contrary. In the war, as envisaged by the minister, Muñja was defeated and imprisoned by Tailapa. In the prison Muñja fell in love with Mṛiṇālavatī, a servant maid *(dasi)*, and was foolish enough to disclose to her the secret way by which Bhoja had planned to liberate Muñja. She betrayed him to Tailapa. Consequently Muñja was humiliated, taken round the streets like a monkey and finally impaled in public. This sad news reached Dhārā and the sorrow of Bhoja, Sindhula and others knew no bounds.

Time went on and once there came a scholar by name Sarasvatīkuṭumba every member of whose family was a good poet. King Bhoja honoured all of them, fell in love with Sarasvatīkuṭumba's beautiful daughter Guṇamañjarī, married her, and was living happily thereafter.

Once Bhoja happened to witness a drama in which the story of Muñja's defeat and humiliation at the hands of Tailapa was enacted. That kindled the fire of anger and revenge in Bhoja who consequently invaded the land of Tailapa, defeated him and meted out the same treatment to him as the latter had done to Muñja.

Bhoja had four priests, called Devaśarman, Śivāditya, Sarvadhara and Mahāśarman. Devaśarman's son was Vararuchi who managed the affairs of the kingdom jointly with Bhoja. Śivāditya's son was Māgha, the reputed author of the *Maghakavya* (i. e. *Sisupalavadha* ?) living in Śrīmāla. Sarvadhara of Avantī had two sons, Dhanapāla and Śobhana. Once there came a Jaina teacher, Susthitāchārya of Siddhasena's line. Sarvadhara came under his influence and promised to dedicate one of his sons as his disciple. Consequently his younger son, Śobhana, embraced Jainism. Dhanapāla bitterly hated Jainism, but gradually realised its greatness through Śobhana's influence. Later, not only he himself became a staunch

follower of the Jaina *Dharma*, but also succeeded in convincing Bhoja of its superiority over the Vedic religion. Afterwards Dhanapāla wrote treatises, like the *Rishabhapanchasika*, made pilgrimages to several Jaina holy places, and finally attained *nirvana*.

PRASTĀVA II : Once king Bhoja received, for discrimination, three skulls from the lord of Kaliṅga, sent through the latter's son Jayasena. Bhoja cleverly graded them : the best, the mediocre and the worst, by an ingenious method of thrusting a thread into their ears. The world of scholars wondered at Bhoja's intelligence.

On another occasion, the king was pleased to learn that an exceptionally beautiful princess, Saubhāgyasundarī, daughter of Vairisiṁha, a ruler in the south, was in love with him. He contrived to marry her. She was unrivalled for her learning. Once she mocked at Bhoja's inability to understand the true import of what she uttered in a particular situation. Bhoja took the mockery so much to heart that he intensified his efforts to acquire learning. He soon outshone all the learned persons and won for himself the extraordinary title of *Kurchalasarasvati*.

Once there arose a controversy in which Vararuchi maintained that instinct was more powerful than acquisition in the living creatures, while according to Bhoja quite the reverse was the case. In support of his stand, the latter called in his tame cat, which, as already trained, danced with a lamp on its head in front of the deity at the time of worship. In order to prove his thesis, next time, Vararuchi let loose a rat in the presence of the cat which at once left dancing and pounced upon its prey. Bhoja thus had to accept defeat.

Once king Bhoja inveigled two *Rakshasas* and got through them, from their master, the rule of Laṅka, Vibhīshaṇa, 2000 gold bars, earning thereby the title of *Upangachakravarttin*.

PRASTĀVA III : Once Bhoja felt curious to know the cause why he had become an overlord of so many chiefs and a ruler of such a wealthy and vast kingdom. The enlightenment came from a *Rakshasa* who told him the following story :

"Once upon a time there was a prince, Dharaṇa by name, living with his consort Dhanaśrī in Satyapura of Marudeśa. He had three sons named Devarāja, Śivarāja and Sāraṅga, and three daughters Dāmū, Nāmū and Shemī. After Dharaṇa and Dhanaśrī had died, there arose a terrible famine which continued for twelve years. At last, there was a good rain and a good crop. The brothers and sisters sat for a real good meal after the long interval of twelve years. As they were about to start eating, there appeared a Jaina monk who had been starving for a month. Thereupon Devarāja readily offered the whole of his share of food to that monk, volunteering himself to starve as before. Devarāja was, however, helped by Śivarāja and Shemī with parts of their shares of food. Devarāja, in his next life, became Bhojadeva thanks to the merit of his *annadana* to a good man. Similarly, Śivarāja, for having given a share of his food to his brother, Devarāja, became Vararuchi; and Shemī, as she had given a small part of her share of food to Devarāja, became Lakshmīdēvī in a Vaiśya family. Dāmū had not cared for anybody, so she became the potteress Somā. As Nāmū and Sāraṅga had cursed Devarāja and others for their charity, they became respectively the outcast Śūlikā and the *Rākshasa*, the interlocutor of Bhoja".

Having thus learnt the root cause behind his greatness, Bhoja established many feeding houses for the sake of the poor.

Once Bhoja lent himself to the craze of acquiring the lore of *Parakāya-Pravesa* 'entering another's body,' from a mischievous *yogin*. During the process of learning, the king's soul left his body and entered that of a parrot. At once the *yogin* made his own soul enter the lifeless body of Bhoja and acted as such. The soul of the real Bhoja in the body of the parrot thus became helpless. The ministers, could, however, make out the pseudo-Bhoja from his behaviour and speech, but felt helpless. Vararuchi's intelligence saved the king's harem from the *yogin* by providing for him some dancing girls.

PRASTĀVA IV : Now, Bhoja in the form of the parrot ultimately found refuge in the court of the king Chandrasena of Chandravatī. The king was astonished to see the intelligence of the parrot and brought it up with all care. The parrot once mocked at the vanity of S'aśiprabhā, the chief queen of Chandrasena, and persuaded the king to marry Pushpāvatī, the daughter of the queen Trailokyasundarī and the king Ugrasena of the city of Kāñchana in the south. He advised him (Chandrasena) to be adventurous and tactful in marrying Pushpāvatī, like Vikrama who, under the disguise of the women-hating Sechānaka, tactfully married the men-hating Sechānikā, daughter of Rūpachandra, the king of Vāruṇa in the west. As advised by the parrot, Chandrasena pretended to be a faithful follower of Jainism and married Pushpavātī.

Once Madanamañjarī, a daughter of Chandrasena, sought the advice of the parrot about a suitable husband for herself from among the kings of various countries. The parrot advised her to marry Bhoja and related the story how Bhoja married Satyavatī, a daughter of the *Sūtradharā* Somadatta; how he wanted to test her intelligence by neglecting her altogether; how Satyavatī was clever enough to overcome all the difficulties and had a son Devarāja by name from Bhoja himself; and how at last Bhoja, pleased with her astonishing cleverness, made her his chief queen. As advised by the parrot, Madanamañjarī fell in love with Bhoja. Chandrasena arranged for the marriage of Madanamañjarī and pseudo-Bhoja. Just before the marriage ceremony started, Madanamañjarī, being advised by the parrot, declared that she would marry Bhoja only if he exhibited his art of entering another's body. Having no other go, the wicked man in the form of Bhoja had to yield and entered the body of a dead kid. Thereupon Bhoja lost no time, left the body of the parrot, entered his own, got up and called out his ministers, generals and others by name, in his usual majestic manner. Soon everybody came to know that the real Bhoja had come back. Now Bhoja married Madanamañjarī with joy, came back to Dhārā and was ruling the earth happily as before.

PRASTĀVA V : Bhoja's queen Madanamañjarī was delivered of a male child which was named Vatsarāja. Now Devarāja, the elder, and Vatsarāja, the younger, grew up and became proficient in various arts at the tender age of twelve and nine years respectively.

Once, when Bhoja was sleeping, both the boys, Devarāja and Vatsarāja, made much noise. The king got up, and in his rage ordered that both the boys should quit the kingdom at once. He added further that they could come back,

provided they brought with them the celestial nymph Bhānumatī of Indra's court. The boys obeyed the order, left the country, embarked in a ship and started their voyage to a far off land. During the course of their voyage, they encountered a tempest when the mariners anchored the ship. When the storm subsided, all of them tried to lift up the anchor, but in vain.

Now Devarāja lept into the sea to lift up the anchor. To his astonishment, he found in the abyss a huge Jina temple in which the anchor had been caught. Instead of just lifting the anchor, Devarāja entered the temple, met there an old celestial nymph from whom on enquiry he learnt how Jina Visited Śrīpurabefore he attained *moksha* as the spot in question was then called; how his son Bharata had built up a very huge temple there on an elaborate scale and entrusted it to the care of Indra; how the sixty-thousand sons of Sagara had excavated the ocean around the temple for fear lest the people should damage the temple; how consequently the temple was submerged in the sea; and how all the sixty-thousand sons of Sagara were killed by the angry Indra. He also came to know how the selfsame aged nymph had been put in charge of the temple by Indra. Meanwhile there came Bhānumatī, man-hating daughter of the old nymph. The moment she saw Devarāja, she cursed him to ashes. Then she worshipped Jina and went back to the heaven. The old nymph was deeply moved with grief over the death of Devarāja. She went to the heaven, prayed Indra, got heavenly ambrosia, came back, sprinkled it over the ashes, and Devarāja came to life again. As ordered, Devarāja was produced by the old nymph before Indra in the heaven. Indra was very pleased to see him and was displeased with Bhānumatī whom he cursed that she should go down to the earth and become an earthly woman, as a reward for her cruel nature. He granted Devarāja a boon. Devarāja chose Bhānumatī and her mother. Accordingly he got them, came back to the Jina temple, and disentangled the anchor. The two ladies and he himself were to go up with the help of the chain of the anchor. The ladies got safely aboard the ship, but alas! before Devarāja himself could reach the ship, his hands slipped from the chain and he fell down back on the temple. The ship sailed off.

Now Devarāja was left alone in that submarine temple. His penance there pleased the resident *yaksha*, Gomukha by name, who gave him three articles with magic power: a rag, a pair of slippers, and a wand. Devarāja would not wait there any longer. with the help of the slippers, he reached the place where Vatsarāja, Bhānumatī and her mother were mourning his loss. With the help of the rag, he got food for all of them. The slippers again betook the party to a coastal city within Mālava. There with the help of the wand, Devarāja had at his disposal many horses, elephants, chariots, and footmen. Of this large army Devarāja was the leader. The time was now opportune to return to Dhārā, which Devarāja did and was well received by his father, Bhoja. Bhoja was glad to have his two sons back, along with Bhānumatī whom he married and lived with her happily ever afterwards.

Lastly, once, when engaged in driving away the invading hosts, Bhoja felt the pangs of separation from Bhānumatī. His condition alarmed the ministers; for, going back would at that moment put the enemy in an advantageous position.

They consulted Vararuchi who, for Bhoja's diversion, painted a life-like portrait of Bhānumatī. The portrait was exact through the grace of the goddess Sarasvatī even to the mole near the private part, which persisted to remain there in spite of Vararuchi's best efforts to efface it. When it was presented to Bhoja, he was immensely delighted with it. The depiction of the mole, however, made him suspicious of Vararuchi's illicit connection with Bhānumatī. This enraged him and he ordered the executioners to pluck out Vararuchi's eyes. They, however, spared Vararuchi, and informed the king that his order had been duly executed. Thus appeased, the king conquered his enemies and came back to his capital. Vararuchi remained in hiding for the time being.

Once Devarāja went to a thick forest, mounting on a horse. He lost his way, and kept wandering till the dusk. For the sake of safety, he climbed up a tree. After a while, a huge monkey being chased by a tiger climbed up the same tree. Devarāja trembled with fear. However, the monkey cheered him up and promised him refuge. They thus became friends. Nevertheless, when the monkey was fast asleep, Devarāja pushed him down the tree as a prey to the tiger below. As the luck would have it, the monkey, while falling, caught hold of a branch and was thus saved. He then uttered a curse on Devarāja that the latter should become mad. When the day broke, the tiger below also disappeared. Meanwhile, Bhoja sent out his men in search of Devarāja. They saw him in the forest. He had become mad and would utter the letters विसेमिरा in answer to whatever was asked of him. In this condition he was brought and produced before Bhoja whose grief now knew no bounds. None of the king's physicians and magicians could find out the cause of the prince's madness, or cure him. Bhoja lost all hopes. He felt deeply repentant for his foolishness in losing Vararuchi who, if now alive, could certainly have cured Devarāja. At this juncture the news was broken to him that Vararuchi was still alive and in hiding somewhere. Bhoja made many attempts to find out and bring Vararuchi back, but in vain. He was desperate. Now Vararuchi, who had learnt the news of the prince's madness, disguised himself as a woman of the merchant community, and came forward to cure Devarāja. He found out the cause of the madness easily and cured the prince by uttering four stanzas of magic import. Bhoja was overjoyed. His joy was heightened, when Vararuchi revealed himself and rejoined him.

Thus re-united with Vararuchi, Devarāja and Bhānumati, Bhoja enjoyed his kingdom.

HISTORICAL ANALYSIS

We have seen that Rājavallabha composed his *Bhojacharitra* sometime in the middle of the fifteenth century A. D., i. e., about 400 years after Bhoja's death. Therefore for information and materials to write on Bhoja, he naturally had to

They consulted Vararuchi who, for Bhoja's diversion, painted a life-like portrait of Bhānumatī. The portrait was exact through the grace of the goddess Sarasvatī even to the mole near the private part, which persisted to remain there in spite of Vararuchi's best efforts to efface it. When it was presented to Bhoja, he was immensely delighted with it. The depiction of the mole, however, made him suspicious of Vararuchi's illicit connection with Bhānumatī. This enraged him and he ordered the executioners to pluck out Vararuchi's eyes. They, however, spared Vararuchi, and informed the king that his order had been duly executed. Thus appeased, the king conquered his enemies and came back to his capital. Vararuchi remained in hiding for the time being.

Once Devarāja went to a thick forest, mounting on a horse. He lost his way, and kept wandering till the dusk. For the sake of safety, he climbed up a tree. After a while, a huge monkey being chased by a tiger climbed up the same tree. Devarāja trembled with fear. However, the monkey cheered him up and promised him refuge. They thus became friends. Nevertheless, when the monkey was fast asleep, Devarāja pushed him down the tree as a prey to the tiger below. As the luck would have it, the monkey, while falling, caught hold of a branch and was thus saved. He then uttered a curse on Devarāja that the latter should become mad. When the day broke, the tiger below also disappeared. Meanwhile, Bhoja sent out his men in search of Devarāja. They saw him in the forest. He had become mad and would utter the letters विसेमिरा in answer to whatever was asked of him. In this condition he was brought and produced before Bhoja whose grief now knew no bounds. None of the king's physicians and magicians could find out the cause of the prince's madness, or cure him. Bhoja lost all hopes. He felt deeply repentant for his foolishness in losing Vararuchi who, if now alive, could certainly have cured Devarāja. At this juncture the news was broken to him that Vararuchi was still alive and in hiding somewhere. Bhoja made many attempts to find out and bring Vararuchi back, but in vain. He was desperate. Now Vararuchi, who had learnt the news of the prince's madness, disguised himself as a woman of the merchant community, and came forward to cure Devarāja. He found out the cause of the madness easily and cured the prince by uttering four stanzas of magic import. Bhoja was overjoyed. His joy was heightened, when Vararuchi revealed himself and rejoined him.

Thus re-united with Vararuchi, Devarāja and Bhānumati, Bhoja enjoyed his kingdom.

HISTORICAL ANALYSIS

We have seen that Rājavallabha composed his *Bhojacharitra* sometime in the middle of the fifteenth century A. D., i. e., about 400 years after Bhoja's death. Therefore for information and materials to write on Bhoja, he naturally had to

provided they brought with them the celestial nymph Bhānumatī of Indra's court. The boys obeyed the order, left the country, embarked in a ship and started their voyage to a far off land. During the course of their voyage, they encountered a tempest when the mariners anchored the ship. When the storm subsided, all of them tried to lift up the anchor, but in vain.

Now Devarāja lept into the sea to lift up the anchor. To his astonishment, he found in the abyss a huge Jina temple in which the anchor had been caught. Instead of just liftin; the anchor, Devarāja entered th: temple, met there an old celestial nymph from whom on enquiry he learnt how Jina Vīsited Śrīpurabefore he attained *moksha* as the spot in question was then called; how his son Bharata had built up a very huge temple there on an elaborate scale and entrusted it to the care of Indra ; how the sixty-thousand sons of Sagara had excavated the ocean around the temple for fear lest the people should damage the temple; how consequently the temple was submerged in the sea; and how all the sixty-thousand sons of Sagara were killed by the angry Indra. He also came to know how the selfsame aged nymph had been put in charge of the temple by Indra. Meanwhile there came Bhānumatī, man-hating daughter of the old nymph. The moment she saw Devarāja, she cursed him to ashes. Then she worshipped Jina and went back to the heaven. The old nymph was deeply moved with grief over the death of Devarāja. She went to the heaven, prayed Indra, got heavenly ambrosia, came back, sprinkled it over the ashes, and Devarāja came to life again. As ordered, Devarāja was produced by the old nymph before Indra in the heaven. Indra was very pleased to see him and was displeased with Bhānumatī whom he cursed that she should go down to the earth and become an earthly woman, as a reward for her cruel nature. He granted Devarāja a boon. Devarāja chose Bhānumatī and her mother. Accordingiy he got them, came back to the Jina temple, and disentangled the anchor. The two ladies and he himself were to go up with the help of the chain of the anchor. The ladies got safely aboard the ship, but alas ! before Devarāja himself could reach the ship, his hands slipped from the chain and he fell down back on the temple. The ship sailed off.

Now Devarāja was left alone in that submarine temple. His penance there pleased the resident *yaksha*, Gomukha by name, who gave him three articles with magic power : a rag, a pair of slippers, and a wand. Devarāja would not wait there any longer. with the help of the slippers, he reached the place where Vatsarāja, Bhānumatī and her mother were mourning his loss. With the help of the rag, he got food for all of them. The slippers again betook the party to a coastal city within Mālava. There with the help of the wand, Devarāja had at his disposal many horses, elephants, chariots, and footmen. Of this large army Devarāja was the leader. The time was now opportune to return to Dhārā, which Devarāja did and was well received by his father, Bhoja. Bhoja was glad to have his two sons back, along with Bhānumatī whom he married and lived with her happily ever afterwards.

Lastly, once, when engaged in driving away the invading hosts, Bhoja felt the pangs of separation from Bhānumatī. His condition alarmed the ministers; for, going back would at that moment put the enemy in an advantageous position.

provided they brought with them the celestial nymph Bhānumatī of Indra's court. The boys obeyed the order, left the country, embarked in a ship and started their voyage to a far off land. During the course of their voyage, they encountered a tempest when the mariners anchored the ship. When the storm subsided, all of them tried to lift up the anchor, but in vain.

Now Devarāja lept into the sea to lift up the anchor. To his astonishment, he found in the abyss a huge Jina temple in which the anchor had been caught. Instead of just lifting the anchor, Devarāja entered the temple, met there an old celestial nymph from whom on enquiry he learnt how Jina Visited Śrīpurabefore he attained *moksha* as the spot in question was then called; how his son Bharata had built up a very huge temple there on an elaborate scale and entrusted it to the care of Indra; how the sixty-thousand sons of Sagara had excavated the ocean around the temple for fear lest the people should damage the temple; how consequently the temple was submerged in the sea; and how all the sixty-thousand sons of Sagara were killed by the angry Indra. He also came to know how the selfsame aged nymph had been put in charge of the temple by Indra. Meanwhile there came Bhānumatī, man-hating daughter of the old nymph. The moment she saw Devarāja, she cursed him to ashes. Then she worshipped Jina and went back to the heaven. The old nymph was deeply moved with grief over the death of Devarāja. She went to the heaven, prayed Indra, got heavenly ambrosia, came back, sprinkled it over the ashes, and Devarāja came to life again. As ordered, Devarāja was produced by the old nymph before Indra in the heaven. Indra was very pleased to see him and was displeased with Bhānumatī whom he cursed that she should go down to the earth and become an earthly woman, as a reward for her cruel nature. He granted Devarāja a boon. Devarāja chose Bhānumatī and her mother. Accordingiy he got them, came back to the Jina temple, and disentangled the anchor. The two ladies and he himself were to go up with the help of the chain of the anchor. The ladies got safely aboard the ship, but alas! before Devarāja himself could reach the ship, his hands slipped from the chain and he fell down back on the temple. The ship sailed off.

Now Devarāja was left alone in that submarine temple. His penance there pleased the resident *yaksha*, Gomukha by name, who gave him three articles with magic power: a rag, a pair of slippers, and a wand. Devarāja would not wait there any longer. with the help of the slippers, he reached the place where Vatsarāja, Bhānumatī and her mother were mourning his loss. With the help of the rag, he got food for all of them. The slippers again betook the party to a coastal city within Mālava. There with the help of the wand, Devarāja had at his disposal many horses, elephants, chariots, and footmen. Of this large army Devarāja was the leader. The time was now opportune to return to Dhārā, which Devarāja did and was well received by his father, Bhoja. Bhoja was glad to have his two sons back, along with Bhānumatī whom he married and lived with her happily ever afterwards.

Lastly, once, when engaged in driving away the invading hosts, Bhoja felt the pangs of separation from Bhānumatī. His condition alarmed the ministers; for, going back would at that moment put the enemy in an advantageous position.

They consulted Vararuchi who, for Bhoja's diversion, painted a life-like portrait of Bhānumatī. The portrait was exact through the grace of the goddess Sarasvatī even to the mole near the private part, which persisted to remain there in spite of Vararuchi's best efforts to efface it. When it was presented to Bhoja, he was immensely delighted with it. The depiction of the mole, however, made him suspicious of Vararuchi's illicit connection with Bhānumatī. This enraged him and he ordered the executioners to pluck out Vararuchi's eyes. They, however, spared Vararuchi, and informed the king that his order had been duly executed. Thus appeased, the king conquered his enemies and came back to his capital. Vararuchi remained in hiding for the time being.

Once Devarāja went to a thick forest, mounting on a horse. He lost his way, and kept wandering till the dusk. For the sake of safety, he climbed up a tree. After a while, a huge monkey being chased by a tiger climbed up the same tree. Devarāja trembled with fear. However, the monkey cheered him up and promised him refuge. They thus became friends. Nevertheless, when the monkey was fast asleep, Devarāja pushed him down the tree as a prey to the tiger below. As the luck would have it, the monkey, while falling, caught hold of a branch and was thus saved. He then uttered a curse on Devarāja that the latter should become mad. When the day broke, the tiger below also disappeared. Meanwhile, Bhoja sent out his men in search of Devarāja. They saw him in the forest. He had become mad and would utter the letters विसेमिरा in answer to whatever was asked of him. In this condition he was brought and produced before Bhoja whose grief now knew no bounds. None of the king's physicians and magicians could find out the cause of the prince's madness, or cure him. Bhoja lost all hopes. He felt deeply repentant for his foolishness in losing Vararuchi who, if now alive, could certainly have cured Devarāja. At this juncture the news was broken to him that Vararuchi was still alive and in hiding somewhere. Bhoja made many attempts to find out and bring Vararuchi back, but in vain. He was desperate. Now Vararuchi, who had learnt the news of the prince's madness, disguised himself as a woman of the merchant community, and came forward to cure Devarāja. He found out the cause of the madness easily and cured the prince by uttering four stanzas of magic import. Bhoja was overjoyed. His joy was heightened, when Vararuchi revealed himself and rejoined him.

Thus re-united with Vararuchi, Devarāja and Bhānumati, Bhoja enjoyed his kingdom.

HISTORICAL ANALYSIS

We have seen that Rājavallabha composed his *Bhojacharitra* sometime in the middle of the fifteenth century A. D., i. e., about 400 years after Bhoja's death. Therefore for information and materials to write on Bhoja, he naturally had to

depend only on the stories often told and the traditions preserved in Merutuṅga's *Prabandhachintamani*, Ballālasāna's *Bhojaprabandha* etc., which he had amply supplemented by his own imagination. Generally the traditions first start from hard facts. Yet they are, by their very nature bound to transform into myths in course of time-Writing at the beginning of the 14th century, Merutuṅga himself had confessed that narratives which the wise relate, each according to his own mind, are bound to be inconsistent and different in character and that ancient stories, because they have been so often heard, do not delight so much the minds of the wise.[1] One can easily apply Merutuṅga's above words to Rājavallabha's *Bhojacharitra* to a greater extent though the author does not confess so.

Moreover Rājavallabha himself does not claim to have written a historical work. On the other hand he informs us of his object as to glorify the merit of *Annadāna*.[2] So Bühler had rightly remarked that "The motives with which the *Caritras* and the *Prabandhas* were written are to edify the congregations, to convince them of the magnificence and the might of the Jaina faith and to supply the monks with material for their sermons, or, when the subject is of purely worldly interest, to provide the public with pleasant entertainment".[3] Therefore one should not expect the accuracy and sobriety of the historians of the ancient Greece or of the Kashmirian writer Kalhaṇa. However, let us try to analyse the historical facts contained in the *Bhojacharitra*, following Bühler's advice which runs as follows: "These confessions (e. g. of Merutuṅga) and the fact that besides obvious absurdities, a large number of anachronisms, omissions and other errors occur in all parts of the *Prabandhas* which can be controlled by the accounts of authentic sources, make it essential for one to take the greatest precaution when using them. They should not, however, lead one to a complete rejection of the accounts contained therein; for the *Prabandhas* do contain much that is well corroborated by the inscriptions and other reliable sources".[4]

The story of the *Bhojacharitra*, as we have seen starts with the father of Muñja and Sindhula. He is referred to as Sindhu. He figures as S'rī-Harsha in the Udayapur *Prasasti*[5] and as Sīyaka in the Nagpur *Prasasti*[6] and in other Paramāra epigraphs, while Padmagupta applies to him both the names.[7] It is said that probably the king's name was Harshasiṁha, both the parts of which were used as abbreviation of the whole and the later part, viz., Siṁhaka changing into Sīyaka

---

1 बुधैः प्रबन्धाः स्व(or सु)धियोच्यमाना भवन्त्यवश्यं यदि भिन्नभावाः ॥ (Verse 7.) भृशं श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः प्रीणन्ति चेतांसि तथा बुधानाम् ॥ (Verse 6.) *prabandhachintamani* (ed. D. K. Shastri, Bombay, 1932)

2 *prastāva* Verses 1-2.

8 Buhler : *Life of Hemachandracharya*, (English translation by Manilal Patel, *Singhi Jaina Series, No. 11*) p. 3.

4 Ibid, p. 4.

5 Op. cit., Verse 12.

6 *Ep. Ind.* Vol. II, pp. 180 ff. Verse 20.

7 *Navasāhasankacharita* (Ed. by Vamana Sarma, Bombay, 1895). *Sarga* XI Verse 85 refers to him as Siyaka while *Sarga* XVIII Verse 43 as Sri-Harsha.

in the local dialects. That change is said to be supported by the word *Simhabhata* found as a name of Sīyaka in one of the manuscripts of the *Prabandhachintamani.*[1] But the fact that the Sanskrit *kavya Navasahasankacharita* refers to him neither as Harshasiṁha nor as Siṁhaka, does not appear to support that view.[2] In various manuscripts of the *Prabandhachintamani,*[3] this king is referred to differently as Siṁhadantabhaṭa, Siṁhabhaṭa[4] and Harsha. All epigraphs call Sīyaka's son by the name Sindhu. Therefore we can say that Rājavallabha might have been confused between the names of the father and the son, though it is not completely improbable that both of them had the self same-name, for which examples are not lacking in Indian History.

The Udayapur and Nagpur *Prasastis* describe in clear terms that Vākpati Muñja was born from Harsha-Sīyaka.[6] However following Merutuṅga, Rājavallabha describes Muñja as a mere *Palaka* (i. e. one who is brought up) of Siyaka II while Sindhurāja or Sindhula, as invariably called in the *Prabandhas* and in the *Bhojacharitra*, is described as a real son of him.[7] It is really very difficult to explain why the Jaina authors, without exception, give the self same story about the origin of Muñja.[8] Probably the following may be, the reason : Merutuṅga informs that Muñja had sons and that he was afraid of Bhoja's superiority over them.[9] The Vasantgaḍh Inscription of the Paramāra Pūrṇapāla of Abu, dated V. S. 1099[10] and the Jalor inscription of the Paramāra Vīsala of the Jalor Branch, dated V.S. 1174[11] show that Muñja must have got at least two sons, named Araṇyarāja and Chandana who were appointed by Muñja himself as governors respectively of Abu and Jalor in the last quarter of the 10th century. They had also established their

1 Buhler : *Ep. Ind.*, Vol. I, p. 225. However he appears to have taken both the names separately when he wrote with Zachariae in 1888. See *Ind. Ant.* Vol. XXXVI, p. 167.

2 Ganguly (Op. cit. p. 37) differs from Buhler on the ground that the word *Siyaka*, being the name of the great grandfather of Siyaka II, can stand independently as a name. However the derivation of *Siyaka* from *Simhaka* and *Simha* may be correct in the case of both the kings.

3 Op. cit., p. 30 and note 4.

4 Forbes' Rāsmāla (Oxford, 1924, Vol. I, p. 84) also calls him Singhbhut (i. e. Simhabhata).

5 For example, Rājendrachola (I)'s son was Rājendra II. The latter's son also was called Rājendra (See K. A. N. Sastri, The *Colas*, 1955. pp. 246-47). Again Chalukya Somesvara II was the son of Somesvara I (See Fleet's genealogical Table in *Bom. Gaz.* Vol. I, pt. II between pp. 428-29).

6. पुत्रस्तस्य (i. e. हर्षस्य)..................

श्रीमद्वाक्पतिराजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥ The Udayapur *Prasasti*, op., cit. Verse 13.

तस्माद्(सीयकाद्)वैरिवरूथिनीबहुविधप्रारब्धयुद्धाध्वर–

ध्वंसैकपिनाकपाणिरजनि श्रीमुञ्जराजो नृपः ॥ The Nagpur *Prasasti*, op., cit., Verse 23.

7. *Ras Mala* (op. cit., p. 85) gives the same story of Munja's origin.

8. The Pānāhere Inscription of Jayasimha dated in V. S. 1116 or 1059 . A. D (*EP. Ind.*, Vol. XXI, pp. 42 ff.) though earlier than the Udayapur and Nagpur *Prasastis* does not give any clue, as it is unfortunately much damged.

9. *Prabandha*. op. cit., p. 32

10. *EP. Ind.*, Vol. IX, pp. 10 ff., and *Ind. Ant.*, Vol. XL, p. 239.

11. *Ind. Ant*, Vol. LXII, p 41.

dynasties in those places.[1] On the death of Muñja, however, the Malava throne went not to any of his sons but to the junior branch, viz. to Sindhurāja and then to Bhoja. What forces led to set aside the law and the right of primogeniture, a normal course of succession in the History of India ?[2] We do not have any proof to show that the junior branch usurped the throne. On the other hand the fact that the members of the above two families were in friendly terms with Bhoja[3] indicates that the succession must have been very smooth. It is said that Sindhurāja succeeded to the throne "probably in pursuance of the arrangement made by Sīyaka II just befor his abdication".[4] But according to the Jaina authors, from whom alone we learn that Siyaka II abdicated, the latter entreated Muñja only to be friendly with Sindhurāja and there was no word relating to the latter's succession.[5] It was, therefore, a problem, as it were, for the Jaina authors to explain the situation. It appears that, probably to come out of this difficulty, they might have invented the story of Muñja's birth in their own way of imagination, connecting Muñja with *munja* grass.[6] Perhaps confronted with the same difficulty, Ballālasena has made Sindhurāja the elder brother and predecessor of Muñja.[7] The relationship of Muñja with Siyaka II and Sindhurāja appears to have been doubted as early as 1274 A. D. For the Māndhātā plates of Paramāra Jayasimha-Jayavarman dated in V. S. 1331[8] introduce Siyaka II as a son and successor of Vākpati I, then Vākpati-Muñja only as having born in that famous family (of the Paramāras) and then Sindhurāja only as a ruler after Muñja, and then Bhoja as the son and successor of Sindhurāja.[9] And it is also worth noticing that both Dhanapāla and Padmagupta, the only contemporaries both of Muñja and Siyaka introduce first Sindhurāja alone as the son of Siyaka and then only Muñja merely as an elder brother of Sindhurāja.[10]

---

1. See Ganguly, op. cit., pp. 22-23, 64, 298, 813; Ray, op. cit, pp. 908-09, 924-25; Bhandarkar's List, p. 31, No. 194 and note 2.
2. For other views on the course of succession in the ancient India, see Fleet, *Bom. Gaz.*, Vol. I, pt. II, p. 346 note 4.
3. Ganguly, op. cit., pp. 299-300; Ray, op. cit. p. 925.
4. Ganguly, op. cit., p. 64.
5. *Prabandha. op. cit.*, p. 31; *Bhojacharitra* I, verses 37-42.
6. This story is taken on the whole to Mean that "Śiyaka finding himself childless in the early years of his life, adopted Munja as a heir to his throne, and confirmed the arrangement even sometime after a son was born to him" (Ganguly, op cit., p. 48.) But such an adoption in the early years of one's life appears to be rather unusual and improbable.
7. *Bhojaprabandha*, (N. P. 1921), p. 1.
8. *Ep. Ind.*, XXXII, pp. 189 ff.
9. Cf. Text verses 27-32.
10. तस्योदग्रयशाः समरतसुभटग्रामाग्रगामी सुतः
    सिंहो दुर्धरशक्रसिन्धुरततेः श्रीसिन्धुराजोभवत् ।
    एकाधिज्यचतुर्जिताब्धिवलयावच्छिन्नभूर्यस्य स
    श्रीमद्वाक्पतिराजदेवनृपतिर्वीराग्रणीरग्रजः ॥
    (*Tilakamanjari*, Intr., verse 42)
    अयं (सिन्धुलः) नेत्रोत्सवस्तस्माज्जज्ञे देवः पितृप्रियः ।
    श्रीमद्वाक्पतिराजोभूदग्रजोस्याग्रणीः सताम् ॥
    (*Navasahasankacharita*, XI, PP. 91-92) Again it is to be noted that the word अग्रज need not necessarily mean "elder brother" only.

While according to Merutuṅga and S'ubhaśīla, Muñja appears to be justified, to some extent, in blinding and imprisoning his repeatedly disobedient and haughty brother Sindhurāja,[1] we find him, in *Bhojacharitra*, so wicked a man as to blind his obedient and loyal brother.[2] The tale is set aside, thanks to Padmagupta,[3] and many Paramāra records[4] which describe Sindhurāja as a successor of Muñja. Again the way in which Rājavallabha himself describes how Sindhurāja mourned over the death of Muñja appears to go against this tale.[5] Bühler rightly concludes that "the only grain of truth which the *Prabandhas* may contain is perhaps that for sometime the brothers quarrelled. The condition of things cannot have been serious."[6]

Merutuṅga says that the disobedient Sindhurāja came to Gujarat and established a settlement in the neighbourhood of Kāśahrada which is identified by Forbes with Kasidra-Pālaḍī near Ahmadabad.[7] This may probably indicate that for sometime Sindhurāja retired from the Paramāra politics in Malwa, and went to Gujarat. Śubhaśīla, however, relates the story of the haughty Sindhurāja retiring to Nāgahrada in Medapāṭa.[8] This place may be identified with the modern Nagda near Udaipur.[9] Though it is difficult to say whether this Nāgahrada has anything to do with Sindhurāja's war with the Nāgas described at length by Padmagupta, S'ubhaśīla's statement appears to support the theory based on the Kirāḍu inscription of the Chaulukya Kumārapāla[10] that Sindhurāja or his son Dūsala or Usa(tpa)la received the Marumaṇḍala territory from Muñja in the last part of the 10th century and established the Bhinmal branch of the Paramāra dynasty.[11]

Rājavallabha's story that Bhoja, immediately after his birth, was about to be exposed to death in the forest on account of a miscalculated *janmapatrika* (horoscope) and was saved immediately when the error was discovered,[12] is found

1 *Prabandha*, op. cit., pp. 31 (and note 5), 32.

2 *Prastāva I*, verses 54–77.

3 *Navasāhasankacharita*, op. cit., Sarga XI, verses 98–99.

4 For example the Modasa plates of Bhoja, dated in V. S. 1067 (*Ep. Ind.*, Vol. XXXIII, pp. 192 ff.)

5 *Prastāva* I, verses 207–09.

6 Buhler and Zachariae, *Ind. Ant.* Vol., XXXVI, p. 170. However, one may not agree with the view that, "had the brothers been deadly enemies, Padmagupta would certainly have been left in obscurity after his first patron's (i. e. Munja's) death" (*Ep. Ind.*, Vol. I, p. 230). For, the famous poet Bharavi, the author of *Kirātārjuniya*, is said to have been patronised by the members of the rival dynasties, viz. the Chālukya of Bādāmi, the Pallava of Kānchi and the Gangas of Mysore. (See *The Classical Age*, pp. 251, 259, 269)

7 *Rās Mālā*, op. cit. p. 85. Bühler also appears to underline this identification (See *Ep. Ind.*, Vol. I. p. 229).

8 *Prabandha*. op. cit. p. 31, foot note 5, verses 49–50.

9 Ray, op. cit., p. 1154 and foot note 1.

10 *Jaina Inscriptions*, pt. I, No. 942; Bhandarkar's List, No. 812.

11 Ganguly, op. cit., pp. 23, 345.

12 *prastava* I, verses 84–92.

with some variations among the traditions recorded by Abul Fazal,[1] though Merutuṅga does not relate such story.

When the envious Muñja tried to assassinate Bhoja, the latter was only eight years old according to Rājavallabha.[2] But Merutuṅga appears to say that at that time the prince had completed his boyhood at least.[3] Rājavallabha's statement probably supports the "supposition that Bhoja was not a grown up man in the life time of Munja."[4] Basing on the above supposition it is concluded that "at any rate the legends of the wicked uncle Muñja ... ... may now be considered as abolished."[5] But it is evident that Rājavallabha robs this conclusion of its strength as he says that Muñja wanted to kill the prince just at the age of eight. However as we have seen that Sindhurāja or his son Dāsala[6] received from Muñja the viceroyalty of Marumaṇḍala in the later part of the 10th century.[7] If so, why should Muñja be so wicked towards Bhoja alone, while the latter's brother, probably the elder, was treated by him with such a favour ?

According to Rājavallabha, on the eve of his fatal expedition against Taila Muñja crowned Bhoja as the king of Malava country extending upto the Godāvarī.[8] But Merutuṅga relates that Bhoja was declared by Munja as his heir apparent *(yuvaraja)* and that he was crowned at Dhārā by the ministers after they received the news of the tragic end of Muñja in the Deccan.[9] In short both the authors agree to say that Bhoja was the direct successor of Muñja. Dhanapāla who wrote *Tilakamanjari* during the time Bhoja[10] clearly says that Vākpati Muñja himself crowned Sindhurāja's son Bhoja in the former's kingdom on the ground that the latter was well suited to it.[11] This contemporary clear evidence supports the statements of Merutuṅga and Rājavallabha. However all the Paramāra records, even the earliest of Bhoja's so for known,[12] invariably mention the rule of Sindhurāja in between those of Muñja and Bhoja. Again Padmagupta, a contemporary of Muñja and Sindhurāja, unequivocally declares that the latter succeeded the former

---

1 *Ain-I-Akbari* (English translation by H. S. Jarret), Vol. II, pp. 226–27.

2 *Prastava* I, verses 97–99.

3 Cf. सः (भोजः) अभ्यस्तसमस्तराजशास्त्रः षट्त्रिंशदायुधान्यधीत्य द्वासप्ततिकलाकूपारंगतः समस्तलक्षणलक्षितो ववृधे । (*prabandha*. op. cit. p. 32). *Ras Mala* (p. 85) also follows Merutunga.

4 Buhler and Zachariae, *Ind. Ant.*, Vol. XXXVI, p. 172.

5 I bid. Tawney (op. cit. p. 32, foot note 2) underlines this conclusion.

6 Bhandarkar (list No. 312) reads the name Usa(tpa)la.

7 Ganguly, op. cit. pp. 25, 345. if this theory is correct we have to take Dusala or Usa (tpa)la of the Kirādu inscription (*Jaina Inscr.* pt. I, No. 942) as Bhoja's elder brother who probably predeceased his father and did not succeed to the Mālava throne.

8 *Prastava* I, verses 127–30

9 *Prabandha*. op. cit. pp. 33, 87. *Ras Mala* (pp. cit. p. 86) gives the same story.

10 *Tilakamanjari*, (N. S. Press Bombay, 1938, Introduction, verse 50). Das Gupta and De hold that Dhanapāla wrote this work for the sake of Munja (*Hist. of Sanskrit Literature*, 1947, Vol. I, pp. 430–31).

1. Verse 43.

12 The Modāsā plates dated in V. S. 1067, Jyeshta su 1, Sunday–1011 A. D., May 6 (*Ep. Ind.*, Vol. XXXIII, pp. 192 ff).

and was ruling when the *Navasāhasāṅkacharita* was compos [1] Thus there are two conflicting evidences viz. Dhanapāla, Merutuṅga and Rājavallabha on one hand, Padmagupta and the epigraphs on the other. We cannot reconcile them unless we assume that during the time of Muñja, a part of the Paramāra kingdom was given to Sindhurāja to rule independently, more probably semi-independently, and that in course of time Bhoja first succeeded only to the throne of his uncle Muñja and later to that of his father. Or more probably the circumstances were as follows: Muñja declared Sindhurāja as his successor as told by Padmagupta and at the same time made Bhoja as *yuvarāja* as indicated by Dhanapāla. Then, what compelled the *prabandhakāras* to ignore Sindhurāja's rule altogether ?

It appears that Sindhurāja ruled only a very short time and that this short reign in between the long ones of Muñja as well as Bhoja probably escaped the notice of the first *piabandhakāra* whose story must have been blindly followed by the later authors. No record of Sindhurāja's reign has come to light so for. However let us try to fix up his reign period by analysing the probable dates of Muñja's death and of Bhoja's accession. The newly discovered Chikkerur inscription of *Mahāmaṇḍalesvara* Āhavamalla i. e. Irivabeḍanga Satyāśraya, the son of the Chālukya Taila II,[2] informs us that Āhavamalla was proceeding against Utpala i. e. Vākpati Muñja in February 995 A. D. The Gadag inscription of the Chalukya Vikramāditya VI[3] praises Taila II as a slayer of Muñja and the Tālaguṇḍa inscription furnishes Śaka 919, Hēmalamba......śu. 5, Sunday as the last known date for Taila II. The details may correspond either to the 13th June or to the 7th November 997 A. D.[4] Therefore Muñja's death and the consequent accession of Sindhurāja must have taken place sometime between February 995 A. D. and June 997 A. D., say in 996 A. D.

Having fixed the last date for Muñja, let us now try to find out the probable date of Bhoja's accession. The days are gone when scholars were afraid to ascertain either the date of Bhoja's accession or that of his death.[5] Now we are more or less on stable grounds thanks to recent discoveries. The *prabandhas* invariably mention a period of fifty-five years, seven months and three days as the reign period of Bhoja.[6] Having got no evidence to the contrary, we my accept this detailed informat-

1. *Sarga.* Verses 98-99. Ballālasena's *Bhojaprabandha* also mentions, though with a defective chronology as we have seen, the rule of Sindhurāja. Rajavallabha's narration (unlike that of Merutunga) that Sindhurāja had been *yuvarāja* under Munja (Prastāva I verses 53-55) and lived to mourn over the latter's death may indirectly indicate that Sindhurāja's succession was not completely ruled out,

2, Ep. Ind. Vol XXXIII, pp. 131 ff. It is equally probable that this Āhavamalla is identical with Taila II himself.

3. Ep. Ind. Vol. XV, pp. 848 ff. R. G. Bhandarkar has wrongly attributed this inscription to Taila II himself (*Bomb. Gaz.* Vol. I, Pt. II, p. 213)

4. Ep. Carn. Vol; VII, Introduction p. 18 and Sk. No. 179.

5. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, p. 232.

6. *Prabandha.* op. cit. p. 32, verse 32; *Bhojacharitra, prastāva* I, verse 88. *Bhojaprabandha* op. cit. Verse 6.

with some variations among the traditions recorded by Abul Fazal,[1] though Merutuṅga does not relate such story.

When the envious Muñja tried to assassinate Bhoja, the latter was only eight years old according to Rājavallabha.[2] But Merutuṅga appears to say that at that time the prince had completed his boyhood at least.[3] Rājavallabha's statement probably supports the "supposition that Bhoja was not a grown up man in the life time of Munja."[4] Basing on the above supposition it is concluded that "at any rate the legends of the wicked uncle Muñja ... ... may now be considered as abolished."[5] But it is evident that Rājavallabha robs this conclusion of its strength as he says that Muñja wanted to kill the prince just at the age of eight. However as we have seen that Sindhurāja or his son Dūsala[6] received from Muñja the viceroyalty of Marumaṇḍala in the later part of the 10th century.[7] If so, why should Muñja be so wicked towards Bhoja alone, while the latter's brother, probably the elder, was treated by him with such a favour ?

According to Rājavallabha, on the eve of his fatal expedition against Taila Muñja crowned Bhoja as the king of Malava country extending upto the Godāvarī.[8] But Merutuṅga relates that Bhoja was declared by Munja as his heir apparent *(yuvaraja)* and that he was crowned at Dhārā by the ministers after they received the news of the tragic end of Muñja in the Deccan.[9] In short both the authors agree to say that Bhoja was the direct successor of Muñja. Dhanapāla who wrote *Tilakamanjari* during the time Bhoja[10] clearly says that Vākpati Muñja himself crowned Sindhurāja's son Bhoja in the former's kingdom on the ground that the latter was well suited to it.[11] This contemporary clear evidence supports the statements of Merutuṅga and Rājavallabha. However all the Paramāra records, even the earliest of Bhoja's so for known,[12] invariably mention the rule of Sindhurāja in between those of Muñja and Bhoja. Again Padmagupta, a contemporary of Muñja and Sindhurāja, unequivocally declares that the latter succeeded the former

---

1 *Ain-i-Akbari* (English translation by H. S. Jarret), Vol. II, pp. 226-27.

2 *Prastava* I, verses 97-99.

3 Cf. स: (भोज:) अभ्यस्तसमस्तराजशास्त्रः षट्त्रिंशदायुधान्यधीत्य द्वासप्ततिकलाकूपारं गतः समस्तलक्षणलक्षितो ववृधे । (*prabandha*. op. cit. p. 32). *Ras Mala* (p. 65) also follows Merutunga.

4 Buhler and Zachariae, *Ind. Ant.*, Vol. XXXVI, p. 172.

5 I bid. Tawney (op. cit. p. 32, foot note 2) underlines this conclusion.

6 Bhandarkar (list No. 312) reads the name Usa(tpa)la.

7 Ganguly, op. cit. pp. 25, 345. if this theory is correct we have to take Dusala or Usa (tpa)la of the Kiradu inscription (*Jaina Inscr.* pt. I, No. 942) as Bhoja's elder brother who probably predeceased his father and did not succeed to the Malava throne.

8 *Prastava* I, verses 127-30

9 *Prabandha*. op. cit. pp. 33, 87. *Ras Mala* (pp. cit. p. 86) gives the same story.

10 *Tilakamanjari*, (N. S. Press Bombay, 1938, Introduction, verse 50). Das Gupta and De hold that Dhanapala wrote this work for the sake of Munja (*Hist. of Sanskrit Literature*, 1947, Vol. I, pp. 430-31).

1. Verse 43.

12 The Modasa plates dated in V. S. 1067, Jyeshta su 1, Sunday-1011 A. D., May 6 (*Ep. Ind.*, Vol. XXXIII, pp. 192 ff).

and was ruling when the *Navasāhasāṅkacharita* was compos [1] Thus there are two conflicting evidences viz. Dhanapāla, Merutuṅga and Rājavallabha on one hand, Padmagupta and the epigraphs on the other. We cannot reconcile them unless we assume that during the time of Muñja, a part of the Paramāra kingdom was given to Sindhurāja to rule independently, more probably semi-independently, and that in course of time Bhoja first succeeded only to the throne of his uncle Muñja and later to that of his father. Or more probably the circumstances were as follows: Muñja declared Sindhurāja as his successor as told by Padmagupta and at the same time made Bhoja as *yuvarāja* as indicated by Dhanapāla. Then, what compelled the *prabandhakāras* to ignore Sindhurāja's rule altogether ?

It appears that Sindhurāja ruled only a very short time and that this short reign in between the long ones of Muñja as well as Bhoja probably escaped the notice of the first *piabandhakāra* whose story must have been blindly followed by the later authors. No record of Sindhurāja's reign has come to light so for. However let us try to fix up his reign period by analysing the probable dates of Muñja's death and of Bhoja's accession. The newly discovered Chikkerur inscription of *Mahāmaṇḍalesvara* Āhavamalla i. e. Irivabeḍanga Satyāśraya, the son of the Chālukya Taila II,[2] informs us that Āhavamalla was proceeding against Utpala i. e. Vākpati Muñja in February 995 A. D. The Gadag inscription of the Chālukya Vikramāditya VI[3] praises Taila II as a slayer of Muñja and the Tālaguṇḍa inscription furnishes Śaka 919, Hēmalamba......śu. 5, Sunday as the last known date for Taila II. The details may correspond either to the 13th June or to the 7th November 997 A. D.[4] Therefore Muñja's death and the consequent accession of Sindhurāja must have taken place sometime between February 995 A. D. and June 997 A. D., say in 996 A. D.

Having fixed the last date for Muñja, let us now try to find out the probable date of Bhoja's accession. The days are gone when scholars were afraid to ascertain either the date of Bhoja's accession or that of his death.[5] Now we are more or less on stable grounds thanks to recent discoveries. The *prabandhas* invariably mention a period of fifty-five years, seven months and three days as the reign period of Bhoja.[6] Having got no evidence to the contrary, we my accept this detailed informat-

---

1. *Sarga*. Verses 98–99. Ballālasena's *Bhojaprabandha* also mentions, though with a defective chronology as we have seen, the rule of Sindhurāja. Rajavallabha's narration (unlike that of Merutunga) that Sindhurāja had been *yuvarāja* under Munja (Prastava I verses 53–55) and lived to mourn over the latter's death may indirectly indicate that Sindhurāja's succession was not completely ruled out,
2. Ep. Ind. Vol XXXIII, pp. 131 ff. It is equally probable that this Āhavamalla is identical with Taila II himself.
3. Ep. Ind. Vol. XV, pp. 348 ff. R. G. Bhandarkar has wrongly attributed this inscription to Taila II himself (*Bomb. Gaz.* Vol. I, Pt. II, p. 213)
4. Ep. Carn. Vol; VII, Introduction p. 18 and Sk. No. 179.
5. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, p. 232.
6. *Prabandha*. op. cit. p. 32, verse 32; *Bhojacharitra, prastāva* I, verse 88. *Bhojaprabandha* op. cit. Verse 6.

ion as true.[1] Basing on Kalhaṇa's verse in which he compared the Kashmir king Kshitipati with Bhoja, and which runs as :

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ ॥[2]

it is said that Paramāra Bhoja should have lived "at that time", after Kalasa's coronation in 1062 A. D.[3] Now the Māndhāta plates of Jayasiṁha,[4] the successor of Bhoja, dated in V. S. 1112 Āshāḍha ba. 13, clearly show that Bhoja could not have lived even upto the middle of 1056 A. D. Kalhaṇa's stanza previous to the above quoted runs like this :

भुक्त्वा शमसुखं भूरीन् वर्षान् परमवैष्णवः ।
स चक्रायुधसायुज्यं ययौ चक्रधरे सुधीः ॥[5]

Therefore the expression तस्मिन् क्षणे etc. in the following stanza may better mean "at that time when Kshitipati became one with Chakrāyudha (Vishṇu) *i. e.* when he died, the two friends of poets were alike", rather than "at that moment (after the coronation of Kalasa) both were equally the friends of poets".[6] If this explanation is correct, Bhoja appears to have been referred to by Kalhaṇa as already being in heavan when Kshitipati went there. Though we have got no dated record of Bhoja's reign to fill up the gap of ten years between 1045 A. D. or 1046 A. D. (given by the Tilakawāḍā plates of the time of Bhoja,[7]) and June 1056 A. D. (given by the Māndhāta plates of Jayasimha)[8] the recently discovered Dēvalāli pates of the Yādava Bhillama III[1] dated in Ṣaka 974, Nandana, Pushya ṡu. 15, lunar

1. Ganguly, op. cit. pp. 80-81; D. C. Sircar, Ep. Ind. Vol. XXXIII, p.
2. *Rājataranginī* (Ed. by M. A. Stein, New Delhi, 1960) *Taranga* VII, Verse 259.
3. Ep. Ind. Vol. I, p. 233.
4. Ep. Ind. Vol. III, pp. 46 ff.
5. *Rājataranginī*, op. cit. Taranga VII, Verse 258.
6. The explanation of the word सः (in the Verse 259) as "Anantadeva" given by one of the MSS of the *Rājataranginī* (op. cit. footnote 1) is wrong as he is referred to only in the following verse (तच्छब्दस्य सन्निहितपूर्वपरामर्शित्वनियमात्). Unfortunately some scholars accept this wrong meaning, and stand against Buhler's correct interpretation of this word as "Kshitpati" who has been referred to continuously till the verse 258 (See S. N. Dasgupta and S. K. De, *A History of Sanskrit Literature, Classicial Period*—Calcutta, 1947- p. 653 foot note 1). Buhler's interpretation is supported by the poet Bilhaṇa who also compares, in clear terms, Kshitipati with Bhoja in a verse running like this :

   Cf. यस्य भ्राता क्षितिपतिरिति ख्यातिभाजां निधानं
   भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोऽभूत् ॥

   (*Vikramānkadevacharita*—Jyotish Prakash Press, Benaras, 1945. *Sarga* XVIII, Verse 47). Probably with a view to compromise, unnecessarily of course, the *Rājataranginī* with the Māndhāta plates of Jayasiṁha, the expression तस्मिन्क्षणे has been translated into "at this epoch" (See *The River of Kings* – a translation of *Rājataranginī* by Ranjit Sitaram Pandit-Vol. I. p. 238). But it is doubtful whether this word usually used in the sense of a very small unit of time can yield the meaning "epoch".
7. *Proc. Trans. First Ori. Conference*, Poona, pp. 319 ff; *Ep. Ind.* Vol. XXI, pp. 167 ff.
8. Op. cit.
9. Copper Plate No. 12 of A. R. Ep. for 1957-58.

eclipse, corresponding to 1052 A. D. December 28, refers to a war between Bhoja and Chālukya Āhavamalla[1] probably fought during that year. Again Daśabala refers to the rule of Bhoja in his *Chintamanisaranika*, an empirical calender for the Śaka year 977,[2] corresponding to March 1055 to March 1056. All these above evidences, though recently came to light, well support Kielhorn's conjecture that "it seems probable that Bhojadēva's reign came to an end not very long before the date of the Māndhātā plates of Jayasiṁha".[3] Now we have to allow some interval between Bhoja's death and Jayasiṁha's accession before he could issue his plate in June 1056 A. D., during which period the joint forces of the Chaulukyas and the Kalachuris were occupying Malwa, and were driven out by Jayasiṁha with the help of the Chalukyas of Kalyāṇi.[4] If we allow one year's interval for the purpose and assign Jayasiṁha's accession to the beginning of 1056 A. D. and Bhoja's death to the very end of 1054 A. D., we may have to assign Bhoja's accession and the end of Sindhurāja's rule to the middle of 999 A. D. (i. e. 1054 minus 55 years and 7 months the period of Bhoja's reign).

Thus Sindhurāja had a very short reign of about four years only between 996 A. D. and 999 A. D. Būhler believed that years must have elapsed since the accession of Sindhurāja, and before his exploits were written in the *Navasāhasānkacharita*. On that ground he assigned the composition of that work sometime about 1005 A. D. He argued that as Padmagupta does not refer to Bhoja in his work, the latter could not have reached his majority viz. his sixteenth year and that "the time when Bhoja can heve assumed the reign of government must fall about 1010 A. D. or even somewhat later."[5] However the Mōḍāsa plates of Bhoja[6] inform us that he was already on the throne in May 1011 A. D. and probably had a son also called Vatsarāja[7] then old enough to govern a province and issue a charter. Thus it indicats that Bhoja was not a minor in 1005 A. D. An allowance of about eight years of interval between Sindhuraja's accession and the composition of the *Navasāhasānkacharita* may not be necessary. There is no reference to Bhoja in that work probably because Padmagupta might have thought that such a reference did not suit to the theme of the *kāvya* viz. Sindhurāja's love and marriage with Śaśiprabhā. The poet does not refer even to Dūsala or Usa(tpa)la, probably the elder son of Sindhurāja. Again it is not improbable that Padmagupta started his composition when Sindhurāja was a *yuvarāja* or viceroy either in Marumaṇḍala or in any other province, and he completed it when Sindhurāja was on throne.

---

1. *A. R. Ep.* 1957-58, p. 2.
2. Published in *JOR*, Vol. XIX, Pt. II, Supplement. However it is to be pointed out that there is no difinite proof to show that the work was composed during that year and not earlier. So it is doubtful whether the reference is to rule of Bhoja in that year. But cf. Ep. Ind. Vol. XXXIII, p. 195.
3. Ep. Ind. Vol. III, p. 48.
4. Ganguly, op. cit. pp. 118, 123.
5. Ep. Ind. Vol. I, p. 232. Ray (op. cit. p. 865) accepts this view.
6. Ep. Ind. Vol XXXIII, pp. 192 ff.
7. Ibid. p. 193.

Merutuṅga's story of Muñja's fatal expedition describes Taila II as the aggeessor and Muñja as a defender who, instead of stopping with driving out the aggressor, crossed the Godavarī, the boundary between the two kingdoms of the Paramāras (in the north) and the Chālukyas (in the south), inspite of the advice given by his minister Rudrāditya.[1] But in the *Bhojacharitra* Muñja figures as the aggressor. The Chikkerur inscription[2] indicates that the Chālukyan forces did not meet Muñja probably till February 995 A. D. as they were engaged till then in the southern part of their kingdom. It gives, as we have seen, a probable date of this Paramāra-Chālukya encounter viz. some time between 995-997 A. D. Again this inscription appears to support why Taila II was repeatedly vanquished by Muñja as informed by Merutuṅga.[3] It is more probable that, instead of the pre-occupied and consequently often defeated Taila, the overconscious Paramāra ruler would have committed the aggression.

Rājavallabha tells us how the foresighted minister Rudrāditya informed Muñja of a treacherous plan *(dosha)* on the part of the Paramāra general *(pradhāna)* and how the adamant ruler did not care this.[4] Merutunga simply says that Taila won the battle by fraud and force *(Chhala-balābhyam)*[5]. Muñja's minister Rudrāditya figures as *(ajnapti)* in the Ujjain plates of Vākpati Muñja dated in V. S. 1036, Karttika śu. 15 and an eclipse, corresponding to 979 A. D. November 9.[6] The Dēvalāli plates of Yādava Bhillama III inform us how Bhoja's general Śridharadaṇḍanāyaka whose great grandfather too served under Bhoja's great grandfather Vairisiṁha, handed over a fort, evidently in a treacherous manner during the war with the Chālukya Āhavamalla Someśvara I to the foes of Bhoja and received four villages in return.[7] Probably this incident of treachery had a precedence at the time of Muñja-Taila war.

The Muñja-Mṛiṇālavatī episode[8] related by Rājavallabha closely follows that recorded by Merutuṅga,[9] though Mṛiṇālavatī figures only as a servant woman in the former's narration and as a sister of Taila in the latter's. However Śubhaśīla describes her as a daughter of Taila's father Devala through a *dāsī*, Sundari by name, and as a widow of the king Chandra of Śrīpura.[10] We may dispose of the this story and the episode of Muñja's humiliation etc. as unhistorical. "Yet there is no doubt that the main fact recorded (i. e. Taila killed Muñja) is true."[11] Abul Fazal records the tradition according to which Muñja ended his life in the wars in the Deccan.[12]

---

1. *Prabandha.* op. cit. p. 33 and footnote 4.
2. Op. cit.
3. *Prabandha.* op. cit p. 83.
4. *Prastava* I, verse 141.
5. *Prabandha.* op. cit. p. 33.
6. *Ind. Ant.* Vol. XIV, p. 160
7. *A. R. Ep.* 1957-58, p. 2.
8. *Prastava* I, verses 169-204.
9. *Prabandha.* op. cit. p. 34.
10. Ibid. footnote.
11. Ray. op. cit. p. 857.
12. *Ain-i-Akbari*, op. cit. Vol. II, p. 216.

Rājavallabha's praise of Muñja that he was the sole support of Sarasvati, i. e. goddess of Learning (but according Merutuṅga it is a boast of Muṅja himself)[2] is well attested by the epigraphic as well as the literary[4] evidences.

Merutuṅga refers to Bhoja's invasion of the Deccan.[5] Rājavallabha adds that Bhoja, who invaded in proper time, defeated, imprisoned, humiliated any finally killed Taila in the same manner as the latter did with regard to Muñja.[6] As we have seen, Taila II died sometime in 997 A. D. and Bhoja succeeded to the throne in 999 A. D. Therefore scholars fall into two groups, each apposing the other, on flimsy grounds in identifying this Chalukyan king with two of the grandsons of Taila II, viz. Vikramāditya V and Jayasiṁha II.[7] We do not have any evidence to support this story. However it may indicate the fact that "Bhoja had gained some substantial success against the Chālukyas of Kalyāṇi."[8]

In the anthology called *Sarngadharapaddhati* Sarasvatikuṭumba and Sarasvatikuṭumbaduhitṛi figure as the authors of some vetses (e. g. vv. 511, 1005 and 1218) and the latter author is said to mention Bhoja.[9] Though Merutunga uses the word सरस्वतीकुटुंब in the sense oi *"the family of Sarasvati"*,[10] Rajavallabha uses it as the name of a poet.[11] Both the Jain authors describe Bhoja's marriage with the daughter of Sarasvatīkuṭumba[12] and Rājavallabha gives her the imaginary name Guṇamañjarī.[13] Though the story of Sarasvatīkuṭumba may be set aside as a mere fiction, Aufrecht's list corroborates the central fact that both the poets were probably contemporaries of Bhoja and enjoyed his favour.[14]

Māgha, the author of the famous *kāvya* known as *Śiśupālavadha* or *Māghakāvya*, speaks of himself, to the end of that work, as the son of Dattaka *alias*

---

1. *Prastava* I, Verse 213.
2. *Prabandha*. op. cit. p, 87.
3. E.g. वक्तृत्वोच्चकवित्वतर्ककलनाप्रज्ञातशास्त्रागमः
   श्रीमद्वाक्पतिराजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥
   (The Udayapur Prasasti—op. cit—Verse 13).
4. E. g. अतीते विक्रमादित्ये गतेऽस्तं सातवाहने ।
   कविमित्रे विशश्राम यस्मिन् देवी सरस्वती ॥
   (The *Navasāhasānkacharita*–op.–cit–Sarga XI, Verse 93).
5. *Prabandha*. op. cit. p. 48.
6. *Prastava* I, Verses 255-58.
7. *Bombay Gaz.* Vol. I, pt II, p. 214; Ojha–*History of the Solānkis*, pt. I, pp. 87 ff; *Ind. Ant.* Vol. XLIII, p. 118, footnote 54; Ganguly, op. cit. pp. 90-91; Ray, op. cit. 876, footnote 6.
8. Ray, op. cit· p. 876.
9. Aufrecht's *Catlogues Catalogorum*, S. V. *Bhojadeva*, (p. 418) sv *Sarasvātikutumba* and *Sarasvati kutumbaduhitri* (p. 699).
10. Cf. प्रतीहारेण विज्ञप्तः "स्वामिन् ! देवदर्शनोत्सुकं सरस्वतीकुटुम्बं द्वारमध्यास्ते ।" *Prabandha*. op. cit. p. 42; cf. Tawney, op. cit., p. 89.
11. Cf. सरस्वतीकुटुम्बाख्यो द्विज एकः समागतः । *Prastāva* I. verse 215.
12. *Prabandha*. op. cit. p. 43; *Prastāva* I, v. 249.
13. *Prastāva* I Verse 249. Both the jain authors appear to think that the word *Sarasvatikutumbaduhitri* cannot be a name.
14. Ganguly, op. cit. p. 276.

Sarvāśraya, and the grandson of Suprabhadēva, a *sarvādhikārin* under the king Varmala.[1] The *Prabhāvakacharita*, said to have been written in the last quarter of the 13th century by the Jaina author Prabhāchandra, gives the same genealogy of Māgha's family.[2] It is evident that Māgha could not have lived later than the second half of the eighth century or the first quarter of the ninth century as his verses have been quoted by Ānandavardhana and Vāmana who, according to Kalhaṇa, were in the courts respectively of Avantivarman (855-83 A. D.) and of Jayāpīṭha (779-813 A. D.).[3] However this poet is described by all the Jaina authors, including Prabhāchandra, as a contemporary of Bhoja (c. 999-1054 A. D.). Again Māgha is described by Rājavallabha as the son of Sivāditya who was one of the priests of Bhoja's family.[4] Thus, from the fact that the Jain traditions invariably connect Māgha and Bhoja and from the way in which the former is introduced in the *Bhojacharitra*, it appears to be not altogether improbable that in Bhinmal there was a person called Māgha, (different from the author of *Śisupālavadha*) who was perhaps a scholar and friend of Bhoja and that the Jaina authors wrongly attribute the earlier Māgha's work to this later man.[5]

Dhanapāla's contemporaneity with Bhoja described in the Jaina traditions which are evidently followed by Rājavallabha[6] has been questioned by Būhler[7] and Tawney[8] on the ground that Dhanapāla's own statement in *Pāiyalachchhi* clearly shows that he completed his work in V. S. 1029=971-72 A. D. when probably Sīyaka was ruling. It is said that Dhanapāla could have flourished under Muñja not under Bhoja. However it is clear from the *Tilakamanjari* that Dhanapāla wrote it only after Bhoja was crowned by Muñja.[9] The *Prabandhakāras* may be exaggerating that contacts between Bhoja and Dhanapāla.

The contents of the *prastāvas* II-V may be regarded as unhistorical myths and cock-and-bull stroeis which "do not delight so much the minds of the wise."[10] Vararuchi, who is referred to only once in the *Prabandhachintamani* as the chief of the scholars of Bhoja's court[11] figures in the *Bhojacharitra* as the chief character in the story next only to Bhoja.

The fifth *Prastava* describes activities of Devarāja, and Vatsarāja the two sons of Bhoja. Regarding Vatsarāja it may be said that he was probably identical

---

1 This name of the king is variously read in the different manuscripts, See *Sisupalavadha* (NSP, 1947) Introduction p. 6.

2. Ibid pp. 3-4.

3. *Rajatarangini*, op. cit. V, Verse 34, IV, Verses 495-97.

4. Prastāva I. Verse 261. It is to be noted that Merutunga does not refer Māgha's father by name.

5 Cf. Tawney, op. cit. Introduction p. xi. *Sisupālavadha* op. cit. introduction, p. 5 footnote 1.

6. Prastāva I. Verses 262-334. *Prabandha*, op. cit. pp. 55 ff.

7. *Pāiyalachchhi*, ed. by Buhler, introduction p. 6; Ep. Ind. Vol. I, p. 23[illegible].

8 Op. cit. p. x.

9 *Tilakamanjari* op. cit. p. 7, verses 49-50.

10 Tawney, op. cit. p. 2.

11. *Prabandha*, op. cit. p. 74.

with his namesake figuring as the governor of the Arddhāshṭamamaṇḍala and as the donor in the recently published Modāsā plates of Bhoja.[1] This epigraph describes him as *Mahārāja-putra*, most probably meaning the son of the overlord i. e. Bhoja.[2] This meaning appears to be supported by our *Bhojacharitra*. With regard to Devarāja, it is very difficult to say whether Rājavallabha wrongly connects Bhoja with that Devarāja, whose inscription is said to be dated in V. S. 1059-1002 A. D.[3] and who figures, in the Kirāḍu inscription,[4] as a member of the Bhinmal branch of the Paramāras founded by Sindhurāja's son Dūsala or Usa(tpa)la, who was, as we have seen, anelder brother of Bhoja.

Apart from these facts, above discussed, Rājavallabha touches some intesting social and religious customs which we have tried to understand in the Explanatory Notes at the end.

—*THE EDITORS*

---

1. Op. cit.
2. Ep. Ind. Vol. XXXIII, p. 198.
3. Ganguly, op. cit. p. 345 and footnote 3.
4. Op. cit.



अथ भोजचरित्रप्रारम्भः

[अथ प्रथमः प्रस्तावः]

[1]आश्वसेनं[2] जिनं नत्वा गौतमादिगणाधिपान् ।
[3]चरित्रमन्नदानस्य कुर्वे कौतूहलप्रियम् ॥१॥
पूर्वे भवे यथा दानं दत्तं भोजनृपेण तु ।
प्रबन्धं तस्य वक्ष्यामि भव्यानां बोधहेतवे ॥२॥ तथाहि—
भारतक्षेत्रमध्यस्थो देशो मालवसंज्ञकः ।
अनेकनगरग्रामपत्तनैः [4]प्रविराजितः ॥३॥
तत्रास्ति नगरी रम्या धारानाम्नी[5] महापुरी ।
अनेकमन्दिराकीर्णा [6]जैनप्रासादशोभिता ॥४॥
धनाढ्या बहवस्तत्र श्रेष्ठिसार्थाधिपादयः[7] ।
लक्षेश्वरा न दृश्यन्ते कोटिकोटीश्वराग्रतः ॥५॥
यत्र धर्मपरा लोकाः सदाचाराः क्रियान्विताः[8] ।
भूषिता [9]भूषणैर्द्रव्यैर्मन्ये सुरपुरीनिभा[10] ॥६॥
भूपस्तत्रास्ति विख्यातो दानमानगुणान्वितः ।
शूरो वीरवरः प्राज्ञः सिन्धुनामाऽस्ति भूपतिः ॥७॥
अनेकोपाङ्गरचनारचकः साहसान्वितः[11] ।
चतुरश्चारुमूर्तिस्तु[12] पमारान्वयभूषणम्[13] ॥८॥
अनेकान्तःपुरीवर्गपरिवारपरीवृतः ।
विशेषाद्रमणीवर्गमध्येऽप्येका मनोहरा ॥९॥

---

1. A begins with श्रीवीतरागाय नमः । 2. P^3 °नि; B^1 °न° । 3. P^2 चा° । 4. P^2 °त्तनेन वि°; B^1 and B^3 °ट्टणेन वि° । 5. P^2 and A °म । 6. A, B^1 and B^3 जिन° । 7. P^2 श्रेष्ठसर्वा° । 8. P^1, A and L °रक्ति° । 9. P^2 भूपितद्र° । 10. B^1 °निभाः । 11. P^2, B^1 and B^3 साहसाग्रणीः । 12. P^2 °श्च । 13. P^2 and B^1 परमा°; B^3 पर्मा° ।

पट्टराज्ञीपदे न्यस्ता नाम्ना रत्नावलीत्यहो ।
भुनक्ति तत्समं भोगान्[1] राज्यलीलोचितान्[2] सुखम् ॥१०॥
परं कर्मनियोगेन भूपः सन्तानवर्जितः ।
दम्पती कुर्वतस्तस्मात्तौ द्वौ दुःखं सदा हृदि ॥११॥
धिग्जन्म धिगिदं राज्यं धिग्मे बलपराक्रमौ ।
दध्यौ धिग्मे गुणाधिक्यं यदपुत्रो नृपोऽस्म्यहम्[3] ॥१२॥
शिवादित्याभिधो मन्त्री चतुर्धाबुद्ध्यधिष्ठितः[4] ।
तत्प्रियागुणमञ्जर्यां[5] रुद्रादित्याभिधः सुतः ॥१३॥
भूपश्चित्तविनोदाय सामन्तैर्मन्त्रिभिः पुनः ।
मिलित्वाऽऽगत्य विज्ञप्तो गम्यते मृगयाविधौ[6] ॥१४॥
हयमारुह्य[7] भूपेन्द्रः परिच्छदसमन्वितः ।
जगाम[8] बहिरुद्याने त्रासयन्प्राणिनः परान्[9] ॥१५॥
एकाकी तत्र भूपालो बभ्राम[10] सरितस्तटे[11] ।
शिशुं ददर्श सत्कान्तिं स्थितं मुञ्जतृणोपरि ॥१६॥
सुरूपं बालकं दृष्ट्वा राजा हर्षपरायणः ।
प्रच्छन्नोच्छङ्ग[12]मादाय गतो रोरो[13]निधानवत् ॥१७॥
रत्नावलीं समाहूयैकान्ते बालमदर्शयत् ।
बालं सूर्योपमोद्द्योतं[14] दृष्ट्वा राज्ञी विसिष्मये[15] ॥१८॥
भूपेनाप्यस्य [16]वृत्तान्तं प्रियाया उक्तमग्रतः[17] ।
पुण्ययोगादसौ लब्धः पाल्यो [18]भद्रेऽङ्गजन्मवत् ॥१९॥
राज्या [19]मोदवशात्सद्यः स्तनौ स्तन्येन पूरितौ ।
[20]गूढगर्भवशाज्जातः[21] पुत्रो[22] [23]भूपगृहेऽद्भुतः[24] ॥२०॥

---

1. A, B^1 and B^3 तत्समं भुञ्जयत्येव । 2. P^2, A and B^3 °चितं; B^1 °चितः । 3. P^2, A, B^1 and B^3 धिग्मे गुणगणाधिक्यं यदि पुत्रविवर्जितम् (B^1 तः) । 4. B^1 and B^3 बुद्धिनायकः । 5. P^1, P^3, and L °र्या । 6. B^1 and B^3 मृगयां प्रति । 7. P^1, P^3, A, B^1 and B^3 हयेना° । 8. A and B^3 आगत्य; B^2 गता ते । 9. P^2 जीवानां नाशयन्नपि; B^1 and B^3 जीवानां त्रासयन्नपि । 10. L जगाम; B^1 भ्राम्यते; B^3 भ्रमते । 11. B^1 and B^3 सरितातटे । 12. P^2 °त्सङ्ग° । 13. B^1 रोरी; B^3 रोर° । 14. P^2 बालसूर्योपमं कान्त्या; A बालसूर्यसमं कान्तिं । 15. P^2 and A सविस्मिता । 16. P^2 and A °न मुख्य° । 17. P, P^3 and L °न्तं प्रियाया उक्तमग्रतः; A, B^1 and B^3 प्रियाग्रे च निरूपितम् । 18. P^2, A, B^1 and B^3 पुण्ययोगादिमं पुत्रं पाल्यं भद्रे । 19. P^1 P^3, A and L मोह° । 20. P^2, A, B^1 and B^3 °नांसना° । 21. P^2, A, B^1 and B^3 °तं । 22. P^2 and A °त्रं । 23. P^2, B^1 and B^3 राज; A राज्ञो । 24. A, B^1 and B^3 °तम् ।



एवं श्रुत्वा प्रजाः सर्वाः[1] संजाता हर्षपूरिताः ।
वर्द्धापनाय सर्वास्ता गता भूपस्य मन्दिरे ॥२१॥
महाद्भुतः कृतो राज्ञा पुत्रजन्ममहोत्सवः[2] ।
दानमानवशाज्जाताः सन्तुष्टा याचकादयः ॥२२॥
षष्ठेऽह्नि षष्ठिकाचारा नखशुद्धिर्दशाह्निके ।
एकादशे दिने भुक्ताः प्रकृष्टाः[3] स्वजनादयः ॥२३॥
विटपे[4] मुञ्जमध्यस्थः[5] संप्राप्तो[6] बालकः[7] पुरा ।
एवं [8]विचिन्त्य भूपेन मुञ्जनामास्य निर्मितम्[9] ॥२४॥
द्वितीयेन्दुकलावत्स ववृधेऽथ दिने दिने ।
लाल्यमानोऽथ धात्रीभिः संजातः पञ्चवार्षिकः ॥२५॥
मुञ्जभाग्याधिकत्वेन राज्ञी रत्नावली तदा ।
गर्भाधानपरा जाता हर्षेण पूरिता हृदि ॥२६॥
वर्धमाने च तद्गर्भे राजा राज्ञीप्रमोदभाक् ।
दोहदैः पूर्यमाणैस्तद्गर्भः पूर्णो दिनैस्ततः ॥२७॥
राज्ञ्यास्तनूरुहो[10] जातः शुभे लग्ने च वासरे[11] ।
वर्धापनं पुरे [12]चक्रुर्भूपादेशेन तत्प्रजाः ॥२८॥
सिन्धुलः सिन्धुपुत्रोऽयं चिरं जीयाज्जनोऽवदत्[13] ।
वर्द्धन्तौ लाल्यमानौ स्तः[14] पुत्रौ द्वौ मुञ्जसिन्धुलौ ॥२९॥
ज्ञात्वाऽध्यापनयोग्यौ[15] तौ कलाचार्यस्य चार्पितौ[16] ।
दिनैः स्तोकतरैर्जातौ[17] शस्त्रशास्त्रकलान्वितौ ॥३०॥
यौवनेन च संप्राप्तौ ज्ञात्वा सिन्धुनृपेण तु[18] ।
सुशीले कुलजे कन्ये तौ द्वावपि विवाहितौ ॥३१॥
मुञ्जनामा[19] सुतो [20]जीववल्लभः पितरोस्तयोः ।
पुण्याधिकस्य जीवस्य[21] प्रशंसां न करोति कः ॥३२॥

---

1. P^2, A, L and B^3 प्रजा सर्वा····रिता । 2. A °च्छवः । 3. P^2 and L °हृ° । 4. P^2, A, B^1 and B^3 विकटे । 5. P^2 and A °स्थ° । 6. P^2 and A °प्त° । 7. P^2 and A °कं° । 8. P^2, A, B^1 and B^3 सं° । 9. P^2, B^1 and B^3 नाम प्रतिष्ठितम् । 10. P^2 राज्ञीतनौ सुतौ; A राज्ञी सुतासुतौ । 11. P^2 सुलग्ने शुभवासरे । 12. P^2 and A कारं । 13. B^1 and B^3 °नोक्तिभिः । 14. P^2 and A तौ । 15. A °त्वाध्ययन° । 16. A °र्ये समर्पितौ; B^1 °र्यसमन्वितौ । 17. B^1 and B^3 °तरैर्मध्ये । 18. P^2 and A तौ । 19. A °म । 20. A °तोऽतीव० । 21. P^2 and A^1 °धिके जनेनापि ।

नान्तरं वेत्ति कोऽपीति[1] [2]तनुजन्माऽथ पालकः ।
एकदा सिन्धुभूनाथो रात्रौ मुञ्जालये गतः ॥३३॥
तेन लज्जावता[3] क्षिप्ता पर्यङ्काधः प्रिया निजा ।
सत्कृत्यासनकं दत्त्वाऽग्रे पितुः समुपाविशत् ॥३४॥
विलोक्य दक्षिणं वामं[4] भूपेनालापितः सुतः ।
तृतीयो न हि कोऽप्यत्र सन्निधौ वर्तते जनः[5] ॥३५॥
अत्र स्थाने सुतोऽप्याह न कश्चिद्वर्ततेऽपरः[6] ।
एवं श्रुत्वाऽवदद्भूपः शृणु वत्स[7] ! वचो मम ॥३६॥
पालकस्त्वं सुतोऽस्माकमङ्गजन्माऽस्ति सिन्धुलः ।
न कश्चिदन्तरं[8] वेत्ति तवाप्युक्तं मयाऽधुना ॥३७॥
न हि [9]काचिदसौ वार्ता गुणैस्तुष्यन्ति साधवः ।
परोऽपि गुणवान् पूज्यस्त्यज्यते निर्गुणो[10]ऽङ्गजः ॥३८॥ यदुक्तम्[11]—
परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः[12] परः ।
अहितो देहजो[13] व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥३९॥
स्पर्शयन् पाणिना स्पृष्टं[14] सिन्धुभूपोऽवदत्तदा[15] ।
राज्यश्रियं ते ददामि परमेकं[16] वचः शृणु ॥४०॥
सिन्धुलोऽयं तव भ्राता पालनीयोऽत्र[17] सर्वदा ।
विनाशं क्वाऽप्यसौ कुर्वन् रक्षणीयो मदुक्तितः[18] ॥४१॥
यदृच्छया[19] मया भुक्ता राज्यसंपदिहाधिका[20] ।
वृद्धत्वे[21] त्वधुना प्राप्ते साधयामि परं भवम्[22] ॥४२॥
एवं निरूप्य मुञ्जाग्रे भूपतिस्तत उत्थितः[23] ।
सोपानाग्यावदुत्तीर्य गच्छति स्म[24] शनैः शनैः ॥४३॥
षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रस्तावद्ध्यात्वेति मुञ्जराट् ।
पर्यङ्काधःस्थभार्यायाः खड्गेन च्छिन्नवान् शिरः[25] ॥४४॥

---

1. B^1 न वेत्तीत्यन्तरं कोपि । 2. P^2 and A अ(चा)ङ्ग° । 3. P^2 and A लज्जातुरे । 4. P^2, A and B^1 वामदक्षिणमालोक्य । 5. P^2, A, and B^1 जनो वर्तति सन्निधौ । 6. P^2, A, and B^1 वर्तते न हि कोऽपरः । 7. A and B^3 °वत्स । 8. P^2, A and B^1 न हि कोऽप्यन्तरं । 9. P^2 and A कि । 10. P^2 and A °णा° । 11. P^2 and A यथा । 12. P^2 °र्बन्धुर्न हितवान् । 13. P^2 °तो । 14. P^2 मोहात्पृष्टि करे कृत्वा । 15. P^2 and A वदते सिन्धुभूपतिः । 16. A °क । 17. P^2 and A हि । 18. P^2 and A रक्षणीयो हि मद्वचात् । 19. P^2 and A दृढ़ यात्रो । 20. P^2 and A य:च्छया राज्यसंपदा । 21. P^1, P^3 and L वार्द्धके । 22. P^2, A and B^1 परत्रं साधयाम्यहम् । 23. P^2, A and B^1 उत्थितो भूपतिस्ततः । 24. P^2 गच्छमानः । 25. A °रम् ।

खड्गखाट्कारमाकर्ण्य[1] द्रुतं व्याघुटितः स्वयम्[2] ।
दृष्ट्वा च तत्प्रतीकारं सिन्धुश्चित्ते[3] व्यचिन्तयत् ॥४५॥
राज्यश्रियं दयाहीनः पालयिष्यत्यसौ ननु[4] ।
विमृश्येत्यलके चक्रे शोणितेनास्य पुण्ड्रकम्[5] ॥४६॥
प्रातस्तु भूप आस्थाने ह्युपविष्टः सभान्वितः ।
आकारितः शिवादित्यो[6] रुद्रादित्यसुतान्वितः[7] ॥४७॥
नृपेणाप्रच्छि सोऽमात्य[8] एकान्तस्थानसंस्थितः[9] ।
मुञ्जाय दीयते राज्यं मन्त्रिमुद्रा सुते तव ॥४८॥
सुमन्त्रं मन्त्रयित्वेमं पृष्ट्वा ज्योतिषिकं नरम्[10] ।
मन्त्रिणां पश्यतां राज्ञा स्थापितो मुञ्जभूपतिः[11] ॥४९॥
रुद्रादित्याय मुञ्जेन मन्त्रिमुद्रा समर्पिता ।
सिन्धुराजेति कृत्वाऽभूत्परलोकार्थसाधकः ॥५०॥
अथ मुञ्जनरेन्द्रस्य राज्ये प्रमुदिताः प्रजाः[12] ।
धर्मकर्मपरा जाता भूपे पुण्याधिके सति ॥५१॥
विद्यया[13] विनयेनापि पाण्डित्येन विवेकतः[14] ।
मुञ्जभूपसमः कोऽपि विद्यते न हि भूपतिः ॥५२॥
पालयामास तद्राज्यं यौवराज्यं च[15] सिन्धुलः ।
सीमापालैर्नृपैः कैश्चिदाज्ञा नैवास्य लङ्घ्यते ॥५३॥
नागाधिपो बलैर्योऽस्ति[16] विवेकविनयैर्गुरुः[17] ।
रिपुतारागणे सूर्यो मुञ्जपादाब्जसेवकः ॥५४॥
ईदृग्गुणसमाश्लिष्टः[18] सिन्धुलः सिन्धुना समः[19] ।
सेवते मुञ्जभूपालं[20] सदाऽप्येकाग्रमानसः ॥५५॥ [युग्मम्]

1. P², A and B¹ तस्य पाट्कारकं श्रुत्वा । 2. P², A and B¹ °तो नृपः । 3. P², A and B¹ हृदि भूपो । 4. P² °ष्यति नान्यथा । 5. P², A and B¹ विमृश्येदं कृतं भाले तिलकं तेन शोणितम् (B¹ शोणितैः); L मुद्रकम् । 6. P¹ and A शिवादित्यः समाकर्ण्य । 7. A °समन्वितः । 8. P², A and B¹ °णामात्यकः पृष्टो । 9. P², A and B¹ मन्त्रमेकान्तसंस्थितः । 10. B¹ ज्ञातिमापृच्छ्य भूपतिः । 11. P², A, B¹, and B³ स्थापितो मुञ्जभूनाथो मन्त्रिसामन्तपश्यतः । 12. P², A, and B³ °ता प्रजा; L °ता नराः । 13. A विद्यायां; L विद्याया । 14. P², A and B¹ त्रिवेके विदुरेऽपि च । 15. P², A and B³ युवराजोऽथ; B¹ युवराज्येऽथ । 16. P², B¹ and B³ बले नागाधिको यस्तु । 17. B¹ and B³ विवेके विनये गुरुः । 18. P², A, B¹ and B³ ईदृग्गुणेन संयुक्तः । 19. P², A, B¹ and B³ सिन्धुसादृशः । 20. P², A, B¹ and B³ °भूपस्य ।

यदा यदा सदस्येति[1] सिन्धुलः शुद्धमानसः ।
लोहमय्यावुभे कुश्यौ[2] पाण्योर्लात्वाऽक्षिपत्क्षितौ[3] ॥५६॥
निष्कास्येते न केनापि सामन्तैः सुभटैरपि[4] ।
उत्थीयमानः सदसो[5] निष्कासयति ते स्वयम् ॥५७॥
[6]हृदि तन्मुञ्जभूपस्य पाट्करोति[7] दिवानिशम् ।
माता वदति मा[8] भेदं कदाचित्तनुजन्मना ॥५८॥
विनाशयत्यसौ मा मां राज्यं मा लाति[9] मामकम्[10] ।
दध्यौ यथा तथा तस्मान्मारणीयो मयाऽनुजः[11] ॥५९॥
क्रीडायै मुञ्जभूनाथो वने याति स्म चैकदा ।
स्कन्धे लोहकुशीं बिभ्रत्तैलकः सम्मुखोऽमिलत्[12] ॥६०॥
यौवनोन्मत्तलीलेन[13] कौतुकाक्षिप्तचेतसा[14] ।
अक्षेपि सिन्धुलेनास्यैव कण्ठेऽलङ्कृतिः कुशी[15] ॥६१॥
[16]तद्दृष्ट्वा मुञ्जभूनाथो [17]हृदयेऽतिचमत्कृतः ।
मारणीयो मया नूनमुपायेन यथा तथा ॥६२॥
गृहागतं समाहूय पट्टहस्त्यधिरोहकम्[18] ।
एकान्ते गूढमन्त्रेण शिक्षां दत्ते स्म भूपतिः[19] ॥६३॥
स्नानस्यावसरे[20] चेभं[21] ढौकयित्वा समुद्धतम्[22] ।
मारणीयो ममाज्ञातो राज्यद्रोही[23] हि सिन्धुलः ॥६४॥
अन्येद्युः सिन्धुलस्तत्रातिष्ठदास्थानमण्डपे[24] ।
भूपाज्ञया गजो मुक्तः [25]कण्ठेनोच्चैरवादि च[26] ॥६५॥

---

1. B^1 and B^3 सभां याति । 2. P^2 and A कुशलोहमयी ते द्वे । 3. P^2 and A करान्यां भूमिमाक्षिपत्; L पाण्या त्वात्वाऽक्षिपत् क्षितौ । 4. P^1 and P^3 °टैश्च ते । 5. A समामुत्थीयमानः सन् । 6. P^2, A, B^1 and B^3 हृदये मुञ्ज° । 7. L पट्करोति । 8. P^2 and A मद् । 9. P^2 and A गृह्णाति । 10. B^1 and B^3 विनाशयति चास्माकं राज्यं गृह्णाति निश्चितम् । 11. P^2, A, B^1 and B^3 एवं ज्ञात्वा लघुभ्राता मारणीयो मयाऽधुना । 12. P^2, A, B^1 and B^3 °सागतः । 13. P^2, B^1 and B^3 लीलाद्यां । 14. P^2, A, B^1 and B^3 मानसः । 15. P^2, A, B^1 and B^3 सिन्धुले (B^1 and B^3) पतितस्यैव कण्ठाभरणवत् कुशिम् । 16. L तं । 17. P^2, A, B^1 and B^3 हृदयेन । 18. B^1 and B^3 गृहागते समाहूतः पट्टहस्त्यधिरोहकः । 19. P^2, A, B^1 and B^3 दत्तवान् नृपः । 20. A, B^1 and B^3 स्नानावसरके । 21. L चैनं । 22. P^2 and A समुद्धतः । 23. P^2, A and B^3 °द्रोही । 24. P^2, A, B^1 and B^3 तत्रोपविष्टः स्वस्थ° । 25. P^1 and P^3 कण्ठे । 26. P^2, A, B^1 and B^3 कण्ठोच्चस्वरकेऽवदत् ।

उन्मत्तः [1]सिन्धुरो याति न हि वश्यो ममापि च ।
एवं वदति चायातः[2] सिन्धुलस्यैव[3] सन्निधौ ॥६६॥
आयुधो नास्ति[4] किं कुर्यो दृष्ट्वा स्वामीं पुरः स्थिताम् ।
गृहीत्वा पश्चिमौ पादौ हतः कुम्भस्थले गजः ॥६७॥
सुनीदशनसंदष्टो गजोऽगच्छत्पराङ्मुखः[5] ।
पुच्छं कृष्ट्वा कटी भग्ना सिन्धुलेन गजस्य हि[6] ॥६८॥
भूपतिश्चिन्तयामासाधुना वैरं पटूकृतम्[7] ।
पुच्छच्छेदो भुजङ्गस्येवात्र ज्ञेयोऽतिदुष्करः[8] ॥६९॥
मुञ्जभूपत्यभिप्रायं नैव जानाति[9] सिन्धुलः ।
शुद्धचित्तं यथाऽऽत्मानं तथा विश्वं स पश्यति ॥७०॥
ज्येष्ठकौ[10] द्वौ समायातौ मर्दने कुशलौ कलौ ।
सन्धिप्रोत्तारणे दक्षौ मल्लविद्याविशारदौ ॥७१॥
सामन्तश्रेष्ठिसार्थेश[11]राजव्यापारकोक्तितः ।
[12]कलाकौशल्यविख्यातौ श्रुतौ भूपेन तावपि ॥७२॥
एकान्ते तौ[13] समाहूय ज्ञात्वा [14]मर्दनलाघवम् ।
दानमानेन सम्मान्य राज्ञा वाचाऽभियाचितौ ॥७३॥
भ्रातुः[15] सिन्धुलनाम्नो[16] मे मर्दनावसरे सति ।
कलं पृष्ठौ समारोप्य विह्वलीकृत्य पूर्वतः[17] ॥७४॥
निष्कास्य तस्य[18] नेत्रे द्वे दर्शनीये ममाग्रतः ।
सेवकाः स्वामिभक्ताः स्युर्दोषो न हि कथञ्चन ॥७५॥
मुञ्जराज्ञा यदादिष्टं ताभ्यां तन्मर्दने कृतम् ।
अन्धः[19] सिन्धुलको जातः[20] को जाने कर्मणो गतिम् ॥७६॥
सूरत्वं विक्रमत्वं च[21] पौरुषं च पराक्रमम् ।
संग्रामे [22]वैरिघातत्वं गतं सर्वं विचक्षुषः[23] ॥७७॥

---

1. A °त्तसि° । 2. A, B^1 and B^3 वदन् समायातः । 3. P^2 and A °स्य च । 4. P^2, A, B^1 and B^3 न हि । 5. B^1 °खम् । 6. B^1 सिन्धुरे सिन्धुरस्य च । 7. P^2 वैरं प्रकटितं सुना । 8. P^2 and A दृष्टान्तोत्र तथाकृतम् । 9. P^2 नो जानातीह; B^1 and B^3 नो जानाति । हि । 10. P^2, A, B^1 and B^3 येष्टिकौ । 11. P^2 °शाद् । 12. P^2 and A कौशल०; B^1 कुशल° 13. A and B^3 °न्तेन । 14. P^2 कर्म न । 15. P^2 भ्रातः ! । 16. P^2, A, B^1 and B^3 नामानं । 17. P^2, A, B^1 and B^3 कृतपूर्वकम् । 18. P^2, B^1 and B^3 पश्चान्निष्कास्य । 19. P^2 अंध । 20. P^2 and A यातः । 21. B^2 विक्रमं चित्तं; B^1 and B^3 विक्रमं वित्तं । 22. P^2, P^3, B^3 वैर० । 23. P^2, A, B^1 and B^3 गता सर्वे विचक्षुपः ।

निःशल्यत्वा[1]न्नृपस्तस्मै ग्रासग्रामादिकं बहु[2] ।
दत्त्वा निर्वाहयामास[3] पितुर्वाचं[4] विचिन्तयन् ॥७८॥
भार्याऽस्ति[5] सिन्धुलस्यापि[6] नाम्ना रत्नावलीति[7] या ।
साऽथ गर्भवती[8] जाता श्रुत्वा मुञ्जोऽपि[9] हर्षितः ॥७९॥
नवमासैरतिक्रान्तैः[10] [11]सार्धाष्टदिवसैः[12] पुनः ।
प्रसूतिसमये भूपाज्ञया ज्योतिषिकः स्थितः ॥८०॥
नरोऽन्येऽपि बहिर्द्वारे ज्योतिःशास्त्रविचक्षणाः ।
ज्योतिर्मण्डलमीक्षन्ते केचिच्चूडामणीधराः[13] ॥८१॥
धृत्वा वररुचिर्नारीवेषं तस्थौ गृहान्तरे[14] ।
प्रच्छन्नत्वेन लोकेन न ज्ञातः केनचित्पुनः[15] ॥८२॥
[16]अतीवशुभवेलायां शुभग्रहनिरीक्षिता ।
प्रसूतिर्बालकस्यासीज्झल्लर्या नाद उत्थितः ॥८३॥
बाह्यद्वारस्थितो[17] ज्योतिषिकः पृष्टो नृपेण च[18] ।
जातो दुष्टग्रहैर्बालो वने मुक्तस्ततः शिवम् ॥८४॥
सूतिकागृहमध्यस्थो लिखित्वाऽक्षरचीरिकाम् ।
विमुच्य च[19] गृहद्वारे ययौ वररुचिर्बहिः ॥८५॥
मोचनाय वने तेन[20] राजादेशेन[21] ते नराः ।
मातुरुत्सङ्गस्थितं बालं लात्वा गच्छन्ति यावता ॥८६॥
तावद्द्वारस्थिता पत्री दत्ता मुञ्जस्य तैर्नरैः ।
वाच्यते स्म तु[22] [23]सामन्तैस्तन्मध्यस्थमिदं[24] यथा ॥८७॥
[25]पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि सप्त मासा[26] दिनत्रयम् ।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः[27] ॥८८॥

---

1. P^2, A, B^1 and B^3° त्वे नृ° । 2. P^2, A, B^1 and B^2 °दिकान् बहून् । 3. P^2 and A निर्वाहयत्तस्मै । 4. P^2 वाचं; A and B^1 वाचां । 5. P^2 वाल्यास्ति । 6. A, B^1 and B^3 पत्नी सिन्धुलक० । 7. L शोभावतीति । 8. P^2, A, B^1 and B^3 °वरा । 9. P^2, A, B^1 and B^3 °ति° । 10. P^2 °मासे दर°; B^1 °मासेऽत्य° । 11. P^2 °न्ते; B^1 °न्तैः (न्ते) । 12. P^2 °से । 13. P^2, B^1 and B^3 केचित् चूडामणिं धृत्वा पश्यन्ति ज्योतिर्मण्डलम् । 14. B^1 and B^3 वररुचिर्वनितावेषधरो भूत्वा गृहान्तरे । 15. P^2, A, B^1 and B^3 प्रच्छन्नः सर्वलोकस्य न ज्ञातः केन कस्यचित् । 16. P^2, A, B^1 and B^3 अतश्च । 17. P^2, A and B^3 °द्वारे । 18. B^1 and B^1 ज्योतिःस्वनं नृपेन पृच्छितः । 19. B^2 संवलित्वा । 20. P^2, A, B^1 and B^3 तस्मिन् । 21. P^2, P^3, L, B^1 and B^3 राजादेश० । 22. P^1, A, B^1 and B^2 वाच्यमाना । 23. P^2 सा पत्री । 24. P^2, A, B^1 and B^3 सामन्तादि(दैः) भूपते । 25. P^2, A, and B^3 उक्तं च—पंचा°; B^1 यथा-पंचा° । 26. L °मास° । 27. P^1, P^3, A, L, B^1 and B^3 °सं······दं······दम् ।

एवं ज्ञात्वा नृपाद्यास्ते[1] सर्वे हर्षवशंवदाः[2] ।
तं बालं स्थापयामासुः कृत्वा[3] वर्धापनं पुरे ॥८९॥
जन्मकुण्डलिका दृष्टा मुञ्जेन मुदितात्मना ।
परमोच्चपदप्राप्तास्त्रयस्तत्र ग्रहाः स्थिताः ॥९०॥
उच्चः केन्द्रस्थितो लग्नाधिपो[4]ऽरिष्टनिवारकः ।
नवग्रहबलोपेता दृष्टा सा जन्मकुण्डली ॥९१॥
एवं हर्षवशाद्भूपो गृहे वर्धापनं घनम् ।
करोति स्म शुभोत्साहं[5] दानमानपुरःसरम् ॥९२॥
नामस्थापनमेतस्य[6] भोजराज इतीरितम् ।
कलाभिर्वा द्वितीयेन्दुर्ववृधेथ दिने दिने ॥९३॥
संजातः पञ्चवर्षीयो[7] लाल्यमानः स[8] सर्वदा ।
वल्लभो मुञ्जभूपस्य प्राणतोपि हि सर्वथा[9] ॥९४॥
[10]क्षिप्तो हर्षेण शालायां[11] पाठकाग्रे पठन् बहु ।
जिह्वायाः [12]प्रकटोच्चारोत्तरलेखेपि पण्डितः ॥९५॥
[13]क्रमाज्जज्ञेष्टवर्षीयः[14] कुमारोयं[15] गुणाधिकः ।
पट्टिकाक्षरसंयुक्ता दर्शिता मुञ्जभूपतेः ॥९६॥
प्रशस्तावयवै रम्यां समीचीनाक्षरावलीम् ।
[16]दृष्ट्वास्य सुगुणावासां मुञ्जो[17] विस्मयमाप्तवान्[18] ॥९७॥
विषवल्लीसमोस्त्येष[19] पोषितोनर्थकारकः ।
स्मरिष्यति वराकोयं वैरं[20] राज्यस्य [21]चात्मनः ॥९८॥
तन्मया बाल्यसंस्थोयं[22] मारणीयो हि नान्यथा ॥
अन्यथा यौवने प्राप्ते बालोयं मां हनिष्यति ॥९९॥

---

1. P^2, A, B^1 and B^3 नृपादीनां । 2. P^2 and L गताः । 3. P^2, B^1 and B^3 स्थापयित्वाथ (P^2तु) तं वालं कृतं । 4. P^2, A, B^1 and B^3 लग्नाधिपोथ (B^1 and B^3 च्च) केन्द्रस्थः सर्वा० । 5. P^2, A, B^1 and B^3 महदुत्सा (A च्छा) हं । 6. P^1 °वास्य । 7. P^2, A, B^1 and B^3 पञ्चवार्षिकको जातः । 8. P^1, A, B^1 and B^3 °नो हि । 9. P^2, A, B^1 and B^3 प्राणादपि हि सर्वदा । 10. A adds, before this verse, प्रशस्तावयवै रम्या मनोज्ञा याक्षरावली । दृष्ट्वा रूपगुणावासं पुनर्विस्मयतां गतः ॥ 11. P^2, A, B^1 and B^3 शालायां क्षिप्रहर्षेण । 12. P^2 and B^1 °यां सदृशो° । 13. P^2, A, B^1 and B^3 क्रमेण चा° । 14. P^2 and A °वार्षिकः । 15. P^2, A, B^1 and B^3 °रोभूद् । 16. P^2, A, B^1 and B^3 दृष्ट्वा रूप° । 17. P^2, A, B^1 and B^3 पुनर् । 18. P^2, A, B^1 and B^3 °यतां गतः । 19. B^1 °प्येष । 20. A चिरं । 21. P^2, A, B^1 and B^3 राज्यं तथा° । 22. P^2, A, B^1 and B^3 तदा मे वालकस्योयं ।

एवं निश्चित्य भूपेन वधकाय निवेदितम् ।
संध्यायां भोजराजोयमागमिष्यति ते गृहे ॥१००॥
छित्त्वास्य शीर्षमस्माकं[1] दर्शनीयं त्वया ध्रुवम् ।
अनर्थो ह्यन्यथा युष्मत्कुटुम्बे हि भविष्यति ॥१०१॥
दत्त्वा शिक्षामिमां तेषां वधकाः प्रेषिता गृहे ।
संध्यायाः[2] समये प्राप्ते भोजस्यावाचि भूभुजा ॥१०२॥
गच्छ [3]चाण्डालमाहूय समानय ममान्तिके ।
नान्यः संप्रेष्यते कोपि कार्येस्मिन्गम्यते स्वयम् ॥१०३॥
भूपाज्ञया गतो बालस्तच्चाण्डालकवेश्मनि ।
वधकैर्मध्यमाहूतो वधनस्य[4] मनोरथैः ॥१०४॥
भोजभूपं समालोक्य प्रदीपाग्रे विशेषतः ।
हस्तौ न वहतस्तेषामायुः[5]प्रबलतावशात्[6] ॥१०५॥ यथा[7]–
सरसांधीयै म वीहि वीहि म पांडैकाढीयै ।
लिहीयो पहिलै दीहि पूटा विणपींपै नही ॥१०६॥
बालोप्यूचे कथं यूयमन्यथाकृतचेतसः ।
कृपापरा वदन्ति स्म शृणु बाल ! नृपोदितम् ॥१०७॥
तस्योक्तः सर्ववृत्तान्तः[8] श्रुत्वा बालोपि सोवदत्[9] ।
मां मारयन्तु भो भद्रा ! विलम्बो न विधीयताम्[10] ॥१०८॥
अन्यथा [11]मुञ्जराड् युष्मत्कुटुम्बस्यापि घातकः ।
जानीत मद्वधं प्रायो युष्माकं[12] शुभकारकम् ॥१०९॥
एतद्वचनमाकर्ण्य चाण्डालास्ते कृपापराः ।
मारणीयो न बालोयं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥११०॥
तथाप्युपायः कर्तव्यः कृते कार्ये सुखं भवेत्[13] ।
बालशीर्षसदृक्शीर्षं कारितं चित्रकारकात् ॥१११॥
तावद्भोजकुमारेण जङ्घायाः शोणिताक्षरैः ।
क्षीरोदकपटे श्लोको लिखित्वैप समर्पितः[14] ॥११२॥

---

1. P^2, A, B^1 and B^3 शीर्षं संछेद्यम° । 2. P^2, A, L and B^3 °यां । 3. A च° । 4. P^2, A, and B^3 वध्य(B^3 ध)काय । 5. A, B^1 and B^3 °स्तस्य चायुः° । 6. P^2, A, B^1 and B^3 °हेतुना । 7. B^3 उक्तं च instead of यथा । 8. P^2, A, B^1 and B^3 सर्वोदितं च वृत्तान्तं । 9. A and B^1 भाषते । 10. P^2, A, B^1 and B^3 °यते । 11. P^2, A, B^1 and B^3 मुञ्जनृपोसौ कु° । 12. P^2, A, B^1 and B^3 मद्वधं तव जानीहि सर्वथा । 13. P^2, A, B^1 and B^3 सुखाय यत् । 14. B^1 and B^3 क्षीरोदकस्य पट्टेन लिखित्वा श्लोकमर्पितम् ।

अलक्तकेन[1] संलिप्य चलिता वधकास्ततः ।
मार्गं पश्यति यावद्राट्[2] तावत्तैर्दर्शितं[3] शिरः ॥११३॥

दृष्ट्वा[4] तद् भूपतेस्तस्मिन् प्रेममुल्लसितं महत् ।
वाण्या सगद्गदं राजा वधकान् पृच्छति स्म तान्[5] ॥११४॥

कण्ठच्छेदनवेलायां किंचित्तेनोक्तमस्ति वः[6] ।
पट्टान्तराक्षराण्यस्माकं दत्तानि गृहाण भोः ! ॥११५॥

सगद्गदगिरा भूपो वाचयत्यक्षरावलीम् ।
मुमोच नेत्रवारीणि दीर्घनिःश्वसितानि च[7] ॥११६॥ यथा[8]–

मान्धाता स[9] महीपतिः कृतयुगेलङ्कार[10]भूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः[11] ।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यावद्भवान् भूपते !
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति[12] ॥११७॥

श्लोकार्थं हृदये न्यस्य पुनः पृच्छति तान् नरान् ।
सत्यं वदत[13] मे बालो भवद्भिः किं हतो न वा ॥११८॥

बभाषिरे भयाक्रान्ता भूपाज्ञा केन लुप्यते ।
नृप ऊचेथ किं कुर्मः स्वजिह्वाया[14] विनाशितम् ॥११९॥ यथा-

आपण ही षंपे रीयो उरसा मुहां अंगार ।
दाझण लागो रे हिया तव तै जांणी सार ॥१२०॥

दुःसहं[15] भोजदुःखं मे विस्मरेन्न[16] मृतिं[17] विना ।
एवं ज्ञात्वा स्वशीर्षस्य[18] च्छेदनायोद्यतोऽभवत्[19] ॥१२१॥

वारितो वधकैर्भूपस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषणात् ।[20]
कुमारो विद्यमानोस्ति त्वत्परीक्षार्थमागताः ॥१२२॥

---

1. P^2 आलकूपेन । 2. P^2, A, and B^1 भूपस्तैस्° । 3. P^2, A, B^1 and B^3 तावद्दर्शापितः(तं) । 4. P^1 and P^3 दृष्ट्वा (ष्टं?) । 5. P^2, A, B^1 and B^3 पृच्छते वधकान् प्रति । 6. P^2, A, B^1 and B^3 किंचिदुक्तं वचस्तव । 7. P^2, A, B^1 and B^3 नेत्रवारिप्रवाहेन दीर्घनिःश्वसितेन च । 8. P^2 omits यथा । 9. A, B^1 and B^3 नु° । 10. P^2, A, and B^3° रि° । 11. P^2 A, B^1 and B^3 °कृत् । 12. L adds, after this verse, the following:—न धरणी धरणीधरसुंगई अभिलभूपति भूसुरसुंगई । गया पाण्डव कौरव ते धनी वसुमती किमहियइ आपणिम् । 13. P^1 and P^3 वद स । 14. P^1 and P^3 °जिह्वया । 15. L °हे° । 16. P^2, A, B^1 and B^3 न विस्मार्यं । 17. A मृतं । 18. P^2, A, and B^3 स्वयं शीर्षे । 19. P^2, A, B^1 and B^3 °नाय सुसंवृतः । 20. P^2, A, B^1 and B^3 भाषितम् ।

निजाङ्गभूषणै[1] राज्ञा वधका अपि सत्कृताः[2] ।
प्रमोदात्प्रेमपूरेणा[3]नीतो बालो[4] निजान्तिके ॥१२३॥
उत्सङ्गे स्थापितो बालः समाश्लिष्टः[5] पुनः पुनः ।
रुद्रादित्यादयोप्यन्ये समाहूताः स्वमन्त्रिणः ॥१२४॥
आत्मानं प्रकटीकृत्य रुद्रादित्याय भाषितम्[6] ।
राज्यं दास्यामि[7] भोजस्य न्यायमार्गो यदीदृशः ॥१२५॥
गणकैर्दत्तवेलायां भोजो राज्ये निवेशितः ।
गजवाजिरथाद्येतद[8]र्धार्धीकृतमात्मनः ॥१२६॥
गोलाभिधनदीतीरं भोजराज्ञः समर्पितम् ।
परतीरसाधनार्थं स्वयं सैन्येन सोव्रजत्[9] ॥१२७॥
रुद्रादित्योवदत्तावत् स्वामिन् ! मे वचनं शृणु ।
मालवेन्द्र ! न गन्तव्यं[10] गोलापारे[11] जयो न हि ॥१२८॥
मुञ्जोवग्भोजसीमायां स्थातव्यं च मया न हि ।
गोलानदीं समुत्तीर्य साधनीयो हि तैलपः ॥१२९॥
प्रधाने दोषशङ्कायां[12] रुद्रादित्योवदन्नृपम्[13] ।
काष्ठं दत्त्वा हि पूर्वं मां पश्चात्कुरु यथोचितम् ॥१३०॥
मन्त्र्युक्तमपमान्याथ राज्ञो[14]त्तीर्णा तु सा नदी ।
नृपा[15] मूर्खाः स्त्रियो बाला न मुञ्चन्ति कदाग्रहम् ॥१३१॥
षट्सप्ततियुजेभानां चतुर्दशशतेन सः ।
तुरङ्गमै रथैर्युक्तः पदातिपरिवारितः ॥१३२॥
चतुरङ्गचमूयुक्तः संचचार यदा क्षितौ[16] ।
कम्पते स्म तदा पृथ्वी[17] कूर्मपृष्ठधृतापि सा ॥१३३॥ यथा—
दिक्चक्रं चलितं तथा जलनिधिर्जातो महाव्याकुलः
पाताले चकितो भुजङ्गमपतिः क्षोणीधराः कम्पिताः ।

भ्रान्तं तत्पृ[1]थिवीतलं [2]विषधराः क्ष्वेडं वमन्त्युत्कटं
सर्वं वृत्तमनेकधा दलपतेरेवं चमूनिर्गमे ॥१३४॥
एवं मुञ्जनृपो यावत्सैन्येन परिवारितः ।
श्रुतस्तैल[3]पदेनापि देशसंधौ स [4]आगतः ॥१३५॥
क्रोधाध्मातमना दापयति स्मैषोपि डिण्डिमम् ।
उपद्रोति हि कः सीमां मम जीवति मय्यहो[5] ॥१३६॥
संमुखं स समायातः पत्तिसेवकसंवृतः[6] ।
दूतेन मालवेन्द्रस्य[7] भेदं विज्ञातवान् स तु[8] ॥१३७॥
उपायश्चिन्तितस्तावद्भूपतैलपदेन च ।
दूतं संप्रेषयामास मालवेन्द्रस्य संनिधौ ॥१३८॥
मम देशग्रहायास्ति यदि वाञ्छा तवाधिका ।
युद्धाय तर्हि चागच्छ[9] क्षेत्रेणैव मया सह ॥१३९॥
रे रे दूत ! निजस्वामी कथनीयो हि मद्वचः ।
भुज्यते कण्ठपादेस्थस्तस्य सामन्त्रणं कथम्[10] ॥१४०॥
दक्षिणाधिपति[11]र्वाचं[12] श्रुत्वा [13]दूतमुखात्ततः ।
विस्तारिता रणक्षेत्रे गोक्षरूपा अयोमयाः[14] ॥१४१॥
द्वयोः संनद्धयोः प्रातः सैन्ययोर्मुक्तदैन्ययोः ।
परस्परं हि[15] संजातः संग्रामः शूरसैनिकैः ॥१४२॥
बाणपूरेण सञ्छन्नं सकलं गगनाङ्गणम् ।
खड्गपा[16]ट्कारझात्का[17]रैर्विद्युद्द्योत इवाभवत् ॥१४३॥
शोणितानां नदी[18] जाता कबन्धानां च नाटकम्[19] ।
रणे शीर्षाणि हुङ्कारान् मुञ्चन्ति स्म धडं विना ॥१४४॥
भ्राम्यन्ते शून्यकेकाणाः सुभटाश्चायुधान् विना[20] ।
युध्यन्ति स्वामिनोर्थेन लम्बमानान्त्रजालकैः ॥१४५॥ यथा–

1. B^1 and B^3 भ्रान्तासुः पृ० । 2. P^2, A, B^1 and B^3 महाविष° । 3. P^2 A and B^3 °तं तैल° । 4. P^2, A, B^1 and B^3 °सन्धिं समा । 5. P^2 and A किं भूपे जीविते सति । 6. P^2, B^1 and B^3 पदातिः (B^1 and B^3 पादात्य) सेवकैर्वृतः । 7. A, B^1 and B^3 ज्ञाततद्भेदं (दो?) । 8. P^2, A, B^1 and B^2 मालवेन्द्रो गजाधिपः । 9. P^2, A, B^1 and B^3 तदा युद्धाय मागच्छ । 10. P^1, P^3 and L omit this whole stanza । 11. P^1 and P^3 °ते° । 12. P^2 and A °चां । 13. P^2 °द्रु° । 14. P^2 and B^1 गोक्षरूकाप्ययोमया । 15. P^2, A, B^1 and B^3 च । 16. P^2 घात्का° । 17. A झंका° । 18. B^1 शोणितस्रोतसी । 19. A and B^1 कबन्धनृत्यमद्भुतम् । 20. P^2, B^1 and B^3 °धान्विताः ।

कृपाणः कम्पितप्राणः[1] कुन्तदन्तैरिवान्तकैः ।
बाणैर्भिन्नतनुत्रा[2]णैस्तस्याभूद्दारुणो रणः ॥१४६॥
सारसदीयै पुट्टप्पडी समली चंपै सीस ।
का गा रोलै पिउ सुवै धन्न हमारा दीस ॥१४७॥ पुनः[3]–
जिते च लभ्यते लक्ष्मीर्मृते चापि [4]सुराङ्गनाः[5] ।
क्षणविध्वंसिनी काया का चिन्ता मरणे रणे ॥१४८॥
एवंविधेपि[6] संग्रामे दाक्षिणो न निवर्तते ।
तावन्मुञ्जनृपेणापि प्रेरिताः सकला गजाः[7] ॥१४९॥
गजा यस्य बलं तस्य दुर्गं यस्य स निर्भयः ।
प्रजा यस्य धनं तस्य यस्याश्वास्तस्य मेदिनी ॥१५०॥
दुर्वारा दुःसहा दुष्टाः सिन्धुवेला इव द्विपाः[8] ।
समकालं समायाता रणभूमिं[9] मदोद्धताः ॥१५१॥
गोक्षुरैर्भिद्यमानास्ते चित्रन्यस्ता इव स्थिताः ।
भूपतैलपदेनापि प्रारब्धं दारुणं मृधम्[10] ॥१५२॥
हता मुञ्जगजाः[11] सर्वे गृहीता ऋद्धयोखिलाः ।
सामन्ता मन्त्रिणो भग्ना न ज्ञायन्ते क्वचिद्गताः ॥१५३॥ यथा–
जे जीमता अगलि घाट कूर पसाइ बीडेल हता कपूर ।
मुणी दमामारणढोलतूर भाजी[12] गया भांगड ते ज भूर ॥१५४॥ पुनः–
जे गर्व बोलै बलि मुंछ मोडी घुंटी समीजे पहिरै पछेडी ।
जे बांधता बारहथा जिफाडा ते नासता कोडि करै पवाडा ॥१५५॥
एकाकी मुञ्जभूनाथः पादचारी विधेर्वशात् ।
स्थितः क्वापि प्रदेशे हि[13] जीविताशा हि दुस्त्यजा ॥१५६॥ यथा–
गय गय रह गय तुरिय गय गय पायक्क गय भिच्च ।
सग्गट्ठिय कारि मंतणउं महंता रुद्दाइच्च ॥१५७॥
अतिवाह्य दिनं तत्र क्षुधार्तो नृपतिस्ततः[14] ।
गोकुलेय[15] समासन्ने[16] गोकुलिन्या गृहे गतः ॥१५८॥

---

1. P^1, P^3 and L कृपाण्या तीक्ष्णया चापि । 2. L °त्रा° । 3. B^1 omits पुनः । 4. L व° । 5. P, A, B^1 and B^2 and L °ना । 6. L °विविध° । 7. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 गजाः सर्वे प्रेरिताः । 8. B^1, B^2 and B^3 सिन्धुवेलेव सिन्धुराः । 9. P^2 and A °मि° । 10. A, B^1, B^2 and B^3 युद्धमारब्धम् । 11. A, B^1, B^2 and B^3 हतमत्तगजाः । 12. B^1, B^2 and B^3 नष्टो । 13. B^2 and B^3 प्रदेशेन । 14. A, B^1, B^2 and B^3 °निर्गतः । 15. A, B^1, B^2 and B^3 गोकुले । 16. B^1, B^2 and B^3 तदासन्ने ।

गोपाली मञ्चिकारूढा दध्यालोडयते वधूः ।
काचित्तापयति स्माज्यं विक्रीणाति च काप्यहो[1] ॥१५९॥
वध्वः सप्त सुताः सप्त महिष्योजाश्च धेनवः ।
गोपाल्यस्ति[2] सगर्वा सा नृपं द्वारस्थमैक्षत[3] ॥१६०॥
याच्ञा नैव कृता पूर्वं तेन नायाति याचितुम् ।
गोपालीं वीक्ष्य सद्गर्वां[4] भूपश्चेत्थं प्रजल्पति ॥१६१॥ यथा[5]–
गोआलिणि म गव्वु कारि पिक्खवि पङ्गुरुआइं ।
छउदहसौ छहत्तरा मुञ्जगयंद[6] गयाइं ॥ १६२ ॥
एतद्वचनमाकर्ण्य गोपाली स्वसुतानवक्[7] ।
रे रे गृह्णन्तु गृह्णन्तु मालवेन्द्रो हि मुञ्जराट् ॥ १६३ ॥
दत्त्वा मलीश्च गोपाल्या [8]बद्धो मालवभूपतिः ।
दत्तस्तैलपदेवस्य पश्यन्नपि दिशो दिशम् ॥ १६४ ॥
बन्धनान्मोचयित्वा च तैलपेनापि भाषितम् ।
गरिष्ठोसि[9] नृपास्मासु वाचां देहि ममाधुना ॥ १६५ ॥
यावद्ददाम्यहं नैव तावद्गम्यं न हि त्वया ।
प्रतिपद्य वचस्तस्य स्थितस्तत्रैव मुञ्जराट्[10] ॥ १६६ ॥
भोजनाच्छादने वस्त्रं ताम्बूलं स्वर्णभूषणम् ।
नित्यं चादापयद्भूपो दक्षिणाधिपतिः स्वयम् ॥ १६७ ॥
दासी मृणालिका [11]नाम मुञ्जशुश्रूषणाकृते ।
स्थापितास्ति दिवारात्रौ पर्युपास्ते च सा भृशम् ॥१६८॥
तदा[12]सक्तो हि भूनाथो विस्मृतं राज्यजं सुखम् ।
सन्तोषयति चात्मानं वेलां ज्ञात्वा यदीदृशीम्[13] ॥१६९॥
एकदावसरे स्नातोत्थितां दासीं मृणालिकाम् ।
जलबिन्दुस्रवां केशेष्वीक्ष्य[14] प्रश्नोत्तरं जगौ ॥१७०॥ यथा[15]–

1. B[1], B[2] and B[3] तापयन्ते घृतं केपि विक्रीयन्ते च केचन । 2. A[1], B[2] and B[3] गोकुलान्या । 3. B[1], B[2] and B[3] °स्यन्नैक्षत । 4. A and B[2] सगर्वा° गोकुलीं दृष्ट्वा । 5. B[1] adds : लज्जावारे इमहं असंपया भणइमग्गि रे मग्गि । दिण्हं , मा णकि वाडं देहित्तेन निग्गया वाणी । पुनः- । 6. P[1] and P[3] कल्ले मुञ्ज । 7. A, B[1], B[2] and B[3] वदते सुतान् । 8. A, B[1] and B[2] दुग्धमल्लैश्च गोपालैर्व° । 9. A °ष्ठोस्मि । 10. A, B[1], B[2] and B[3] भूपतिः । 11. A नाम्ना । 12. A, B[1], B[2] and B[3] °या° । 13. A °शाम् । 14. A केशे दृष्ट्वा । 15. A and B[3] omit thisword ।

मुञ्ज कि भणै मृणालीयै केसा काइं चुवंति ।
मृणाल्योक्तम्—
लाधो साउ पयोहरां बंधण भय रोहंति ॥१७१॥
तया प्रोक्तो[1] मुञ्जः पुनः पपाठ—
मुञ्ज कि भणै मिणालियै जुव्वण गयो म झूरि ।
जइ सक्कर समयखण्ड किय तो इति मिट्ठी चूरि ॥१७२॥
तयोः[2] प्रीतिवशादेवं[3] गते काले कियत्यपि ।
रुद्रादित्यवचः स्मृत्वा मुञ्जो वचनमब्रवीत् ॥१७३॥ यथा–
जे रहिया गोलातडिहिं हुँ बलिहारि तांह ।
मुञ्ज न दिट्ठो विहलियो रुद्दि न दिट्ठ खलांह ॥१७४॥
अतो भोजस्तु धारायां मुञ्जदुःखेन दुःखितः ।
सुरङ्गां दापयामास यावद् द्वादशयोजनीम्[4] ॥१७५॥
योजने योजने मुक्ता अतिवेगास्तुरङ्गमाः ।
प्रचक्रमे च बुद्ध्यैवं मुञ्जानयनहेतवे[5] ॥ १७६ ॥
भोजनायोपविष्टोस्ति मुञ्जभूपतिरेकदा ।
तावद्भोज[6]नरेन्द्रस्य पत्री केनचिद्[7]र्पिता ॥ १७७ ॥
वाचयित्वा च वृत्तान्तं स्थापयित्वा च तं हृदि[8] ।
लग्नो भोक्तुं महीनाथो यत्किञ्चित्परिवेपितम् ॥ १७८ ॥
विदग्धचित्तया दास्या[9] चिन्तितं कारणं किमु ।
नोदितं मधुरं चारं नोक्ता[10] रसवतीगुणाः ॥ १७९ ॥
सकारणास्त्यसौ पत्री[11] वक्तुं योग्याथवा न हि ।
मृदुं नृपं प्रति स्नेहादेवं दास्यवदत्क्षणात्[12] ॥ १८० ॥
मन्दस्वरेण स प्रोचे मुञ्जभूपोऽति[13]मन्दधीः ।
कथनीया न कस्यापि राजवार्ता त्वया[14] प्रिये ॥ १८१ ॥
सुरङ्गा भोजभूपेन[15] दापिता गुप्तवृत्तितः[16] ।
पर्यङ्काधः स्थिता सास्ति[17] वामपादेन तिष्ठति ॥ १८२ ॥

1. P¹ and P³ तदासक्तो । 2. A, B¹, B² and B³ एवं । 3. A, B¹, B² and B³ °तेन° । 4. L योजनम् । 5. B¹, B² and B³ मुञ्जमा(स्या)नयनार्थं च बुद्धिमेवं प्रचक्रमे । 6. A, B¹, B² and B³ पत्री भोज° । 7. A, B¹, B² and B³ केनापि हि मम° । 8. A, B¹, B² and B³ स्थापितं हृदयेन तत् (B³ च) । 9. A, B¹, B² and B³ दासी विदग्धचित्ता सा । 10. B¹, B² and B³ नामवन्तः । 11. A, B¹, B² and B³ सकारणामिमां पत्रीं । 12. A, B¹, B² and B³ स्नेह (B¹, B² and B³ हात्) मृदुमतिर्मुञ्जो वचोऽप्येवं प्रचक्रमे । 13. A हि । 14. A त्वं । 15. L नृपभोजेन । 16. B³ सिद्धा तावत्तिष्ठति हि । 17. A, B¹, B², and B³ नूनं ।

तव स्नेहवशाद्भद्रे ! न गन्तुं शक्यते मया ।
यदि सार्थे ! समायासि ह्यावाभ्यां गम्यते तदा ॥१८३॥
मृणाल्यूचे ततः स्वामिन् ! भव्यं किं स्यादतः परम् ।
यावत्पेटामानयामि तावत्स्वामिन् ! विलम्ब्यताम् ॥१८४॥
कृत्रिमस्नेहया दास्या बहिरागत्य चिन्तितम् ।
तावत्प्रेमास्ति मय्यस्य[1] यावदत्रैव तिष्ठति ॥१८५॥
गृहे गतो ह्यसौ कन्याः[2] परिणेष्यति भूरिशः[3] ।
गुरुस्वरेण फूच्चक्रे पापिष्ठैवं विचिन्त्य सा[4] ॥१८६॥
याति याति नृपो मुञ्जः सुरङ्गाध्वनि सांप्रतम्[5] ।
तावदाकृष्य पर्यङ्के लत्तां दत्त्वा[6] नृपः क्षणात् ॥१८७॥
कण्ठं यावद्गतो भूम्यां वेण्यां तावद्धृतो नरैः ।
समाकृष्य बहिर्नीतो दाक्षिणात्यनृपाग्रतः ॥१८८॥
गतवाचोसि रे धृष्ट ! मुखं मा दर्शयात्मनः[7] ।
पापं तवाधुना दुष्ट ! पतिष्यति शिरस्यरे ! ॥१८९॥
दुष्टसंज्ञाभिभूतस्य मुञ्जस्याभूत्पराभवः ।
न विच्छायं मुखं तस्य[8] न दीनं[9] वचनं क्वचित् ॥१९०॥
भूपाज्ञया मुञ्जभूपो भिक्षायै भ्राम्यते पुनः ।
मर्कटेन[10] यथा योगी भ्राम्यतेथ[11] गृहे गृहे ॥१९१॥ मुञ्ज ऊचे—
झोली तुट्टवि किं न मुअ हुओ न छारह पुंज ।
घरि घरि भिक्ख भमाडीयै जिम मक्कड तिम मुंज ॥१९२॥
कस्यचिच्छ्रेष्ठिनो गेहे[12] मण्डकं खण्डितं वधूः ।
घृतबिन्दुस्रवं दत्ते[13] मुञ्जोपि[14] श्लोकमब्रवीत् ॥१९३॥
रे रे मण्डक ! मा रोदीर्यदहं[15] खण्डितोनया ।
रामरावणभीमाद्याः स्त्रीभिः के के[16] न खण्डिताः[17] ॥१९४॥

---

1. B^2 मुञ्जप्रेम मयि तावद् । 2. A, B^1, and B^2, B^3 गते गृहे नवनवीं । 3. A, B^1 and B^3 कन्यकाम् । 4. A, B^1 and B^2 एवं संचित्य पापिष्ठया पूत्कृतं च गुरुस्वरैः । 5. A, B^1, B^2 and B^3 मार्गगे पुनः । 6. A लात्वा दत्तां । 7. A °जम् । 8. A किंचित् । 9. A, B^1, B^2 and B^3 °नं° । 10. A, B^1, B^2 and B^3 °टस्य । 11. A, B^1, B^2 and ^{3} स । 12. A, B^1, B^2 and B^3 कस्मिन् श्रेष्ठिगृहे नीतो । 13. B^1, B^2 and B^3 पश्यन् । 14. A, B^1, B^2 and B^3 °क्र° । 15. A, B^1, B^2 and B^3 यथा–मण्डक ! मा कुरूद्वेगं यदहं । 16. A °द्या योषिद्भिः के । 17. A and B^3 add, after this verse : रे रे यन्त्रक ! मा रोदीर्भामिनीभ्रामितो यदि । कटाक्षक्षेपमात्रेण करलग्नस्य का कथा ॥

भ्रामयित्वा गृहान् सर्वानानीतोथ चतुष्पथे ।
द्रव्यान्धश्रेष्ठिनं कश्चिद् दृष्ट्वाग्रे[1] स्थापितो नरैः ॥१९५॥
वणिजो मुञ्जमापश्यन्[2] हास्यं च कुरुते मुखात् ।
गृहीत्वा[3] राज्यमस्माकमागतः पश्यतां श्रियम् ॥१९६॥
एतद्वचनमाकर्ण्य प्रोचे मुञ्जनरेश्वरः ।
रे द्रव्यान्ध ! न जानासि गतिं कर्मण ईदृशीम् ॥१९७॥ यथा–
आपद्गतं[4] हससि किं द्रविणान्ध ! मूढ !
लक्ष्मी स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम् ।
एतन्न[5] पश्यसि घटीजलयन्त्रचक्रं[6]
रिक्ता भवन्ति[7] भरिता भरिताश्च रिक्ताः ॥१९८॥
तां पुरीं[8] भ्रामयित्वा स शूलायामधिरोपितः[9] ।
कर्मणो गतिमालोच्य श्लोकं मुञ्जः पठत्यमुम्[10] ॥१९९॥ यथा–
अघटितघटितानि [11]घटयति सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि [12]जनयति यानि पुमान्नैव[13] चिन्तयति ॥२००॥
दासीसंसर्गतो मृत्युं विज्ञायासन्नमागतम् ।
तदा पुनः पपाठैकं श्लोकं जनमनोहरम् ॥२०१॥ यथा[14]–
[15]वेसा छंडी वडायिति जे दासी रच्चंति ।
ते किर मुंजनरिंद जिम परिभव घणा[16] सहंति[17] ॥२०२॥
धारायां भोजभूपेन श्रुता वार्ता जनोक्तिभिः ।
शूल्यां तैलपदेनापि मुञ्जभूपोधिरोपितः ॥२०३॥
क्व[18] तरुरेष महावनमध्यगः क्व च वयं जगतीपतिसूनवः ।
अघटमानविधानपटीयसो दुरवबोधमहो ! चरितं विधेः ॥२०४॥
करोटिर्मुञ्जभूपस्य दक्षिणाधिपसंसदि ।
मुच्यते दधिपूर्णा सा भक्ष्यते वायसैस्ततः ॥२०५॥

---

1. B^1 and B^2 °श्रेष्ठिनस्थवि दृष्टवग्रे । 2. P^2 °पादस्य । 3. B^1 गृहीतुं । 4. P^2 °तो; B^1, B^2 and B^3 °तान् । 5. B^1 and B^2 एता न । 6. P^2 and B^1 and B^2 °चक्रे । 7. P^2 and A भवन्ति । 8. P^2 तत्पु° । 9. L °तिरो° । 10. Instead of this stanga, A has : दैवदर्शितमिर्गं यत्र यस्तोऽपि न पश्यति । दरिद्रांजनयोगेन पुनर्विमलतां भजेत् ॥ 11. P^1, P^3 and L जन° । 12. P^2 and B^1, B^2 and B^3 घट° । 13. A °नेव । 14. P^2 and A omit this word । 15. L जो° । 16. घणा । 17. L हुसंति । 18. B^1 यतः–क्व तरु° etc. ।

तच्छ्रुत्वा सिन्धुलोप्येवं भ्रातृदुःखेन दुःखितः ।
आक्रन्दयति भूपीठे लुठत्येवं प्रजल्पति ॥२०६॥ यथा[1]–
अद्धा अद्धा नयणला जइ मूं मुंज नलिंत[2] ।
अरिकामिणी थोरंसुयहिं महि निब्बोल करंत[2] ॥२०७॥
अद्धा अद्धा नयणला जइ मूं मुंज नलिंत[2] ।
सत्तय सायरसभरभरि महि सिन्धुल भुञ्जति[3] ॥२०८॥
गूढकोपधरो भूपो न ज्ञापयति कस्यचित् ।
विज्ञातं तु प्रमाणं तत् कृतं यद्दुष्टगोपनम्[4] ॥२०९॥ यतः[5]–
लक्खण एह वियक्खणा जे लक्खणा न जंति[6] ।
ताम रसायण ताम विस हियइ हसंत धरंत[7] ॥२१०॥
पुनः[8]–विरल इव हतै पूर नमीज वेला नीगमैं ।
तेथायैं धर धीर वेडस जिम विलसै वली ॥२११॥
श्रुते मुञ्जस्य मृत्यौ राट् सभालोकमभाषत[9] ।
गुणाः सर्वे निराधारा मुञ्जभूपं विना भुवि ॥२१२॥ यथा–
लक्ष्मीर्वसति[10] गोविन्दे[11] वीरश्रीर्वीरवेश्मनि ।
गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती[12] ॥२१३॥
एकदा भोजभूनेतोपविष्टोस्ति[13] सभान्तरे[14] ।
सरस्वतीकुटुम्बाख्यो द्विज एकः समागतः ॥२१४॥
दत्त्वाशिषं नरेन्द्रस्योपविष्टो दत्त आसने ।
पृष्टश्च मन्त्रिवर्गेण नामाप्यद्भुतकश्रियम् ॥२१५॥
द्विज ऊचे[15]–बापो विद्वान् बापपुत्रोपि विद्वान्
आई विदुषी आइधूआपि विदुषी ।
काणी चेटी सापि विदुषी वराकी
राजन् ! मन्ये प्राज्ञरूपं कुटुम्बम् ॥२१६॥
रक्षकैराज्ञया[16] नीतो रजकस्य गृहे द्विजः ।
वस्त्राणि क्षालयन् [17]दृष्टस्तस्याग्रे पण्डितोवदत् ॥२१७॥

---

1. P[3] and L omit this word । 2. L °ति । 3. B[1], B[2] and B[3] घर घर सिन्धुल-तुह भुजंति । 4. P[2] and A वा दुष्ट° । 5. P[2] and A यथा; P[3] omits this word । 6. B[1] न जयंति । 7. B[1], B[2] and B[3] धरंति । 8. P[1] omits this word । 9. P[2], A, B[1], B[2] and B[3] मुञ्जप्रतीकारे विद्वज्जनम° । 10. P[2], A, B[1], B[2] and B[3] लक्ष्मीर्यास्यति । 11. A गोविन्दो । 12. L and B[3] सरस्वति ! । 13. P[2], A, L, B[1], B[2] and B[3] भूनाथो° । 14. P[2] and A °द्दास्थानमण्डपे । 15. P[2] उवाच । 16. P[2] भूपाज्ञारक्षितो; B[2] and B[3] राजाज्ञारक्षकैः° । 17. L दृ° ।

[1]रे रे साटकमलनिर्द्धाटक पाटकपटकपटीरक।
अस्मिन् नगरे वद[2] का का वार्ता ॥२१८॥

रजक ऊचे[3]–

अश्वा वहन्ति नगराणि सतोरणानि
गावश्चरन्ति कमलानि सकेसराणि।
नीलं पयो दधिषु नास्ति तिलेषु तैलं
प्रासादशैलशिखरेषु मृगाश्चरन्ति ॥२१९॥

न स्थितिं[4] तद्गृहे ज्ञात्वानीतोन्यत्र स [5]पण्डितः।
बालिकालापिता तेन कासि त्वं किंकुलोद्भवा[6] ॥२२०॥

बालिकोचे–

मृतका यत्र जीवन्ति निश्वसन्ति गतायुषः[7]।
स्वगोत्रे कलहो यत्र तस्याहं कुलबालिका ॥२२१॥

कुम्भकारगृहेन्यत्र नीतः पण्डितपौरुषैः।
मिलिता तत्सुता द्वारे पृष्टा कस्य गृहं वद ॥२२२॥

बालिकोचे–

पर्वताग्रे रथो याति भूमौ तिष्ठति सारथिः।
चलते[8] वायुवेगेन पदमेकं न गच्छति ॥२२३॥

एवं भ्रान्त्वा पुरीं सर्वां[9] पुलिन्दकुटिकां[10] गतः।
वसतिं याचदीवेत पुलिन्दी तावदुत्थिता ॥२२४॥

पलं करे समादाय गता भोजसभान्तरे।
पूर्वं दत्वा[11] नरेन्द्राग्रे प्रश्नोत्तरवचो जगौ ॥२२५॥ यथा—

देव ! त्वं जय, कासि ? लुब्धकवधूः, पाणौ[12] किमेतत् ? पलं,
क्षामं किं ? सहजं ब्रवीमि नृपते ! यद्यस्ति ते कौतुकम्।
गायन्ति त्वदरिप्रियाश्रुतटिनीतीरेषु सिद्धाङ्गनाः[13]
गीतान्धा न चरन्ति भोज ! हरिणास्तेनामिषं दुर्बलम् ॥२२६॥

---

1. A, B[1], B[2] and B[3] add यथा before this verse। 2. L has च instead of वद which is omitted by B[1] and B[3]। 3. P[1] and P[3] यथा; P[2] प्रोचे; the whole is omitted by L। 4. P[1] and P[3] °तिः; L, B[1], B[2] and B[3] °तं। 5. P[2] °तोऽप्यन्यत्र प°। 6. P[2] कः कुलोद्भवः। 7. A. °षा। 8. A °ति। 9. P[3] and L भ्रान्त्वा पुरीं सर्वां। 10. L °कां। 11. P[2], A, B[1] and B[3] नत्वा। 12. P[1], P[3], L and B[2] °पूर्णे। 13. L दिव्याङ्गनाः।

पुरं विद्वन्मयं[1] ज्ञात्वा [2]क्वचित्पटकुटी[3]स्थितः ।
श्रुतमेतस्य पाण्डित्यं राज्ञा चाकारितस्ततः[4] ॥२२७॥
सरस्वतीकुटुम्बस्य शिशुर्भूपसभां गतः ।
वर्षर्तुवर्णनं सद्यः कुरु तत्पण्डिता जगुः ॥२२८॥ यथा[5]–
वर्षाकाले प्रणाले षलहलमुदके याति षाले विशाले
चिक्खल्लोलिप्सयित्वा षडहडपडिउं लंवगुड्डो मणूसो ।
चुल्लीगेहस्स मज्झे कुरु कुरु खनते कुक्कुरो वड्डषड्डं
सुन्नागारस्स मज्झे टहरितकरणो रासभो रारटीति ॥२२९॥
श्लोकं श्रुत्वा जहसुस्ते[6] भूपपार्श्वजुषः[7] शिशोः ।
रासभो रारटीत्यादि ज्ञात्वा[8] विद्वांसलक्षणम् ॥२३०॥
भूपेनोक्तं रारटीति क्रिया येन प्रयुज्यते ।
न हि सामान्यविद्वान् स मुधा हास्यं न सृज्यते[9] ॥२३१॥
सरस्वतीकुटुम्बोपि सकुटुम्बः समागतः ।
दत्त्वाशिषं समासीनो[10] मालवेन्द्रसभान्तरे ॥२३२॥
[11]सत्कृत्य पूर्वं किल मानदानैः
सभासदैः संस्तवनस्य हेतोः ।
पृष्टा समस्या नृपभोजराज्ये
प्रवालशय्याशरणं शरीरम् ॥२३३॥

सरस्वतीकुटुम्ब उवाच–

एतद्भूप ! वचः सत्यं[12] पूरितं स्वसमस्यया ।
[13]त्वत्प्रतापेन भूपीठे यत्कृतं तत्तथा[14] शृणु ॥२३४॥

यथा–तव प्रतापज्वलनाज्जगाल हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
चकार मेना विरहातुराङ्गी प्रवालशय्याशरणं शरीरम् ॥२३५॥
कवित्वं भोजभूपेन श्रुतमद्भुतवाचिकम्[15] ।
तत्सुतस्य[16] नृपोवादीदसारात्सारमुद्धरेत् ॥२३६॥

यथा[17]– दानं वित्तादृतं वाचः कीर्तिधर्मौ[18] तथायुषः ।

---

1. P^2, A, B^1, B^2 and ^{3} एवं विद्वज्जनं । 2. L °पत्र° । 3. P^1, P^3 B^1 and B^2 °टीं । 4. P^2, A, B^2 and B^3 विद्यार्थी प्रेपितो नृपे । 5. It is omitted by P^1, P^2, A and L । 6. A, L and B^3 श्रुत्वा जहास तत् श्लोकं । 7. A गनः; L °र्श्वे युवा । 8. P^2 °तं । 9. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 कार्यते । 10. P^1 and P^3 शिक्षां समानीतो । 11. P^1 and P^3 add भोजः– । 12. P^2 एतत्सत्यवचो भूप ! । 13. P^2 त° । 14. L °तः । 15. P^2 °चकार । 16. A तत्समस्या(स्यां)। 17. P^2, P^3, L, B^1, B^2 and B^3 तद्यथा । 18. P^2 कीर्तिं धर्मं ।

परोपकरणं[1] कायादसारात्सारमुद्धरेत् ॥२३७॥
तत्सुतस्य[2] वचः श्रुत्वा सभासदसमन्वितः ।
समस्यां तत्प्रियाग्रेऽवग् भूपः प्राकृतभाषया ॥२३८॥

यथा–किहि मुह पाऊं पीर

एतत्सत्यं[3] त्वया प्रोक्तं समस्यायां प्ररूपितम्[4] ।
श्रूयतामेकचित्तेन पूरयामि तवाग्रतः ॥२३९॥
[5]जिहिं दिणि रावण जाईयो दहमुह इक्कसरीर ।
माय वियंभी चिंतवै किहि मुह पाऊं पीर ॥२४०॥
प्राकृतेऽपि विदग्धां तां[6] ज्ञात्वा कोविदकाग्रणीः ।
विनोदेनापि चेट्यग्रे समस्यां प्राकृतेऽवदत्[7] ॥२४१॥

यथा[8]–कंठविलल्लइ काउ ।

का णवविरहकरालीयो उड्डीय गयो वलाउ ।
दिट्ठु अचब्भूय उ हूयउ कंठविलुल्लइ काउ ॥२४२॥
चेट्या अपि च विद्वत्त्वं[9] ज्ञात्वा नृपशिरोमणिः ।
तत्सुतायाः परीक्षार्थं समाहूता सभान्तरे ॥२४३॥
व्यामोहितस्तु तद्रूपे भूपतिर्भूमिवासवः ।
सच्छत्रं तं समालोक्यारम्भ स्तवनं कनी ॥२४४॥ यथा–
राजन् ! मुञ्जकुलप्रदीप ! सकलक्ष्मापालचूडामणे !
युक्तं [10]सञ्चरणं तवात्र भुवने छत्रेण रात्रावपि ।
मा भूत् त्वद्वदनावलोकनवशाद् व्रीडाविलासः[11] शशी
मा भूच्चेयमरुन्धती भगवती दुःशीलताभाजनम् ॥२४५॥
विवेकं विनयं विद्यां विद्वत्त्वं[12] च विदग्धताम्[13] ।
सर्वानपि गुणान् कन्या[14] दृष्ट्वा भूपो व्यचिन्तयत् ॥२४६॥
राजा[15] लब्धं द्विजायादाद्[16] गुणैः किं किं न लभ्यते[17] ।
तत्सुतायाः स्फुरद्रूपव्यामोहेन विशेषतः[18] ॥२४७॥

---

1. P[2] and L °रात्° । 2. A तत्सुतस्या° । 3. P[1] °वतुर्थं । 4. P[2]° स्यायाः प्रपूरणम् । 5. B[1] and B[3] add यथा । 6. P[1], P[3], A, L, B[1], B[2] and B[3] °यां स्तात् । 7. P[1] and P[3] °कृतमवदत् । 8. L omits यथा । 9. P[2], A, B[1], B[2] and B[3] विद्वत्त्वं चेटिकायास्त्व । 10. L सं° । 11. P[2] and A विलक्ष(क्षः): B[1] विलक्षः । 12. P[2], A and B[2] विद्याविद्वत्त्वे । 13. P[2] and A °ता । 14. P[2] and A गुणाः सर्वेऽपि कन्यायाः° । 15. A °ज्ञा । 16. A द्विजे दत्तं । 17. P[2], A, B[1] and B[2] न प्राप्यते । 18. P[1] and P[3] विशेषितः ।

भूपानुरागिणी कन्या साप्यभूद्गुणमञ्जरी ।
परिणीता शुभे लग्ने भूभुजा[1] तत्पिताज्ञया ॥२४८॥
एवं पालयतो राज्यं मालवेन्द्रस्य[2] सर्वदा ।
ये के सीमालभूपालाः सर्वेप्याज्ञावशंवदाः ॥२४९॥
नाटकं मुञ्जभूपस्यान्यदारब्धं च नर्तकैः ।
सभायां भोजभूपस्य सर्वं तैलपदोद्भवम् ॥२५०॥
वनौकोवद्यथा भिक्षां भ्रामितः स गृहे गृहे ।
नाटकं दर्शितं सर्वं करोटिं यावदाश्रितम् ॥२५१॥
तं दृष्ट्वा भोजभूपालो यावत्कोपारुणेक्षणः ।
भटो वैदेशिकः कोपि तावत्प्रोवाच संसदि ॥२५२॥
भोजराज ! मम स्वामिन् ! सत्यं नाटकलक्षणम् ।
[3]पूर्यन्ते सर्वचिह्नानि हस्ते मुञ्जशिरो विना ॥२५३॥
एवं क्रोधान्नृपोप्याह नामेदं मे निरर्थकम् ।
मूर्ध्नां तैलपदेवस्य कन्दुवच्चेद्रमामि[4] नो ॥२५४॥
[5]ज्ञात्वाथावसरं भूपश्चतुरङ्गचमूवृतः ।
गत्वा तैलपदे(दं) भूपं जित्वा संग्रामभूमिषु ॥२५५॥
पुण्याधिकेन भोजेन[6] बद्ध्वानीतो निजान्तिके ।
विडम्बितो यथा मुञ्जस्तथा सोपि दुराशयः[7] ॥२५६॥
[8]निःशल्यं च[9] तदा[10] जातं हृदयं[11] भोजभूपतेः ।
निष्कण्टका च राज्यश्रीः पाल्यते स्माथ तेन सा[12] ॥२५७॥
देवशर्मा शिवादित्यो विप्रः सर्वधरस्तथा[13] ।
महाशर्माप्यमी तस्य[14] पौरोहितपदानुगाः[15] ॥२५८॥
देवशर्मसुतो धारां वसते भोजसन्निधौ ।
द्विजो वररुचिर्नामाप्यर्धराज्यधुरन्धरः ॥२५९॥
श्रीमालपुरवास्तव्यः[16] शिवादित्यस्य[17] नन्दनः ।
माघपण्डितनामास्ति माघकाव्यस्य कारकः ॥२६०॥

---

1. P^2 and A भूपतेस् । 2. B^1 and B^2 एवं पालयते····न्द्रो हि । 3. A पूर्यंते । 4. P^2 and A °नि । 5. P^2 ज्ञात्वावसरं भूनाय° । 6. L भूपेन । 7. A मुञ्जो भूपेन तत्तथा कृतम्; B^2 मुञ्जो भूपेन स तथाकृतः । 8. A वि° । 9. P^2, A, B^1 B^2 and B^3 हि । 10. L तथा । 11. A हृदये । 12. B^2 पाल्यमानां निरन्तरम् । 13. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 °धरः स्मृतः । 14. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 °र्मसुता एते । 15. P^1 and P^3 °हित्य° । 16. P^2 श्रीमालवपुरेजातेः (तः); A श्रीमालवपुरे वासः । 17. P^2, A, B^1, B^2 and B^2 शिवदत्तस्य ।

अवन्तीपुरवास्तव्यो नाम्ना सर्वधरो द्विजः ।
[1]घनपालशोभनौ[2] द्वौ नृपामात्यौ तदङ्गजौ[3] ॥२६१॥
सिद्धसेनक्रमायाताः[4] सुस्थिताचार्यनामकाः[5] ।
भव्यानां बोधहेत्वर्थमुज्जयिन्यां समागताः[6] ॥२६२॥
श्रुतं सर्वधरेणापि गुरोरागमनं तदा ।
गमनागमनेनापि प्रीतिर्जाता गुरोः समम् ॥२६३॥
एकदा गृहमानीताः [7]प्रकृष्टविनयेन ते[8] ।
पृच्छति क्वापि किमपि[9] द्रव्यं मुक्तं न वाप्यते ॥२६४॥
हसित्वा गुरुराचष्टौ प्राप्यतेर्थस्तदा किमु ।
दद्मि स्वामिन् ! विभज्यार्धं[10] प्रोक्तमेवं पुरोधसा ॥२६५॥
तस्योक्त्या[11] भूमिका[12] सम्यग् दीर्वं [13]विस्तारमाप्यत ।
भूगोलं दर्शयित्वा च तद् द्रव्यं मङ्क्षु [14]दर्शितम् ॥२६६॥
निष्कास्य निधिं[15] पुञ्जौ द्वौ कृत्वा सर्वधरद्विजः ।
गुरुं विज्ञापयामास गृहाणार्धं धनं प्रभो ! ॥२६७॥
कार्यं न निधिनोवाच गुरुः स्मर निजं वचः ।
द्विजोवग्यन्मयाख्यातं तद् धनं ददद्स्म्यहम् ॥२६८॥
किं धनं क्रियतेस्माकं गुरुः प्राहर्पयो वयम् ।
द्वयोरेकं सुतं दत्त्वा स्ववाचातोनृणीभव[16] ॥२६९॥
गुरोर्वचनमाकर्ण्य स्थितस्तूर्ष्णीं द्विजोत्तमः ।
वचनर्णमिदं[17] शल्यं संजातं मरणाधिकम्[18] ॥२७०॥
क्रियत्यपि दिने सोथ[19] संजातो रोगपीडितः ।
अवसानक्रिया सर्वा कृता पुत्रैर्यथाविधि ॥२७१॥
दुःस्थावस्थां समालोक्य पुत्र ऊचे पितुस्ततः[20] ।
पुण्यवाञ्छा[21] तवास्ते या तां मदग्रे[22] निवेदय ॥२७२॥

1. P² and A °पाल: । 2. P² and A °नौ । 3. P², A, B¹, B² and B³ माननीयौ नृपात्मजे । 4. L °त: । 5. L °क: । 6. P² °गमन्; L °गमन् । 7. P¹ and L °कृष्टा° । 8. P², A, B¹, B² and B³ च । 9. P², A, B¹, B² and B³ पृच्छेते किं नि कुत्रापि । 10. P², A, B¹, B² and B³ अर्धार्धं आनुबन्धस्वामिन् ! । 11. P² and A °क्ता; L °क्ता । 12. P² and A °क: । 13. A °र्घेवि° । 14. A and B² च द्रव्य° तत्काल्द° । 15. P², A, B¹, B² and B³ °धि° । 16. P², A, B¹, B² and B³ नर्गो वाचात्° । 17. P², A, B¹, B² and B³ वाचा [illegible]° । 18. A, B¹, B² and B³ °तावधि । 19. L °दि । 20. P¹, P², P³ and A ऊच [illegible] । 21. P¹ and P² °श्र° । 22. P², A, B¹, B² and B³ नवाद्यापि वर्तते नां ।

[1]वाच ऋणमयं शल्यं प्राणानामर्गलामिव[2] ।
द्वयोरेकस्तु[3] चारित्रं लात्वा मामनृणीकुरु ॥२७३॥

धनपालो वचः श्रुत्वा चक्रे [4]भूम्यवलोकनम् ।
शोभनोवग्रहीष्यामि दीक्षां तातानृणीभव ॥२७४॥

एतद्वचनमाकर्ण्य देवलोके द्विजो गतः ।
ऊर्ध्वदेहक्रियां कृत्वा दीक्षां शोभन आश्रितः[5] ॥२७५॥

जैनद्वेषपरो जातो धनपालः[6] पुरोहितः ।
प्रैषि संघेनोज्जयिन्या[7] लेखो गुर्वन्तिके द्रुतम्[8] ॥२७६॥

शोभनेन विना गच्छः कथं शून्यः प्रवर्तते ।
धर्महानिर्घना जाता दुष्टत्वे हि पुरोधसः[9] ॥२७७॥

गुरुभिः सुस्थिताचार्यैः शोभनाय शुभे दिने ।
वाचनाचार्यता दत्ता[10] ज्ञात्वा गीतार्थकोविदम्[11] ॥२७८॥

गुर्वाज्ञया शोभनोपि [12]मुनिद्वितयसंयुतः ।
बहिष्ठात् [13]संस्थितोवन्त्याः [14]प्रतोलीदानकारणात् ॥२७९॥

प्रतिक्रम्य समालोच्य रात्रौ संस्तारकं व्यधात्[15] ।
यत्याचारादिकं कृत्वा तत्रैवाधिक धर्मवान्[16] ॥२८०॥[17]

पुनः प्रातः प्रतिक्रम्य[18] द्वारे चोद्घाटिते सति ।
संमुखं धनपालोपि मिलितः शोभनस्य सः[19] ॥२८१॥

उपहासं[20] प्रकुर्वाणो[21] धनपालोपि दुष्टधीः ।
जैनशासनविद्वेषी[22] त्विदं वचनमब्रवीत् ॥२८२॥

यथा—गर्दभदन्त ! भदन्त ! नमस्ते
एवं श्रुत्वा शोभन ऊचे—कपिवृषणास्य ! वयस्य ! सुखं ते ।

---

1. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 वाचा रिण° । 2. P^2 °लानि च; A °लानिव । 3. P^2 and A °योर्मध्ये क । 4. P^2 and A भोम्याव° । 5. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 दीक्षा शोभनमाश्रिता । 6. P^2, and A °ल° । 7. P^2 and A seem to read सङ्घेन चावन्त्याः । 8. P^2 °द्भुतम् । 9. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 पुरोहिते । 10. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 °यंकं कृत्वा । 11. P^2 and A °विदः । 12. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 मुनिर्युगल° । 13. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 व्वन्त्यायां स्थितो बाह्ये । 14. P^2, B^1 and B^2 प्रत्तोलीदत्त° । 15. A विधिम् । 16. A, B^1, B^2 and B^3 रात्रौ तत्रैव संस्थितः । 17. P^2 omits this verse । 18. P^2 परिक्रम्य समालोच्य । 19. P^2 and A च । 20. P^1, P^2 and P^3 °हास्यं । 21. P^2 and A कृतं तेन । 22. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 जैनद्वेषपरो भूत्वा ।

धनपाल ऊचे[1]—कस्यातिथयो ह्यद्य भवन्तः
शोभन ऊचे—भ्रातुर्गेहेन्यत्र न युक्तम् ॥२८३॥

उपलक्ष्य वचो भ्रातुः पुरोधा लज्जयान्वितः[2] ।
वहिर्गतोङ्गचिन्तायै शोभनोगात् पुरान्तरे[3] ॥२८४॥
चैत्यचैत्यानि चानम्य[4] संघस्तावत्समागतः ।
गुरोः पादाब्जमानम्योपविष्टस्तु [5]तदग्रतः ॥२८५॥
शोभनेन शुभा[6] वाणी देशितादेशतो[7] गुरोः ।
समस्तसंघसंयुक्तो[8] गतो बान्धवमन्दिरम्[9] ॥२८६॥
भ्राता संमुखमायातो[10] विनयेन घनेन सः ।
उपाश्रयश्चित्रशाला तेन दत्ता पुरोधसा ॥२८७॥
मातृपुत्रकलत्राद्या नताः संसारनात्रके[11] ।
भोजनाय च[12] सामग्रीं कुर्वन्तस्तेन वारिताः ॥२८८॥
आधाकर्मिकदोषास्ते गुरुभिः प्रतिपादिताः ।
गोचराय मुनेः सार्धे संचचार पुरोहितः ॥२८९॥
दुःस्थिता श्राविका [13]कापि गृहे वीक्ष्यागतं मुनिम्[14] ।
दधिभाण्डं तदग्रे सा[15] मुमोच श्रद्धया युता ॥२९०॥
पृष्टा सा मुनिना श्राद्धी शुध्यमानमिदं दधि ।
दिनत्रयस्य संप्रोक्तं ममानुचितमागमे ॥२९१॥
धनपालेन पृष्टोयं[16] किमयोग्यमिदं दधि ।
प्रच्छनीयो निजभ्राता कौतुकेस्मिन् मुनिर्जगौ ॥२९२॥[17]
दधिभाण्डं समादाय शोभनोवग् ममाग्रतः[18] ।
समागच्छ मम स्थाने दर्श्यते कौतुकं यथा[19] ॥२९३॥

---

1. P² and A omit these two words । 2. P² °तुर्लज्जातुरपुरोहितः; A, B¹, B² and B³ °तुर्लज्जातुरपुरोहितः । 3. P², A, B¹, B² and B³ कायचिन्तागतो बाह्ये शोभनः पुरमभ्यगः । 4. P² and A चैत्ये चैत्यो(त्ये) नमस्कृत्य । 5. A तदा° । 6. P², A, B¹, B² and B³ शोभने शोभना । 7. P² देशनादेशिता । 8. P² and A संघयुक्तोऽपि । 9. P², A, L and B² °रे । 10. P², A, B¹, B² and B³ भ्रातरः सम्मुखमायाताः । 11. P² and A माताकलत्रपुत्रादि नमस्तं-सारनत्रकैः; B² संसारनात्रके । 12. P², A, B¹, B² and B³ मु° । 13. P², A, B¹, B² and B³ क्वा° । 14. P² मुनिवरं गता । 15. P² and A हि तस्याग्रे । 16. P², A, B² and B³ हे पृष्टः । 17. B¹ omits this whole verse । 18. P², A, B¹, B² and B³ गतः शोभनान्तिके । 19. P², A, B¹, B² and B³ अनुदोषं कथं लोके (B¹, B² and B³ के) ग-(य)तं इति तत्पदम् ।

दधिमध्यस्थितान् जीवान् दर्शयिष्यसि मां यदि ।
तदाहं श्राद्ध एवास्म्यन्यथा त्वं विप्रतारकः ॥२९४॥
धनपालवचः श्रुत्वा शोभनो वचनं जगौ ।
दर्शयामि यदा जीवान् तदा वाचा प्रपाल्यते ॥२९५॥

अङ्गीकृत्य वचोप्येवं तदालक्तकमानय ।
दधिभाण्डमुखे मुद्रा दत्ता[1] छिद्रं व्यधायि च ॥२९६॥
क्षणमातपके मुक्तं तापतः[2] शुभ्रजन्तवः ।
दधिभाण्डस्य छिद्रेण निर्गत्यालक्तके स्थिताः ॥२९७॥

[3]वलमानांस्ततो जीवान् दृष्ट्वा विस्मितमानसः[4] ।
धन्यो जिनेन्द्रधर्मोयं[5] धनपालोवदत्पुनः ॥२९८॥[6]
[7]साक्षरैर्बोध्यमानः स द्वादशव्रतधारकः ।
वचनेन गुरोः श्राद्धो धनपालोभवत्सुधीः ॥२९९॥

अङ्गीकृतं(त्य)[8] च सम्यक् तं भवपाथोधितारकम् ।
जैनधर्मपरो जातो नान्यं[9] धर्मं समीहते ॥३००॥
अर्हन् देवो गुरुः साधुर्धर्मो[10] जैनप्रभाषितः ।
सर्वदा हृदये[11] ध्यानं मन्त्रस्य परमेष्ठिनः[12] ॥३०१॥

इत्थं संबोधितो भ्राता गुर्वन्ते प्राप[13] शोभनः ।
द्विजेनैकेन दुष्टेन भोजराजाय[14] भाषितम् ॥३०२॥
धनपालो जिनं मुक्त्वा नान्यं[15] देवं हि वाञ्छति ।
भूपोप्यूचे करिष्यामि कदाचित्तत्परीक्षणम् ॥३०३॥

एकदा भोजभूनाथो महाकालालये गतः ।
नमस्कृतो नृपेणाथ धनपालेन नो पुनः ॥३०४॥
अदेवे न हि देवत्वं धनपालोब्रवीदिदम् ।
रागद्वेषपरा देवाः संसारात्तारकाः कथम् ॥३०५॥[16]

---

1. P^2 and A मुद्रां दत्त्वा । 2. P^2, A, B^1 and B^2 तापेन । 3. A वरू° । 4. A विस्मय° । 5. P^2, A धन्यं जै(A जि)नेन्द्रजं धर्मं । 6. B^1 omits this verse । 7. B^1, B^2 and B^3 साक्षरं । 8. L °त्य । 9. A °न्य° । 10. P^1 and P^3 °धुघ° । 11. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 निरन्तरं हृदि । 12. P^1 and P^3 °नाम् । 13. P^2, B^1, B^2 and B^3 °प्त° । 14. P^2, B^1, B^2 and B^3 भोजभूपाय । 15. P^2, A, B^1 and B^3 °न्यदे° । 16. Between verses 304 and 305, B^1, B^2 and B^3 add : तं दृष्ट्वा भोज आचष्टे न देवं स्यादतः परम् । धूपनैवेद्य-पुष्पादिर्वन्द्यते पूज्यते स्तुते ॥ (Cf. verse 307 below)

ये देवा जितरागाः स्युः [1]संसारतारकास्तु ते ।
एवं च मद्वचो राजन् सत्यमेव[2] न संशयः ॥३०६॥

यथा—अकण्ठस्य कण्ठे कथं पुष्पमाला
विना नासिकायाः[3] कथं धूपगन्धः[4] ।
अकर्णस्य कर्णे[5] कथं गीतनृत्यं
क्षपादस्य पादे कथं मे प्रणामः ॥३०७॥

भोजभूपेन तद्वाक्यं श्रुत्वा हृदि विचिन्तितम् ।
मोक्षो येषां कथं[6] नास्ति परेषां मोक्षदाः कथम् ॥३०८॥
एवं ज्ञात्वाथ संजातो जैनधर्मानुरागभाक् ।
नरेन्द्रो भद्रभावज्ञः[7] कुरुते तत्प्रशंसनम् ॥३०९॥
तुरङ्गानतिवाह्याथ[8] गतो [9]भूपः स्वमन्दिरे ।
तडागोपि[10] नरेन्द्रेण नूतनः कारितोन्यदा ॥३१०॥
वर्षाकाले भृतं ज्ञात्वा दर्शनाय गतो नृपः ।
पञ्चषड्भिश्च विद्वद्भिर्धनपालादिकैर्युतः ॥३११॥
नूतनैर्नूतनैः काव्यैः सरस्या[11] वर्णनं कृतम् ।
पण्डितैः सकलैरेव[12] स्वस्वबुद्ध्यनुमानतः[13] ॥३१२॥
कथितं भोजभूपेन[14] सरसो[15] वर्णनं कुरु ।
धनपालः स्थितस्तूष्णीं भूपोप्यूचे द्विजोच्यताम् ॥३१३॥

[16]तद्यथा—एषा तडागमिषतस्तव [17]दानशाला
[18]मत्स्यादयो रसवती प्रगुणा सदैव ।
[19]पात्राणि ढिङ्कबकसारसचक्रवाकाः[20]
पुण्यं कियद्भवति तत्र वयं न विद्मः ॥३१४॥

इक्कु सावण नैं भद्दवै जत्थवि तत्थवि नीर ।
जेठ कलोला जे करै ते सर सहजि गंभीर ॥३१५॥

---

1. P^1 and P^3 संसारे। 2. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 सत्यं सत्यं। 3. P^1, P^3 and L नासिका स्यात्। 4. L and B^3 गन्धपूरः। 5. P^2 and A अकर्णे(र्णे) अनेत्रे। 6. B^1, B^2 and B^3 स्वयं। 7. B^3 भावेन। 8. A, B^1, B^2 and B^3 अतिवाह्य तुरङ्गाणां। 9. P^2 and A नृपस्य। 10. P^2, A, B^1 and B^2 सरोवरं(रो)। 11. L °सो। 12. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 पण्डितानां च सर्वेषां। 13. P^2 °द्ध्यानिमा°; A and B^3 °द्ध्यादिमा°; L, B^1 and B^2 °द्ध्यनुसा°। 14. P^1 and P^3 भूपालेन। 15. P^2, A and B^3 °स्या। 16. P^2 तथा; B^3 यथा। 17. B^1 °निरतो दयदान°। 18. P^2 and A °मत्स्यका°। 19. L तु°। 20. P^2 °को।

धनपालगिरं श्रुत्वा चुकोप हृदये नृपः ।
मम कीर्तनकं दृष्ट्वा दृष्टयापि न सुखायते ॥३१६॥
गुरुरूपे[1] मम द्वेषी वचनैरुपलक्षितः ।
वर्णनीयः [2]परैर्विप्रैः स्वकीयैर्निन्द्यते[3] कथम् ॥३१७॥
अहमेव करिष्यामि प्रतीकारं हि तादृशम् ।
धनपालस्तदा दध्यौ[4] द्वेषनिर्नाशनोत्सुकः[5] ॥३१८॥
एवं [6]विचिन्त्य मनसा यावत्तूष्णीं स्थितो नृपः ।
धाराचतुष्पथे तावद् वृद्धैका संमुखागता ॥३१९॥
भो भो विद्वज्जना ! एवं श्रूयतां मद्वचोधुना ।
भूपः प्रश्नात्तरं प्रोचे प्रत्युत्तरकृते बुधान्[7] ॥३२०॥

यथा—कर कम्पावै सिर धुणै बुड्ढी कांइ कहेइ ।
एवं श्रुत्वा पण्डित ऊचे—
इह जमराणै संभरी नंनंकार करेइ ॥३२१॥
विद्याधरो[8] धनपालो ज्ञात्वावसरमब्रवीत् ।
यत्किंचिद् वदते वृद्धा तद्वदामि शृणु प्रभो ॥३२२॥

[9]यथा—

किं नन्दी किं मुरारिः किमु रतिरमणः किं विधुः किं विधाता[10]
किं वा विद्याधरोयं[11] किमुत[12] सुरपतिः किं नलः किं कुवेरः[13] ।
नायं नायं न चायं न खलु न हि न वा नैव चा(ना ?)सौ न चासौ[14]
क्रीडां कर्तुं प्रवृत्तः स्वयमिह हि हले ! भूपतिर्भोजदेवः[15] ॥३२३॥
स्तुतिं श्रुत्वा ततो भूपो हृष्टचित्तोऽब्रवीदिदम् ।
तुष्टोहं धनपालास्मि[16] याचस्व तव रोचते[17] ॥३२४॥
एवं श्रुत्वा द्विजः प्रोचे याचितं[18] यदि लभ्यते ।
तन्नेत्रद्वयमस्माकं [19]प्रसादीकुरु भूपते ![20] ॥३२५॥

---

1. P^1, P^3 and B^1 °चे । 2. B^2 and B^3 °योऽपरैर्वि° । 3. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 निन्दितः । 4. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 °लो द्रुतं चक्षो । 5. B^1, B^2 and B^3 दूरीकुर्वामहे वयम् । 6. P^2 and A सं° । 7. P^1 and P^3 वुधाः; P^2 न वा; L भवान् । 8. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 घनो । 9. L omits this word । 10. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 नलः किं कुवेरः । 11. P^2, B^1, B^2 and B^3 °रोसौ । 12. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 किमथ । 13. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 विधुः किं विधाता । 14. P^2, A, B^1, B^2 and B^3 नाऽपि नाऽसौ न वैपः । 15. P^2 °र्भंददेवः; B^1 and B^2 °र्भोजदेव ! । 16. P^2 and A °लस्त्वं । 17. P^2 and A रोचितम् । 18. A °तो । 19. P^2 and A प्रसादं; B^1, B^2 and B^3 तदा नेत्रद्वयं(यं)ऽस्माकं प्रसादं । 20. P^2 and A °पतेः ।

एतदाश्चर्यं भूपस्य कथं ज्ञातं मनःस्थितम् ।
ज्ञातत्वं सफलं तस्य ज्ञायते यदुदाहृतम्[1] ॥३२६॥
धनपालो नृपेणाथ दानमानैः प्रपूजितः ।
विख्यातं जैनधर्मं तं पालयामास पण्डितः ॥३२७॥
ऋषभपञ्चाशिकापि धनपालकृता स्वयम् ।
[2]जैनधर्मरहस्यं तत्सम्यक्त्वं च प्रकाशितम् ॥३२८॥
विधिः श्रावकधर्मस्य निवासस्थानपूर्वकम् ।
कृतं प्रकरणं जैनं[3] धनपालेन सद्धिया ॥३२९॥

यथा—जत्थ पुरे जिणभवणं समयविऊ साहुसावया जत्थ ।
तत्थ समावसियव्वं पउरजलं इंधणं जत्थ ॥३३०॥
यथा पञ्चमकालेत्र[4] केवलज्ञानवर्जिते[5] ।
मिथ्यात्वी[6] धनपालोयं[7] प्रबुद्धो[8] न तथा परः ॥३३१॥
जैनं च धर्मं प्रतिपाल्य सम्यक्
संस्तारदीक्षासहितो[9]न्तकाले[10] ।
सर्वाङ्गिनां[11] क्षामणकादिपूर्वं
द्विजोत्तमः प्राप स देवलोकम् ॥३३२॥
विविधगुणगुणाली पुण्यपीयूषनाली
वदति वचरसाली कीर्तिवल्ली विशाली ।
अरिजनकृत एवं भूभुजेः पादसेवः
विदितसकलधामा[12] भूपतिर्भोजनामा[13] ॥[14]३३३॥

इति धर्मघोषगच्छे वादीन्द्रश्रीधर्मसूरिसंताने[15] श्रीमहीतिलकसूरिशिष्य[16] पाठकश्रीराजवल्लभकृते भोजचरित्रे मुञ्जोत्पत्ति-धनपालस्वर्गगमनो[17] नाम प्रथमः प्रस्तावः ॥१॥

---

1. P², A, B¹ and B² यदि हृद्गतम् । 2. A जिन° । 3. B¹, B² and B³ येन । 4. P¹ and P³ °स्मिन् । 5. L °वर्जितम् । 6. L °त्वं । 7. P¹ and P³ °त्र । 8. L बुद्धोऽत्र । 9. P¹ °तं° । 10. P² °दीक्षान्वित चा(श्चा ?)न्तकाले । 11. P², A, B¹, B² and B³ अनागिनं । 12. P² and A °धाम्ना । 13. P² and A नाम्ना । 14. P¹, P³ and L omit this verse । 15. P¹, P³, L and B¹ omit this compound word । 16. P¹, P³ and L omit this compound word too । 17. B¹, B² and B³ मुञ्जभोजोत्पत्तिधनपालप्रतिबोधस्वर्गगमनो ।

[अथ द्वितीयः प्रस्तावः]

एकदा भोजभूनाथ उपविष्टः सभान्तरे ।
प्रतीहारेण विज्ञप्तः स्वामिन् ! विज्ञप्तिकां शृणु ॥१॥

कलिङ्गाधिपतेः[1] पुत्रो जयसेनः समागतः ।
न्यग्रोधाधो नृपादेशात् स्थापितः सत्कृतोपि च ॥२॥

प्रातरागत्य विज्ञप्तः कुमारेण नृपस्ततः ।
मत्पित्रा ते प्रेषितानि त्रीणि शीर्षाणि हर्षतः ॥३॥

किं मूल्यं कस्य शीर्षस्य[2] कथनीयमिदं मम ।
एवमुक्त्वा कुमारोपि न्यग्रोधस्थानके गतः ॥४॥

आकारितो वररुचिः शीर्षाख्यानं निवेदितम् ।
विचार्या हृदये वार्ता कथं मूल्यं[3] विधीयते ॥५॥

त्वग्विहीनान्यजीवानि[4] तन्मूल्यं केन कथ्यते ।
भूपोवक्कौतुकं पश्य प्रातरास्थानके मम ॥६॥

भूपचातुर्यवीक्षार्थं[5] जयसेनेन सत्वरम्[6] ।
प्रातरागत्य विज्ञप्तं[7] शीर्षाणां [8]मूल्यकारणम् ॥७॥

शीर्षाण्यानीय मुक्त्वाग्रे भूपतेर्दिव्यबन्धनात् ।
छोटितानि शुभैर्गन्धैर्व्याप्त आस्थानमण्डपः ॥८॥

त्रीणि शीर्षाणि निष्कास्य मुक्तान्यग्रे महीशितुः ।
विस्मिता च सभा सर्वा पश्यते भूपचातुरीम्[9] ॥९॥

एकस्य दोरकः कर्णे क्षिप्तो[10] वक्त्रे न निर्गतः[11] ।
सर्वोत्तममिदं शीर्षं [12]लक्षमूल्यं[13] निरूपितम् ॥१०॥

मध्यमे दोरकः क्षिप्तः कर्णात्कर्णेन निर्गतः ।
सहस्रदशकं तस्य भोजभूपेन भाषितम् ॥११॥

---

1. B[1], B[2] and B[3] पतिः । 2. B[1] कस्य शीर्षस्य किं मौल्यम् । 3. B[1] and B[2] मौल्यं । 4. B[1], B[2] and B[3] त्वचा हीनं तु निर्जीवं । 5. B[1] and B[2] जयसेनकुमारोऽप्य; B[3] जयसेनकुमारेण । 6. B[1], B[2] and B[3] भूपचातुर्यवीक्षणे । 7. B[1], B[2] and B[3] प्रगेणागत्य विज्ञप्तः । 8. B[1], B[2] and B[3] मौल्य° । 9. B[1], B[2] and B[3] पश्यामो भूपचातुरीम् । 10. B[1], B[2] and B[3] दोरकं कर्णे क्षिप्तं । 11. B[1], B[2] and B[3] निर्गतम् । 12. P[1] लक्ष्य° । 13. B[3] °मौल्यं ।

तृतीये दोरकः क्षिप्तः कर्णे वक्त्रेण निर्गतः[1] ।
जघन्यशीर्षं तज्ज्ञेयं[2] मूल्यं भग्नवराटिका ॥१२॥
जयसेनकुमारोपि दृष्ट्वा भूपस्य चातुरीम् ।
प्रशंसन् भोजपादाब्जौ नमस्कृत्य गृहे गतः ॥१३॥[3]
विवेके विनये ज्ञत्वे विद्यायां[4] विक्रमेपि च ।
विद्वज्जन इति प्राह[5] भोजतुल्यो न भूपतिः ॥१४॥
एवं राज्यश्रियं सम्यक् पालयन् सर्वदापि हि[6] ।
पुरन्दर इवोर्वीस्थः श्रूयते विबुधैर्जनैः ॥१५॥
अन्यस्मिन् दिवसे राजा सभायां मण्डपे स्थितः ।
वर्धापको नरः कोपि भूपं विज्ञपयत्यमुम्[7] ॥१६॥
दक्षिणायां दिशि स्वामी [8]पुहविस्थानभूपतिः ।
वैरिसिंहनृपस्तस्य पुत्री[9] सौभाग्यसुन्दरी ॥१७॥
तव कीर्तनके हृष्टा[10] नान्यं भूपं समीहते[11] ।
रतिप्रतिमरूपास्ति[12] समायाता स्वयंवरे ॥१८॥
तस्यावलोकनार्थं च[13] राज्ञा प्रैषि पुरोहितः ।
गीर्वाणवाणीनैपुण्याद्वहुधालापितस्तया[14] ॥१९॥
रञ्जितस्तत्कचातुर्याद्विनयाच्च पुरोहितः ।
छन्दोलङ्कारविदुरा मन्ये साक्षात्सरस्वती ॥२०॥
[15]हृष्टचित्तोवभाषिष्ट भूपस्याग्रे पुरोहितः ।
न वर्ण्यन्ते गुणास्तस्याः कथमप्येकजिह्वया ॥२१॥
द्विजोत्तमवचः श्रुत्वा राजा हर्षपरायणः ।
महोत्सवेन भूपस्तां विवाहयति कन्यकाम् ॥२२॥
तद्गुणै रञ्जितो राजा स्थितोन्तःपुरमध्यतः ।
न करोति स्म राज्यस्य चिन्तां च गजवाजिनाम्[16] ॥२३॥

एवं ग्रीष्मर्तुसंप्राप्तौ जलक्रीडापरो नृपः ।
समस्तान्तःपुरीयुक्तो रमते रमणीगणे ॥२४॥

सार्धं सौभाग्यसुन्दर्या स्नेहयुक्तो नरेश्वरः ।
जलसेकक्रियायोगाज्जातो व्याकुलमानसः[1] ॥२५॥

देव्यवक् संस्कृतं स्वामिन् ! मोदकैर्मां च सिञ्चय ।
अज्ञानाद्भूपतिस्तस्यै मोदकानेव दत्तवान् ॥२६॥

मोदकैर्भरितां स्थालीं दृष्ट्वा विस्मितमानसा ।
विद्वत्त्वं भवतो ज्ञातं राज्ञी ब्रूते विहस्य सा ॥२७॥

राजा विलक्षचित्तः [2]संश्चिन्तयामास मानसे ।
शास्त्राभ्यासं विना ह्यस्मान्[3] हसन्ते स्म स्त्रियोपि हि ॥२८॥

धिङ्मे चतुरचाणक्यं धिङ्मे रूपं च यौवनम् ।
तद्भूरे ! विवरं देहि प्रवेशं प्रकरोम्यहम् ॥२९॥

एवं विमृश्य भूपालः करोत्यध्ययनश्रमम् ।
दिनैः स्तोकतरैर्जातो विद्वज्जनशिरोमणिः ॥३०॥

पार्श्वस्थितं पञ्चशतं विदुषामस्य तिष्ठति ।
नृपस्य[4] विरुदं दत्तं कूर्चालेयं सरस्वती[5] ॥३१॥

गीते कवित्वे साहित्ये[6] चातुर्ये विनये नये ।
नृपो भोजसमो भूम्यां न भूतो न भविष्यति ॥३२॥

यथा—कविषु वादिषु भोगिषु योगिषु[7]
द्रविणदेषु सतामुपकारिषु ।
धनिषु धन्विषु धर्मपरीक्षिषु[8]
क्षितितले न हि भोजसमो नृपः ॥३३॥

एकस्मिन् दिवसे राजा विद्वद्वररुचिश्रितः ।
सभायामुपविष्टोस्ति मन्त्रिसामन्तसंयुतः ॥३४॥

---

1 B^1, B^2 and B^3 अतिस्नेहेन भूपालः सार्धं सौभाग्य-सुन्दरी । जलसिञ्चनतो बाढं जाता- (B^3 तो)व्याकुलमानसा (B^1 and B^3 सः) ॥ । 2 B^1, B^2 and B^3 °चित्तोपि चिन्त° । 3 B^1, B^2 and B^3 विनास्माकं । 4 B^1, B^2 and B^3 भूपाय । 5 B^1, B^2 and B^3 कूर्चेन सह भारती । 6 B^1, B^2 and B^3 कवित्वगीतसाहित्ये । 7 B^1 and B^2 योगिषु भोगिषु । 8 B^1, B^2 and B^3 धर्मपरेषु च ।

साश्चर्यात्यद्भुता वार्ता चालिता पण्डितैर्जनैः ।
हसित्वा भोजभूपेन प्रोक्तं वररुचेः पुरः ॥३५॥

स्वभावोयं गुरुर्लोकेऽथवोपाधिगु(र्गु)रुर्मतः[1] ।
एषा [2]वार्ता ममाग्रे हि[3] कथनीया [4]सुनिश्चितम् ॥३६॥

ऊचे वररुचिर्दक्षो भूपाल ! शृणु मद्वचः ।
नोपाधिः स्तूयते[5] लोके सहजो मण्डनं जने ॥३७॥

नृपोऽप्युवाच भो विप्र ! स्वभावो नो गुरुर्भवेत् ।
उपाधिस्तु गरिष्ठोयं[6] लोकेऽप्याश्चर्यकारकः[7] ॥३८॥
यदि ते प्रत्ययो नास्ति तदागच्छ ममालये ।
देवतार्चनवेलायां कौतुकं दर्शयामि ते ॥३९॥

तस्मिन्नवसरे तेन सभा सर्वा विसर्जिता[8] ।
स्नानं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गतो देवालये नृपः ॥४०॥
प्रतीहारगिरायातः पार्श्वे वररुचिर्विभोः ।
संमान्यमासनं[9] दत्तमुपविष्टस्तु पण्डितः ॥४१॥
पुष्पैः(ष्पैः) [10]प्रवरनैवेद्यैर्धूपदीपादिचन्दनैः ।
[11]पञ्चप्रकारपूजां तां कृत्वा भूपो यथाविधि ॥४२॥

तदारात्रिकवेलायां मार्जारी समुपागता ।
स्नाता गङ्गोदके पूर्वं पुष्पचन्दनचर्चिता ॥४३॥
पञ्चवर्त्तियुतो दीपः[12] पूजितो विधिपूर्वकम् ।
उत्तारयति मार्जारी वादित्रैः पञ्चशब्दजैः ॥४४॥
विलोकितं मुखं राज्ञा विद्वद्द्विजवरस्य हि[13] ।
स्वभावस्याथवोपाधेर्गरिमा कस्य दीयते[14] ॥४५॥
निरीक्ष्याश्चर्यकृद्वार्तां वदति द्विजपुङ्गवः ।
पारम्पर्यं न हि ज्ञातं पुनः पश्यामि कौतुकम् ॥४६॥

भूपः प्राह सदैवैषारात्रिकं[1] प्रकरोत्यहो ।
विलोक्या भवता नित्यं नान्या[2] मार्जारिका समा ॥४७॥
पण्डितः कौतुकं दृष्ट्वा समायातो निजे गृहे ।
देवार्चावसरे प्रातरेकं मूषकमग्रहीत् ॥४८॥
गतो भूपसमीपेयं पण्डितोप्याशिषं ददौ ।
उपविष्टो मुदा तत्र कौतुकं तद्विलोकते[3] ॥४९॥
आरात्रिकं व्यधात्स[4]ज्ञः[5] पूजनानन्तरं नृपः ।
मार्जार्यपि समायाता स्नपिता पूर्ववत्तदा ॥५०॥
यावद् भ्रामयते दीपं वादित्रैर्वाद्यमानकैः ।
विदुषा मूषको मुक्तो दर्शयित्वा तदग्रतः ॥५१॥
मार्जारी मूषके दृष्टे दीपमास्फालये(य)द् भुवि[6] ।
सर्वे हास्यपरा जाता भूपतिप्रमुखा जनाः ॥५२॥
मार्जारीचेष्टितं वीक्ष्य हसित्वा भूपतिर्जगौ ।
सहजः सर्वदा पूज्य उपाधिस्तु कियद्दिनान्[7] ॥५३॥
एवं राज्यश्रियं भुक्त्वा[8] भोजराजो नृपाग्रणीः ।
एकदास्ति[9] सभासीनो विज्ञप्तः केनचिद्विशा ॥५४॥
स्वामिन् ! नगरमध्येद्य दृष्टं रक्षोद्वयं मया ।
तद् गच्छति च लङ्कातो[10] यात्रां गोदावरीं प्रति ॥५५॥
पृष्टो नरो नरेन्द्रेण दृष्टौ तौ राक्षसौ कथम् ।
कुम्भकारगृहे स्तस्तावाकार्यापृच्छ्यतां विभो[11] ॥५६॥
तथाकृते[12] नरेन्द्रेण प्रजापतिरवग्गतौ[13] ।
वलमानौ तदास्माकं कथनीयौ सुनिश्चितम् ॥५७॥
शिक्षां दत्त्वा निजे स्थाने प्रेषितः स प्रजापतिः ।
भूपतिः कारयामास पतङ्गीनां शतान्यथ[14] ॥५८॥
कियत्स्वहस्सु यातेषु वलमानौ तु राक्षसौ ।
तस्यैव कुम्भकारस्य संध्यायां सद्मनि स्थितौ ॥५९॥

---

1 B[2] रात्रिपु । 2 P[1] °न्य° । 3 B[1] and B[2] °कति; B[3] °कितम् । 4 P[1] °च्छ° । 5 B[1], B[2] and B[3] °ज्जं । 6 B[2] and B[3] भूम्यां स्फालति (B[3] लिति) दीपकम् । 7 P[1] °नात्; B[1] °नैः । 8 B[1], B[2] and B[3] भुङ्क्ते । 9 B[1], B[2] and B[3] एकदा च । 10 B[1], B[2] and B[3] सिंहस्ते गच्छते लङ्कात् । 11 B[1], B[2] and B[3] स्वामिन्नाकार्य पृच्छतेधुना । 12 B[1], B[2] and B[3] कृत्वा । 13 B[1], B[2] and B[3] प्राजापते मितिर्जगौ । 14 B[2] and B[3] दद्भूनपि ।

कथितं[1] कुम्भकारेण भोजराजनृपाग्रतः ।
रात्रौ स्फुरत्यन्धकारे[2] मोचितास्ताः[3] पतङ्गिकाः ॥६०॥
अनेकचञ्चत्कात्कारैर्दीपोद्द्योतितदिङ्मुखैः[4] ।
आहतुर्विस्मयातौ तौ कुम्भकारं प्रतिक्षणात् ॥६१॥
आकाशे किमिदं भद्र ! दृश्यते कौतुकं किल[5] ।
प्रजापतिरभाषिष्ट शृणु ह्येतत्कुतूहलम् ॥६२॥
भोजराजो नृपोस्माकं[6] यज्ञस्तेन प्रतन्यते ।
अदग्ध[7]स्वर्णकार्येण भूपः प्रस्थानके स्थितः ॥६३॥
प्रातर्गत्वा ससैन्योसौ भङ्क्त्वा लङ्कापुरीं ततः ।
सुवर्णं तत आदाय यज्ञं तं कारयिष्यति ॥६४॥
तच्छ्रुत्वा राक्षसौ भीतौ जल्पतुस्तौ परस्परम् ।
पुरा रामेण सा लङ्का भग्ना कष्टे महत्यपि ॥६५॥
बद्धोम्भोधिर्द्विपद्भिस्तु पादचारेण गच्छता ।
संग्रामे रावणं हत्वा[8] भग्ना लङ्कापुरी तदा ॥६६॥
अस्याकाशस्थितं सैन्यं गच्छत्केन निवार्यते ।
नूनं विभीषणं हत्वास्मत्पुरीं तां गृ(ग्र)हीष्यति ॥६७॥
समालोच्य हृदि द्वाभ्यां कुम्भकाराय भाषितम् ।
गच्छ त्वं भूपतेरग्रेथवावां नय तत्र भोः ! ॥६८॥
प्रधानपुरुषैः सार्धं राक्षसा(सौ) राजमन्दिरे ।
गत्वा भूपं नमस्कृत्य राक्षसावाहतुर्वचः ॥६९॥
स्थापय त्वं[9] निजं सैन्यं यावल्लङ्काधिपान्तिके ।
गत्वा विज्ञप्य तत्पार्श्वादानयावस्तदर्जुनम्[10] ॥७०॥
रामेण पातितं दुर्गं यत्त्रिकूटोपरिस्थितम्[11] ।
स्वर्णेष्टकामयं राजन् ! पतिताप्ना हृतस्ततः ॥७१॥
स्वामिन् ! निवेदयाम्माकं प्रेष्य(ष्य)न्ते कियदिष्टकाः ।
तावन्मात्राः समानीय मुच्यन्ते त्वत्पदाग्रतः ॥७२॥[12]

---

1 B^1 and B^2 °थं; B^3 °तं° । 2 B^1, B^2 and B^3 स्फुरत्यान्धकारेण । 3 B^1, B^2 and B^3 °तैः । 4 B^3 °खे । 5 B^1 and B^2 कौतुकाद्भुतम् । 6 B^1, B^2 and B^3 °स्माकं । 7 B^1 and B^2 अदग्ध । 8 B^1 and B^3 हित्वा । 9 B^1, B^2 and B^3 स्थापयस्व । 10 B^1, B^2 and B^3 तत्पार्श्वात् [illegible] । 11 B^1, B^2 and B^3 त्रिकूटोपरि संस्थितम् । 12 B^3 omits this verse ।

भूप ऊचे सहस्रे द्वे ह्यानीयन्तां ममेष्टकाः ।
स्वामिना सह लंकां तां चूर्णयामीति नान्यथा[1] ॥७३॥
राक्षसावूचतुः स्वामिन् ! दशवासर[2]मध्यतः ।
यदि नायाति तत्स्वर्णं चौरवद्दण्डमाचरेः[3] ॥७४॥
एवं निरूप्य भूपाग्रे प्रस्थितौ राक्षसौ प्रगे ।
समुत्सृत्य गतौ लंकां विज्ञप्तस्तु विभू(भी)षणः ॥७५॥
देव ! धारापतिर्भोजनामा मालवकेश्वरः ।
विद्यावांश्च महाशूरो दानी माने[4]श्वरो नृपः ॥७६॥
यज्ञमारब्धमस्त्येतेनादग्धस्वर्णहेतुना ।
आगच्छत्सैन्यमाकाशे भीत्यास्माभिर्निवारितम् ॥७७॥
विबोधितः प्रधानैस्तु विभीषणनरेश्वरः[5] ।
प्रेक्ष(ष्य)न्ते हीष्टका देव ! स्तोकेर्थे न विरुद्ध्यते ॥७८॥
न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः ।
एतदेवात्र पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद्भूरिरक्षणम् ॥७९॥
जनपञ्चशतीशीर्षे हीष्टकानां चतुष्टयम् ।
दत्त्वा प्रत्येकं भीत्या तैः प्रेषिताः शीघ्रराक्षसाः ॥८०॥
संप्राप्य नगरीं धारां राक्षसैः सकलैरपि[6] ।
इष्टका[7] ढौकिता भोजनृपाग्रे नतमस्तकैः[8] ॥८१॥
लङ्कायां कुशलं वत्स[9] कुशलं तु विभीषणे ।
गजवाजिसुतस्त्रीणां क्षेमं पप्रच्छ भूपतिः[10] ॥८२॥
प्रसादात्तव राजेन्द्र[11] ! कुशलं सर्ववस्तुषु ।
गृह्यन्तामिष्टका देव ! विभीषणविमुक्तकाः ॥८३॥
पश्यन् भोजनरेन्द्रस्य कलाकु[12]शलतां जनः ।
उपाङ्गचक्रवर्तीति वच ऊचे विशेषतः ॥८४॥
विभीषणस्य तं दण्डं भाण्डागारे ररक्ष सः ।
राक्षसानां तु सु(शु)श्रूषां कारयामास[13] भूपतिः ॥८५॥

---

1 B[1], B[2] and B[3] चान्यथा। 2 B[1], B[2] and B[3] दिनानि दश। 3 B[1], B[2] and B[3] °रेत्। 4 B[1], B[2] and B[3] दानमाने°। 5 B[1], B[2] and B[3] विभीषणस्तु संबोध्य प्रधानपुरुषैरपि। 6 B[1], B[2] and B[3] उत्तरनकलास्तेपि धारायां प्राप्तराक्षसाः। 7 B[1] B[2] and B[3] भोजाग्रे। 8 B[1], B[2] and B[3] इंटा विनयानतमस्तकाः। 9 B[1] and B[2] °च्छ°। 10 B[1], B[2] and B[3] °सुतान् दारान् कुशलं पृच्छते नृपः। 11 B[1], B[2] and B[3] भूपेन्द्र!। 12 B[1] and B[2] °को°। 13. B[1] and B[2] कारापयति।

अष्टादशापि[1] भोज्यानि कृत्वा माल्यादिवस्तुभिः[2] ।
आत्मस्तुतिकृते भूपाः सत्कुर्वन्ति विदेशिनाम् ॥८६॥
एवं मृष्टान्नलुब्धास्ते यावत्षण्मासकं स्थिताः ।
विस्मृता राक्षसी विद्या सर्वाप्युत्सव[3]नादिका ॥८७॥
भोजस्य सेवका जाताः स्थितास्तत्रैव मण्डले ।
मेदिनीचारिणो जाता गतविद्यास्ततः परम् ॥८८॥
अनेकोपाङ्गरङ्गेन(ण) विद्याया व्यसनेन च ।
भोजः पालयते राज्यं भूमिस्थो देवराजवत् ॥८९॥[4]

इति धर्मघोषगच्छे [5]पाठकराजवल्लभकृते श्रीभोजचरिते उपाङ्गचक्रवर्तिकूर्चालसरस्वती-विरुदप्रापणो नाम द्वितीयः प्रस्तावः ॥२॥

---

1 B^1, B^2 and B^3 °दशानि । 2 B^1, B^2 and B^3 गन्धमाल्यगुणस्तुतिः । 3 B^1 and B^2 °प्युत्सव° । 4 B^1, B^2 and B^3 add one more verse which is as follows—

सकलगुणनिधानं सुन्दरं [illegible] जनितजनविधानं किन्नरैर्गीयमानम् ।
[illegible] ददतानं च सर्वं [illegible] भोजभूपस्य दत्तम् [illegible] ॥

5 B^1 श्री[illegible]पाठक, etc.; B^2 वादीन्द्रश्रीधर्मसूरिसंताने मूलपट्टे श्रीमहीतिलकसूरिशिष्य-पाठक, etc; B^3 धर्मसूरिसंताने पाठक, etc.

[अथ तृतीयः प्रस्तावः]

भोजभूपोन्यदा रात्रावुत्थितः कायचिन्तया ।
चन्द्रोद्द्योतेन सौधस्थः पश्यति स्वविभूतयः ॥१॥

लावण्यललिमोपेताः[1] पश्येल्लीलावतीस्त्रियः ।
एकदैकत्र सुप्तः सन्[2] राजप्राहरिकान् नृपान् ॥२॥

क्कापि दन्तिनो बद्धानालाने मदविह्वलान् ।
नानाविधान् हयानत्र वाढं हेषयतो गृहे ॥३॥

दृष्ट्वा राज्यश्रियं सर्वां हृष्टोन्तः स[3] व्यचिन्तयत् ।
केन पुण्यप्रभावेन(ण) मयाप्ता वाञ्छिता रमा ॥४॥

सभाया अन्तरे ह्यागन्तास्ते वररुचिः प्रगे ।
स प्रष्टव्य इमां वार्तां प्रष्टव्यो नापरो मया ॥५॥

एवं विमृश्य भूनाथः प्रसुप्तः स्थानके निजे ।
सूर्योदये च संजाते ह्युदयाचलमस्तके ॥६॥

शयनादुत्थितो भूपः प्रातर्नृत्यानि पश्यति ।
सभापि मिलिता तावदमात्या मन्त्रिपुङ्गवाः ॥७॥

राजानो राजपुत्राश्च सीमाला भूपनन्दनाः ।
श्रेष्ठिनः सार्थवाहाश्च वैद्या ज्योतिषिका नटाः ॥८॥

अनेके गीतनृत्यज्ञा भट्टा वादित्रवादकाः[4] ।
बहवो मिलिता लोकाः सभासंस्थानमण्डपे ॥९॥

भूषितो भूषणैर्वस्त्रैः परिच्छदसमन्वितः ।
सिंहासनमलञ्चक्रे सभायां भोजभूपतिः ॥१०॥

भट्टानां हि जयारावैर्विद्वज्जनमनोहरैः ।
वर्तते यावदास्थाने स्ता(ता)वद्वररुचिस्त्वितः[5] ॥११॥

सभा[6] समुत्थिता सर्वा[7] तावद्वररुचिः पुनः ।
दत्त्वाशीर्वचनं पूर्वमुपविष्टो नृपान्तिके ॥१२॥

---

1 P^1 and P^3 °पेतः । 2 B^1 and B^2 एकतोपि हि सुप्तास्ते(प्तांस्तान्) । 3 B^1 and B^2 °श्रियः सर्वां हृष्टचित्तो । 4 B^1, B^2 and B^3 °त्रकादयः । 5 B^2 वररुचिस्तावदागतः । 6 B^1 and B^2 सभ्याः । 7 B^1 and B^2 °ताः सर्वे ।

यावत्पृच्छति भूपाल[1]श्चिन्तां चित्तस्थितां निजाम् ।
ऊचे वररुचिस्तावत् ज्ञातं राजेन्द्र ! कारणम् ॥१३॥

पृच्छसि त्वं मया राज्यं संप्राप्तं पुण्यतः कुतः[2] ।
तत्र प्रत्युत्तरस्यार्थे वार्तां मत्पार्श्वतः शृणु ॥१४॥

श्रेष्ठी धनदनामास्ति धनदेवो महाधनी ।
भूनाथो वसतेऽत्रैव[3] सपुत्रः पौत्रकान्वितः ॥१५॥

लक्ष्मीनिवासस्तत्पुत्रो लक्ष्मीदेव्यस्ति तत्प्रिया ।
कथयिष्यति तेऽग्रे सा वधूः श्रेष्ठिसुतस्य हि ॥१६॥

एष संदेह ऊचे राड्[4] ज्ञातो मे हृद्गतः कथम् ।
अथवा शास्त्रवेत्तॄणां न हि किञ्चिदगोचरम् ॥१७॥

विसर्जिता सभा सर्वा कौतुकेन महीभुजा[5] ।
गतः श्रेष्ठिगृहं[6] यत्र तत्र स्वल्पपरिच्छदः ॥१८॥

आयाता मज्जनं कृत्वा मिलिता संमुखं[7] स्नुषा ।
हसन्ती पृच्छति क्ष्मापं[8] निर्लज्जा बान्धवे यथा ॥१९॥

कथं भोजनरेन्द्रस्त्वं[9] विप्रेण प्रेषितोऽधुना ।
केन पुण्यप्रभावेण राज्यं प्राप्तं हि पृच्छसि ॥२०॥

विस्मयेन नरेन्द्रोवक् सत्यमेतद्वदाग्रतः ।
संदेहो ह्यस्ति मच्चित्ते[10] स्फे(स्फो)टनाय समागतः ॥२१॥

साप्याह गोपुरद्वारे निर्गमाद्दक्षिणे भुजे ।
कुम्भकारी[11]गृहं ह्यस्ति[12] सोमानाम्न्यस्ति विश्रुता ॥२२॥

स्फो[13]टयिष्यति संदेहं गच्छ त्वं तत्र बान्धव ! ।
विनोदाय गतो राजा कुम्भकारीगृहे द्रुतम् ॥२३॥

सापि तत्र गृहे नास्ति भूप[14] ऊर्ध्वः स्थितः क्षणम् ।
तावत्समागता सोमा भूपं दृष्ट्वा गृहेऽवदत्[15] ॥२४॥

रे पुत्रा ! धृष्टपापिष्ठाः ! पृथ्वीशः सत्कृतो न किम् ।
भोजभूपः समायाति पुण्यैः कस्यापि मन्दिरे ॥२५॥
मानसन्मानपूर्वं चोपविष्टो नृपतिः क्षणम् ।
पूर्वजन्मानुरागेण[1] सोमयालापितस्तदा ॥२६॥
श्रेष्ठिवध्वात्र हे स्वामिन् ! प्रेषितस्त्वं ममालये ।
अनुक्त्वा ज्ञापितोदन्तं कथयामि तवाग्रतः ॥२७॥
शूलिका नाम मातङ्गी बहिस्तिष्ठति भोः ! पुरात् ।
राजेन्द्र ! तव संदेहवार्तां सा कथयिष्यति ॥२८॥
तद्वाक्यश्रवणाद्भूपो गतो मातङ्गिनीगृहे ।
दूरतोप्युपलक्ष्यैतं सा गृहान्निर्गता[2] बहिः ॥२९॥
एकस्याथ द्रुमस्याधः स्थिता सा शूलिका ततः ।
पूर्वभवानुबन्धेन बहुधालापितो नृपः ॥३०॥
सोमानाम्न्या च कुम्भार्या प्रेषितस्त्वं ममान्तिके ।
वार्तामहं हृद्गतां ते जानामि श्रूयतां नृप ॥३१॥
अत्रैव दक्षिणाशायामेकं दूरेस्ति[3] काननम् ।
तन्मध्ये पद्मिनीषण्डमण्डितं वर्तते सरः[4] ॥३२॥
तस्य पाल्युपरिष्टात्तु प्रासादोस्ति मनोहरः[5] ।
राक्षसस्तत्र वसति[6] जातिस्मरणसंयुतः ॥३३॥
भनक्ति तव संदेहं गतमात्रस्य नान्यथा ।
यदीच्छेः कार्यसिद्धिं त्वं तदा तत्रैव गम्यते[7] ॥३४॥
मातङ्गीवचनाद्राजा गतो गह्वरकानने ।
दृष्टं सरः [8]सुविस्तीर्णं जिनायतनमण्डितम् ॥३५॥
राक्षसेन महीपालो दूरादप्युपलक्षितः ।
संमुखं मिलनायागाद्भवपूर्वानुरागतः[9] ॥३६॥
प(ख)ड्गमादाय राजेन्द्रो यावदध्वनि[10] तिष्ठति ।
तावत्प्रदक्षिणीकृत्य तेन राजा नमस्कृतः[11] ॥३७॥

1. B^1, B^2 and B^3 भवपूर्वानु° । 2. B^1, B^2 and B^3 उपलक्ष्य सुदूरस्थो [B^3 स्था] गृहात्सा निर्गता । 3. B^1 and B^2 °यां किंचिद्दूरेस्ति । 4. B^1, B^2 and B^3 मण्डितोस्ति महासरः । 5. B^1, B^2 and B^3 °दं सुमनोहरम् । 6. B^1, B^2 and B^3 वसते राक्षस [B^2 and B^3 सा]स्तत्र । 7. B^1, B^2 and B^3 तदा निर्भय ! गम्यते । 8. B^1 and B^2 नवि° । 9. B^1, B^2 and B^3 भवपूर्वानुरागेण सन्मु(म्मु ?)खो मिलनागतः । 10. B^1, B^2 and B^3 मार्गस्थो यावत्ति° । 11. B^2 and B^3 तावन्नमस्कृतस्तेन त्रिप्रदक्षिणपूर्वकम् ।

विनयेन घनेनाथ स्तुतस्तेन नरेश्वरः[1] ।
नीतः स्थाने निजे यत्र विद्यते नाभिनन्दनः ॥३८॥
पश्य भूपाल[2] ! देवोयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
तं नमस्कृत्य पूर्वं तु पश्चात्कार्यं ममादिश ॥३९॥
वचसा तस्य भूनाथो गत्वा गर्भगृहान्तरे ।
नमस्कृत्यास्तवीद्भक्त्या वासनापूर्णमानसः ॥४०॥
जिनालयाद्बहिः[3] प्राप्तः कथयामास राक्षसः ।
मया ज्ञातोस्त्यभिप्रायो[4] मातङ्ग्या प्रेषितस्त्वकम्[5] ॥४१॥
पृच्छसि त्वं मया राज्यं प्राप्तं पुण्येन केन हि[6] ।
तव हृद्गतसंदेहं कथयाम्युपविश्यताम् ॥४२॥
एकाग्रं[7] मानसं कृत्वा श्रूयतां मद्वचस्त्वया ।
तिष्ठाम्यत्र वने राजन् ! भुञ्जन् पूर्वभवार्जितम् ॥४३॥
एकस्मिन्दिवसेत्रैव[8] वन्दनाय जिनेशितुः[9] ।
पञ्चज्ञानधरः कोपि समागान्मुनिपुङ्गवः[10] ॥४४॥
प्रविश्य गर्भगेहस्थः स्तवीति जिनपुङ्गवम् ।
विनयात्परया भक्त्या भूभागन्यस्तमस्तकः ॥४५॥[11]
नमस्ते परमज्योतिर्नमस्ते मोक्षदायिने ।
नमस्ते लोकनाथाय [12]कृतानन्द ! नमोस्तु ते ॥४६॥
एवं सोनेकधा स्तुत्वा प्राप्तो देवगृहाद्बहिः ।
तावन्मया नमन्मौलि वन्दितो मुनिपुङ्गवः ॥४७॥
करौ च कुड्मलीकृत्य पृष्टं विनयतो घनात् ।
मया पूर्वभवे किं किं [13]दुष्कर्मोपार्जनं कृतम् ॥४८॥
येन दुःकृ(दुष्कृ)मयोगेन जातोहं [14]रक्षसां कुले ।
क्षुत्तृषापीडितो नित्यमसंतुष्टो भ्रमाम्यहम्[15] ॥४९॥
मुनिः प्राह तदा भद्र ! शृणु पूर्वभवां कथाम् ।
एकचित्तः स्थिरो भूत्वा कथयामि तवाग्रतः ॥५०॥

[1]मरुस्थलाभिधे देशे पुरं सत्यपुराभिधम् ।
वसते राजसूरेको धरणो[2] जैनधार्मिकः ॥५१॥

धनश्रीस्तत्प्रिया पुत्राः पुत्र्यश्चास्यास्त्रिसंख्यकाः ।
देवराजः शिवराजः सारङ्गश्च[3] ततोपरः ॥५२॥

दाम्रू नाम्रू तथा पेमी पुत्रीणां च त्रयं[4] क्रमात् ।
पितरौ च[5] दिनैः कैश्चित् पूर्णायुष्कौ दिवं गतौ ॥५३॥

कियद्भिर्दिवसैस्तत्र जातं दुर्भिक्षमद्भुतम्[6] ।
भ्रातरोपि भगिन्योपि पीडिताश्च क्षुधाभ्रमन् ॥५४॥

वासरान्गमयामासुः कन्दैर्मूलफलैर्घनैः ।
यावद् द्वादशवर्षाणि[7] कान्तारे पीडितो जनः ॥५५॥

कियद्वर्षैः पुलिन्द्राणां देशे दुःखेतिवाहिताः ।
परिच्छदसहायास्ते प्राप्ताः सर्वेपि मालवान् ॥५६॥

देवराजस्य संसर्गाच्छिवराजोपि धार्मिकः ।
देवार्चनं प्रकुर्वाणौ[8] कृत्वाभोज्यं स्थितौ च तौ ॥५७॥

प्रजापुण्योदयाज्जाता[9] मेघवृष्टिर्घना क्षितौ ।
सामकान्नस्य निष्पत्तिः संजाता वहुला द्रुतम् ॥५८॥

देवराजो गतोरण्ये [10]सामार्थे सपरिच्छदः ।
अग्रपक्वशिरोग्राहात् सर्वे ते मुदिताः कृताः ॥५९॥

तान्यानीय[11] निजे स्थाने मुक्त्वा तापेतिपाचनात्[12] ।
परिवेषणकं पाकं दाम्रूनाम्नी स्वसाकरोत् ॥६०॥

अन्नपाकस्य[13] वेलायां देवराजः सवान्धवः ।
स्नात्वा देवार्चनं[14] कृत्वा भाजने स न्यवीविशत् ॥६१॥

कान्तारे च सुधातुल्यं कदन्नमपि जायते ।
षड्भागेनाधिकेनान्नं भग्न्यापि परिवेपितम् ॥६२॥

---

1. B[3] तथाहि–मरुस्य° etc. । 2. B[3] धरणो । 3. B[3] सागरश्च । 4. B[1] and B[2] द्वयः । 5. B[1], B[2] and B[3] माता पिता । 6. B[1] and B[2] कान्ताररौरवम् । 7. B[1] and B[3] वर्षान् द्वादशकान् यावत् । 8. B[1], B[2] and B[3] देवार्चाकृत्ते सुचितमन्तौ । 9. B[1], B[2] and B[3] दैवे जाता । 10. B[1] सामर्थ्ये; B[2] सामाग्रथे; B[3] सामर्थ° । 11. B[1] and B[2] आनीतस्तान्; B[3] आनीयते । 12. B[2] °पेतिखण्डितः । 13. B[1], B[2] and B[3] °पाचन° । 14. B[2] and B[3] °नां ।

यावद् भवति शीतान्नं चिन्तयेत्तावदग्रजः[1] ।
द्वादशाब्देन संप्राप्तं मया प्रथमभोजनम्[2] ॥६३॥
पात्रं यदि[3] समायाति तदान्नं तस्य दीयते ।
दिनमन्नविहीनं मे जायतामद्य चापि तत् ॥६४॥
पुण्योदयात्समायातो[4] मुनिर्मासोपवासभाक् ।
देवराजः स्थितो यत्र धर्मलाभाशिषं ददौ ॥६५॥
[5]दुर्वारा वारणेन्द्रा जितपवनजवा वाजिनः स्यन्दनौघा
लीलावत्यो युवत्यः प्रचलितचमरैर्भूषिता राज्यलक्ष्मीः ।
तुङ्गं [6]श्वेतातपत्रं चतुरुदधितटीसंकटा मेदिनीयं[7]
प्राप्यन्ते यत्प्रसादात् त्रिभुवनविजयी[8] सोस्तु वो धर्मलाभः ॥६६॥
अभ्रं विना[9] यथा वृष्टिः कल्पवृक्षो यथा मरौ ।
मम पुण्योदयाकृष्टो[10] यन्मुनिः समुपागतः[11] ॥६७॥
आसनादुत्थितः शीघ्रं विनयाच्छुद्धमानसः ।
पारणाय मुनीन्द्रस्य निजान्नं भावतो[12] ददौ ॥६८॥
प्रासुकान्नं समादाय गतोसौ मुनिपुङ्गवः ।
देवराजश्च संतोषी यावत्तिष्ठति सक्षुधः ॥६९॥
बन्धुवात्सल्यतोर्धान्नं शिवराजो ददौ मुदा[13] ।
निजान्नाद्ग्रासमेकं तु भ्रातुर्दत्ते लघुस्वसा ॥७०॥
न सक्रोधा न दत्तान्नं दामूनाम्नी च निन्दति ।
नामूनाम्नी च सारङ्गो रोषद् द्वावपि जल्पतः ॥७१॥
धार्मिकोभिनवो जातो देवराजो हि[14] बान्धवः ।
स्वयं क्षुधातुरः स्थित्वा भोजयत्यन्नमद्भुतम् ॥७२॥
ददा(दे)नामान्नभागं नौ किमस्माभिः[15] प्रयोजनम् ।
[16]एतत्कुद्रानरैस्ताभ्यां दुःक(दुष्क)र्म समुपार्जितम् ॥७३॥

पात्रदानप्रभावात्त्वं संजातो मालवेश्वरः ।
अर्धान्नदानात्तद्बन्धुर्जातो वररुचिः पुनः ॥७४॥
लघुभग्न्या स्वभावेन ग्रासो दत्तो निजान्नतः ।
तेन पुण्यप्रभावेन(ण) संजाता श्रेष्ठिनः स्नुषा ॥७५॥
दामूनाम्नी च मध्यस्था सा जाता कुम्भकारिका ।
चतुःपुत्रातिसुखिनी सोमानाम्नी सुविश्रुता ॥७६॥
नामू भग्न्यप्यहं सद्यस्तस्माद् दुःकर्मयोगतः ।
अहन्तु राक्षसो जातो मातङ्गी शूलिकास्ति सा ॥७७॥
वार्ता पूर्वभवस्येयं मुनिना कथिता मम ।
जाता जातस्मृतिः श्रुत्वास्माकं पूर्वभवस्थितिम् ॥७८॥
ज्ञातं शूलोदितं[1], वृत्तं नमस्कृतो[2] मुनीश्वरः[3] ।
हुङ्काराद् गत आकाशे तत्क्षणाच्चारणो मुनिः ॥७९॥
मया पूर्वभवस्नेहः[4] प्रोक्तो वररुचेर्निशि ।
तिसृणामपि भग्नीनां पूर्वजन्मकथोदिता ॥८०॥
भूपः प्राह कथं भद्र ! ममाग्रे [5]न निवेदितम् ।
वल्लभा भ्रातृभग्नी ते वयमेव न वल्लभाः ॥८१॥
हसित्वा राक्षसो ब्रूते राजंस्तन्नास्ति कारणम् ।
प्रायेण हीनजातीनां दुर्लभं भूपदर्शनम् ॥८२॥
ज्ञातश्च तव वृत्तान्तो भूपोवग्नात्र कारणम् ।
त्वया जातस्मृतिर्लब्धा कथं न प्राप्यते मया ॥८३॥
राक्षसः पुनरप्यूचे कारणं सत्यमेव हि ।
राज्यसौख्यनिमग्नानां पूर्वजन्मस्मृतिः[6] कथम्[7] ? ॥८४॥
भोजभूपो निजं पुण्यं श्रुत्वा पूर्वभवार्जितम् ।
धर्मानुरागतो ब्रूते सत्यमेतज्जिनोदितम् ॥८५॥
तुष्टचित्तनृपः प्रोचे वचनं राक्षसाग्रतः ।
त्वच्चिन्ता भक्तपानाद्या ममाधीनास्त्वतः परम् ॥८६॥
प्रणम्य परमं देवं श्रीयुगादिजिनेश्वरम् ।
संस्थाप्य राक्षसं तत्र समायातो नृपो गृहे ॥८७॥

---

1. B¹, B² and B³ ज्ञात्वा मूलोदितं । 2. P¹ °स्कृत्वो; B¹, B² and B³ °त्य । 3. B¹, B² and B³ °रम् । 4. B³ °स्नेहात् । 5. B³ नो । 6. B¹, B² and B³ भवपूर्वस्मृतिः । 7. B¹, B² and B³ कुतः ।

पालयमानो निजं राज्यं लालयमानो निजाः प्रजाः[1] ।
युगादिजिनसु(शु)श्रूषां चक्रे पूर्वार्पितश्रियम् ॥८८॥
दीनो द्वारपरो नित्यं सत्राकारविधानतः[2] ।
धर्मार्थकामवर्गाणां साधकोभून्नराधिपः ॥८९॥
वञ्चकद्यूतधूर्तानां लम्पटद्यूतभृन्नृणाम् ।
प्रवेशो नास्ति धारायां राजादेशोस्त्यमूदृशः ॥९०॥
कोपि नागरिकः पुर्यां धूर्तेनैकेन धूर्तितः ।
दृष्टो भटैश्च धूर्तोयं[3] समानीतो नृपान्तिके ॥९१॥
विटं(डं)ब्य बहुधा धूर्तः खरारोपाच्चतुःप(तुष्प)थे ।
भ्रामयित्वा ततो मुक्तस्तलारक्षैर्नृपाज्ञया ॥९२॥
मुक्तो धूर्तोवदल्लोके यदेनं भोजभूपतिम् ।
नोन्मूलयामि चेद्राज्यात्तन्मे नाम निरर्थकम् ॥९३॥
हसित्वा वदते क्ष्मापो यदि मुक्तोसि याहि रे ! ।
न कुर्याः कुत्र धूर्तत्वं प्रोक्त्वेति[4] स विसर्जितः ॥९४॥
कियत्स्वप्यधिपोहस्सु क्रीडार्थं वन आगमत् ।
विद्वज्जनैः समीपस्थैराप्तलोकैः[5] परीवृतः ॥९५॥
कियत्यपि दूरदेशे तावत्संमुखमागतम् ।
जलहारिस्त्रियां वृन्दं तासामेकेन भाषितम् ॥९६॥
विद्याचतुर्दशस्थानं रूपेण जितमन्मथम् ।
आयाति सखि ! पुंरत्नं पश्य दृष्टिं कृतार्थय ॥९७॥
हसित्वाथ वदन्त्येका गुणा अस्य निरर्थकाः ।
परकायाप्रवेशस्य यावद्विद्यां न सि(शि)क्षति ॥९८॥
नीरहर्त्र्या वचः[6] श्रुत्वा विलक्षोभून्नृपो हृदि ।
एतत्सत्यवचः प्रोक्तं नागरिक्या तया स्त्रिया ॥९९॥
परकायाप्रवेशस्य विद्यां शिक्षे(क्षे) यथा तथा ।
तदा मे सकलाः सर्वे गुणा नैःफ(नैष्फ)ल्यमन्यथा ॥१००॥
इति चिन्तातुरो भूपः पृच्छति स्म वनात् जनान्[7] ।
योगिनस्तापसादींश्च वैदेशिकनरानपि ॥१०१॥

धूर्तो विडम्बितो बाढं[1] भोजभूपेन यः पुरा ।
तेन विद्यार्थिनं भूपं श्रुत्वा मनसि चिन्तितम् ॥१०२॥
प्रतिज्ञापूरणे प्राप्तः प्रस्तावो मेऽपि वाञ्छितः ।
परकायाप्रवेशस्य विद्यां शिक्षामि कुत्रचित् ॥१०३॥
विमृश्येदं गतो धूर्तः क्वापि कास्मी(श्मी)रमण्डले ।
एकस्मिन् पर्वते दृष्टा कन्दरा सुमनोहरा ॥१०४॥
जलस्थानमनोज्ञा च वृक्षपा(खा)द्यफलान्विता ।
धूर्त्तश्चिन्तयति स्वान्ते कश्चिद्वसति पूरुषः[2] ॥१०५॥
स्थितो यामद्वयं यावत् स धूर्त्तः साहसाग्रणीः ।
योगीन्द्रो निर्गतस्तावन्मध्याह्नदिवसे ननु ॥१०६॥
योजयत्यञ्जलिं धूर्त्तो विनयानतमस्तकः[3] ।
योगिनं तं स्तवीति स्म[4] परमब्रह्मवद्यथा ॥१०७॥
अनालाप्य च योगीन्द्रो[5] जले स्नात्वा गतो गुफाम् ।
स धूर्तः केटके लग्नः प्रविष्टस्तस्य[6] कन्दराम् ॥१०८॥
बहुधा वारितस्तेन योगिना न निवर्तते ।
कियतीं च गतो भूमिं स्थितो योगी निजासने ॥१०९॥
विश्रामणां च सु(शु)श्रूषां कुरुते धूर्त्तपूरुषः[7] ।
भक्त्या देवास्तु तुष्यन्ति मानवानां च का कथा ॥११०॥
कियत्स्वपि दिनेष्वेष योगी च वचनं जगौ ।
कोसि त्वं केन कार्येण समायातोत्र सुन्दर ! ॥१११॥
वैदेशिकोहं स प्राह समायातस्तवान्तिके ।
अपूर्वां देहि विद्यां मे स्वामिन् ! मयि कृपां कुरु ॥११२॥
विद्याग्रहणवाञ्छा ते प्रोचे योगी यदास्ति ते ।
तदा मुद्रां गृहाण त्वं मच्छिष्यो भव नान्यथा ॥११३॥
धूर्त्तः शिष्योथ संजातः कार्यार्थी न करोति किम् ।
गुरुर्वदति कां विद्यां ददामि कथयात्र मे[8] ॥११४॥
धूर्त्तोवग्देहि मे विद्यां परकायाप्रवेशिनीम् ।
दत्तो मन्त्रो यथोक्तस्तु[9] होमजापविधिश्रितः[10] ॥११५॥

---

1. B3 बहुविडम्बितो धूर्तो । 2. B1, B2 and B3 पौरुषः । 3. B1 and B2 °नामत° । 4. B1, B2 and B3 स्तवीति योगिनोत्यन्तं । 5. B1, B2 and B3 अनालापितो° । 6. B1, B2 and B3 °ष्टस्तेन । 7. B1, B2 and B3 पौरुषः । 8. B1, B2 and B3 कथयस्व माम् । 9. B1, B2 and B3 दत्तं मन्त्रं यथोक्तं ते । 10. B1, B2 and B3 द्रुतम् ।

मन्त्रोसाधि गुरोरग्रे तदा तत्प्रत्ययाय तु ।
कृता सत्पुरुषे सेवा निःफ(निष्फ)ला न कथञ्चन ॥११६॥
ऊचे योगीश्वरोप्यस्मै किमिदं याचितं त्वया ।
न हि रूपपरावर्त्ता[1] स्वर्णसिद्ध्यादिकं न हि ॥११७॥
अमर्पादिव विद्येयं मया संसाधिता विभो[2] ! ।
गुरुः प्रोवाच[3] कस्यार्थे कथनीयं ममाग्रतः ॥११८॥
स ऊचे मालवेष्वस्ति धारायां भोजभूपतिः ।
तस्य राज्यं गृ(ग्र)हीष्यामि किं घनैः कटु[4]जल्पितैः ॥११९॥
योग्यूचेस्मिन्कृते कार्ये न हि ते भद्र ! सुन्दरम् ।
क्रीडन्नी रक्ष्यते राजा [5]यस्मात्प्रत्यक्षदेवता ॥१२०॥[6]
कृते प्रतिकृतं सोयक् यो न कुर्यात्स चाधमः ।
निरक्षात्र शुकेनापि वेश्यायाः किं कृतं यथा ॥१२१॥
[7]कृते प्रतिकृतं कुर्याद्धिंसिते[8] प्रतिहिंसितम्[9] ।
त्वया लुञ्चापितौ पक्षौ मया मुण्डापितं शिरः ॥१२२॥
एतत्कथां समाख्याय मुक्त्वालाप्य गुरुं पुनः ।
समायातः स धारायां बहुशिष्यपरीवृतः ॥१२३॥
नातिदूरे न चासन्ने शून्ये[10] देवगृहे स्थितः ।
साडम्बरः समागत्य लोकस्याश्चर्यदायकः[11] ॥१२४॥
जनोक्तिभिः श्रुतं राज्ञा सोपायनकरः स तु[12] ।
गत्वा नत्वा च योगीन्द्रमुपविष्टो नृपोग्रतः ॥१२५॥
भूपं पप्रच्छ सोप्येवं[13] कुशलं वर्तते गृहे ।
गजवाजिरथादीनां कुशलं पुत्रपौत्रकैः[14] ॥१२६॥
विनयादवनीपीठे न्यस्तशीर्षः स [15]भूपतिः ।
कुशलं सर्वतोस्माकं सिद्धिर्नाथ प्रसादतः[16] ॥१२७॥

विद्याग्रहणवाञ्छा मे विश्वासो योगिनां न हि ।
परं साहसिनः कार्यसिद्धिरेव भविष्यति ॥१४१॥ यथा–

साहसियां ववसाइयां धीरांइक मनांह ।
देव पञ्यो छै चिंतणै अररद्धु फलेस्यै तांह ॥१४२॥ पुनः–

साहसीयां लच्छी हवै न हु कायरपुरिसांह ।
कन्नह कुंडल आभरण कज्जल पुण नयणांह ॥१४३॥ पुनः–

दैवह तणैंकपाल साहसियां नउं हलु वहै ।
पेडि मपूंटा टालि पूंटा विणपीं पै नहीं ॥१४४॥

राज्यचिन्ता प्रकर्तव्या भवद्भिर्बुद्धिशालिभिः[1] ।
गृ(ग्र)हीष्यामि ह्यहं विद्यां नात्र कार्या विचारणा ॥१४५॥
अन्तःपुरीणां सर्वासां[2] राजवर्गीयभूस्पृशाम्[3] ।
संकेतं पृच्छेद्यस्तु स विज्ञेयः स्वभूपतिः ॥१४६॥
शिक्षां दत्वा चतुर्दश्यां कृष्णायां भौमवासरे ।
योग्यन्तिके गतो राजा गृहीत्वोपस्करं शुकम् ॥१४७॥[4]
मुक्त्वा परिच्छदं रात्रौ राजा योगी शुकोपि च ।
गतास्ते गहरोद्याने चतुर्थोन्यो जनो न हि ॥१४८॥
मन्त्रिवर्गेण प्रच्छन्ना रक्षिता[5] रक्षका जनाः ।
स्वयं संनद्धबद्धास्ते स्थिताश्च[6] वनबाह्यतः ॥१४९॥
योगिना भोजभूपस्य दत्तो मन्त्रो[7] यथाविधि[8] ।
होमजापादिकं[9] सर्वं गुरुणोक्तं तथा कृतम् ॥१५०॥
योगिना च स्वहस्तेन हत्वा निर्जीविते कृते ।
शुकदेहे नृपस्योचे[10] संचारयस्व जीवितम् ॥१५१॥
साधका बहवो विद्याः प्रत्ययेन विना न हि[11] ।
योगिना कथितं कार्यं भूपेनापि तथा कृतम् ॥१५२॥

तस्यादेशान्निजो जीवः[1] शुकदेहे नियोजितः[2] ।
भूपदेहे द्रुतं जीवो योगिनापि नियोजितः[3] ॥१५३॥
शुकोपि भयभीतात्मा गतोड्डीय वने क्वचित् ।
हत हतेति राज्ञोक्तां श्रुत्वा वाचं[4] भटा ययौ(युः) ॥१५४॥
खड्गव्यग्रकराः सर्वेप्यागता नृपसन्निधौ ।
किमेतद्भो विभो ! कं कं हन्मस्तत्त्वं समादिश ॥१५५॥
उच्चस्वरं[5] नृपः प्रोचे योगी सोयं मया हतः ।
द्रोहकर्तुर्न[6] विश्वासो गर्तायां क्षिप्यतामयम् ॥१५६॥
द्रोही शुकोपि पापिष्ठो गतो न ज्ञायते क्वचित् ।
प्रातस्तस्य प्रतीकारं करिष्यामीति निश्चितम् ॥१५७॥
[7]पुरोहितादिसामन्ता[8] मन्त्रिवर्गास्तु सेवकाः ।
वने गत्वानमन् भूपं सर्वे ते राजवर्गिणः ॥१५८॥
न ज्ञायते गुरुः कः स्यात् को वा[9] मन्त्र्यङ्गरक्षकः ।
अपरोपि जनस्तेन[10] राज्ञा[11] न ज्ञायते क्वचित्[12] ॥१५९॥
सर्वैर्विमृश्य भूनाथः समानीतो गृहाङ्गणे ।
गतः सोन्तःपुरद्वारे मन्त्रिपौरोहितावृतः ॥१६०॥
अन्तःपुरीणां नो वेत्ति[13] नामस्थानादिकं पुनः ।
कांचित्सांकेतिकीं वार्तां शयनीयं च वेत्ति न[14] ॥१६१॥
सर्वोप्यन्तःपुरीवर्गः स्थितो वररुचेर्गृहे ।
दासीजनः सशृङ्गारः स्थापितस्तत्र मन्दिरे ॥१६२॥
स्वदास्यन्तःपुरीभेदं न जानाति स भूपतिः ।
उपविष्टः सभास्थाने गमयामास वासरान् ॥१६३॥
यो नो वेत्ति परं स्वकीयमथवा नो सद्गुणं निर्गुणं
नो वा पात्रकुपात्रभेदरचनां नो दानमानादिकम्[15] ।

---

1. B^1, B^2 and B^3 जीवं । 2. B^1, B^2 and B^3 °तम् । 3. B^1, B^2 and B^3 तथा कृतम् । 4. B^1 and B^2 वाचां । 5. B^1 and B^2 °स्वरे; B^3 °स्वर° । 6. B^1, B^2 and B^3 द्रोहिण(णो)स्य न । 7. B^2 पौ° । 8. B^3 °न्त° । 9. B^1, B^2 and B^3 को वाप्यत्र । 10. B^1, B^2 and B^3 न ज्ञायते कथं को वा । 11. P^1, B^1, B^2 and B^3 राजा । 12. B^1, B^2 and B^3 विस्मितमानसः । 13. B^1, B^2 and B^3 °पुरीं न जानाति । 14. B^1 न वेत्ति सः । 15. B^1 and B^2 °माने प्रभुः ।

यस्यान्तःपुरमध्यगो न हि वहेद्राज्ञीकुदास्यन्तरं
सोयं कृत्रिमभोजभूपतिरहो मुष्णाति राज्यश्रियम् ॥१६४॥

इति श्रीधर्मघोषगच्छे वादीन्द्रश्रीधर्मसूरिसंताने[1] श्रीमहीतिलकसूरिशिष्य-पाठकश्रीराजवल्लभकृते श्रीभोजचरित्रे [2]पूर्वभववर्णनपरकाया-प्रवेशविद्यासिद्धिनामा[3] तृतीयः प्रस्तावः ॥३॥



[अथ चतुर्थः प्रस्तावः]

[1]नृपादेशेन्यदा भिल्लाः शुकानानीय ते[2] ददुः ।
द्रामं द्रामं च तन्मूल्यं[3] दत्त्वा व्यापादयन्नृपः ॥१॥

शुकोस्ति भोजजीवो यः प्राणरक्षणहेतवे ।
चन्द्रावती[4]पुरोद्याने सफले दूरगः स्थितः ॥२॥

द्रव्यलोभवशाद्भिल्ला वने तत्र समागताः ।
अन्तर्बहुशुकानां च बद्धः सोपि शुकाग्रणीः ॥३॥

क्षिप्त्वा पञ्जरके सर्वाश्चलिताः[5] स्वपुरं प्रति ।
तावच्छुकेन ते पृष्टा भिल्ला मधुरया गिरा ॥४॥

एते शुकाः कथं बद्धाः कारणं कथ्यतां मम[6] ।
न भक्षयति कोप्येतान् अभक्षाः सर्वदाप्यमी ॥५॥

धारायां भोजभूपोस्ति व्याधोवक् श्रूयतां शुक ।
कीराननाय्य चानाय्य व्यापदयति सर्वदा[7] ॥६॥

ज्ञातः सोर्थो मया[8] व्याधा ! भवतां किं प्रदीयते ।
द्रामं द्रामं प्रतिशुकं व्याधैरुक्तं प्रदीयते[9] ॥७॥

शिक्षां कुरुत तन्मे भोः ! सुन्दरं स्याद्यथोभयोः[10] ।
जीवन्त्येतेपि हि शुका[11] लाभोपि भवतां घनः[12] ॥८॥

तद्वाचाहुरिदं व्याधास्तथा रु(कु)रु यथोचितम् ।
पुनः प्राहुर्गमिष्यामः कस्य पार्श्वे किमद्भुतम् ॥९॥

शुक ऊचे समासन्ना पुरी चन्द्रावती वरा ।
चन्द्रसेनोस्ति भूपालो गुणा(णि)नामग्रणीः किल[13] ॥१०॥

आवाभ्यां गम्यते तत्र पश्य मे[14] वाक्यचातुरीम् ।
एवं श्रुत्वा सभां नीतः पुलिन्द्रेण शुको वरः ॥११॥

---

1. B[1] begins with श्रीमद्गुरुभ्यो नमः । 2. B[1], B[2] and B[3] तान् । 3. B[1] and B[3] °न्मौल्यं । 4. B[1], B[2] and B[3] °वत्यां । 5. B[1], B[2] and B[3] सर्वे चलि° । 6. B[1], B[2] and B[3] कथयस्व माम् । 7. B[1] and B[2] प्रत्यहम् । 8. B[1], B[2] and B[3] ज्ञातस्तदर्थो भोः । 9. B[3] ददाति व्याध उच्यते । 10. B[1], B[2] and B[3] तच्छिक्षां कुरु मे व्याध उभयोरपि सुन्दरम् । 11. B[1], B[2] and B[3] एते शुकास्तु जीवन्ति । 12. B[1], B[2] and B[3] तव वाञ्छितः । 13. B[1] and B[2] °णीर्नृपः; B[3] °णीयसा । 14. B[1] पश्यतां ।

दृष्टश्चन्द्रावतीभूपः[1] प्रत्यक्ष इव वासवः ।
पुलिन्द्रस्य करासीनः शुक आशीर्वचो ददौ ॥१२॥ यथा–

स शिवः पातु वो नित्यं गौरी यस्याङ्गसङ्गता ।
आरूढा हेमवल्लीव राजते राजते[2] तरौ ॥१३॥

शुकस्याशीर्वचः[3] श्रुत्वा चन्द्रसेनो नरेश्वरः ।
सविस्मयोऽथ[4] संजातः सभा सर्वा चमत्कृता ॥१४॥

तिर्यङ्ङरण्यवासी च पुलिन्द्रैः सह संगमात् ।
वाणीं गीर्वाणजां[5] ब्रूते विस्मयाद्वदति स्म राट्[6] ॥१५॥

शुकराज ! पुनर्वाचं श्रावय स्वां सुधामयीम् ।
अहं तु श्रोतुमिच्छामि सभा सर्वापि वाञ्छति ॥१६॥ यथा[7]–

सङ्ग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम् ।
कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥१७॥

इति कीरस्तुतिं श्रुत्वा हर्षपूरितमानसः ।
भूपोऽप्युवाच भिल्लस्य कीरमूल्यं समादिश ॥१८॥

भिल्लोऽवग्देव ! निर्मूल्यमूल्ये किं कथ्यते[8] शुके ।
पुनर्वदति भूपालः शुकवाक्यप्रमाणताम्[9] ॥१९॥

[10]भिल्लोऽवोचदसौ देव ! भवतां ढौकितः शुकः ।
दीनारदशकं दत्तं[11] पुलिन्द्राणामिदं धनम् ॥२०॥

राज्ञा तस्य शुकस्यार्थे कारितं स्वर्णपञ्जरम् ।
रक्ष्यते च स्वपार्श्वस्थो न दूरीक्रियते क्वचित् ॥२१॥

विद्वज्जनाधिको गोष्ठ्यां मन्त्रे मन्त्रीश्वराधिकः ।
कुरुते भूभुजा सार्धं शुकराजो यथोचितम्[12] ॥२२॥

व्यासावतारकीरेण[1] मोहितो मानसे नृपः ।
देशग्रामपुरोद्यानराज्यचिन्ता समुज्झिता[2] ॥२३॥
कियद्भिस्तु दिनै[3] राजा विज्ञप्तो मन्त्रिपुङ्गवैः ।
वनक्रीडाकृते स्वामिन् ! गम्यते बहुभिर्दिनैः ॥२४॥
अन्तःपुरीपञ्चशतीमध्येप्यस्ति शशिप्रभा ।
अन्यासां न हि विश्वासः पट्टराज्ञ्याः शुकोर्पितः ॥२५॥
वनभूमिं गतो राजा पश्चात्सर्वः पुरीजनः[4] ।
मिलित्वा पट्टराज्ञ्यग्रे विज्ञप्तिं कृतवानिमाम्[5] ॥२६॥
अस्मद्भाग्या[6]त्समायातः शुको मातस्तवान्तिके ।
कलां सामुद्रिकीं वेत्ति शुको देवि ! स वीक्ष्यते ॥२७॥
पट्टराज्ञ्युपदेशेन गतो लोकः शुकान्तिके[7] ।
शुकेनालापितः सर्वः सुधामधुरया गिरा ॥२८॥
येन येन च[8] यत्पृष्टं तस्य तस्योत्तरं ददौ ।
वेष्टयित्वा स्थितो लोको मक्षिका मधुवृन्दवत्[9] ॥२९॥
[10]विहितोदारशृङ्गारा सखीजनसमन्विता ।
स्वर्णरूप[11]मयैष्टङ्कैः स्थालीं हस्ते प्रपूर्य च[12] ॥३०॥
[13]गत्या मन्ध(न्थ)रगामिन्या सखीस्कन्धावलम्बिता ।
शुकान्तिके समायाता पट्टराज्ञी शशिप्रभा ॥३१॥
निजगुणगणसौभाग्यं परगुणपरिवर्णनेन कथयन्ति ।
सन्तो विचित्रचरिता नम्रतया चोन्नतिं यान्ति ॥३२॥[14]
शुकोवोचद्यथा नाम ज्ञातव्यं तादृशं फलम् ।
यथा तारागणे चन्द्रस्तथा राज्ञी शशिप्रभा ॥३३॥[15]

---

1. B^1, B^2 and B^3 शुको व्यासावतारस्तु । 2. B^1, B^2 and B^3 चिन्तादिरुज्झिता । 3. B^1, B^2 and B^3 कियत्यपि दिने । 4. B^1, B^2 and B^3 पश्चादन्तःपुरी° । 5. B^1, B^2 and B^3 विज्ञप्तं कीरदर्शनम् । 6. B^1, B^2 and B^3 °म्यस्त° । 7. B^1, B^2 and B^3 गतास्ते शुकसंनिधौ । 8. B^1, B^2 and B^3 येनापि । 9. B^1, B^2 and B^3 °बिन्दुवत् । 10. B^1 and B^2 कृतसत्सार° । 11. B^1, B^2 and B^3 रूप्य° । 12. B^1, B^2 and B^3 स्थालिका पूरिता करे । 13. B^3 गति° । 14. instead of this verse B^1, B^2 and B^3 have the following verse:—शुकाग्रे स्थालिका मुक्ता भूमौ संन्यस्तमस्तका । शुकेनालापिता चाग्रे स्थिता सा योजिताञ्जलिः ॥ 15. After this verse B^1, B^2 and B^3 add भेटा मुक्ता ममाग्रे या तद्गरिम तवैव हि । विचित्रा गतिः सन्तानां नम्रत्वे यान्ति चोन्नतिम् ॥

राज्ञ्याश्च मत्करं कीर ! पश्यतामेकचित्ततः ।
लक्षणालक्षणान्यत्र कथनीयानि मेऽग्रतः ॥३४॥

शुकराजः करं दृष्ट्वा राज्ञीं प्रत्येवमुक्तवान्[1] ।
किं ब्रूमस्त्वत्करे स्त्रीणां लक्षणान्युत्तमान्यथो[2] ॥३५॥ यथा—

प्रासादश्चक्रपद्मौ वा[3] पूर्णकुम्भश्च तोरणम् ।
यस्याः करतले रेखा पट्टराज्ञी समादिशेत् ॥३६॥

यस्याः करतले रेखा मयूरश्छत्रचामरे[4] ।
राजपत्नीत्वमाप्नोति पुत्रैश्च सह वर्धते ॥३७॥

उत्तमैर्लक्षणैरेवं तत्प्रभावेण मान्यता ।
अत्यर्थं श्लाघनीया स्याद्राज्ञी भूपस्य मन्दिरे ॥३८॥

प्रशंसिता गता राज्ञी वेषमन्यं विधाय च[5] ।
समायाता शुकोपान्ते पृच्छति स्म पुनः शुकम्[6] ॥३९॥

यत्किंचिल्लक्षणं मेऽङ्गे तच्छ्रावय शुकेश्वर ! ।
लक्षणं कररेखास्थं यत्किंचित्तच्छ्रुतं मया ॥४०॥

शुक आह—यस्या आकुञ्चिताः केशा मुखं च परिवर्तुलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्ता सा नारी सुखमेधते ॥४१॥

अल्पस्वेदोल्परोमाणि निद्राल्पाल्पं च भोजनम् ।
नेत्रगात्रसुशोभाया(यं)[7] स्त्रीणां लक्षणमुत्तमम् ॥४२॥

स्तुतिं श्रुत्वा[8] गतावासे परावर्तितवेषभृत्[9] ।
पप्रच्छ पुनरागत्य शुकराजस्य सन्निधौ ॥४३॥

पण्डितस्त्वत्समो[10] नास्ति किं मुधा बहुजल्पितैः ।
देशे देशे त्वया पत्रिन् ! दृष्टा राज्योऽप्यनेकशः ॥४४॥

मन्यमाना गुणैः क्वापि रूपलावण्यगर्जिनी ।
मत्र कुत्रापि दृष्टास्ति[11] शुकराज ! तदुच्यताम् ॥४५॥

सगर्ववचनं श्रुत्वा शुकोभून्मत्स[1]राकुलः ।
विमृश्य हृदये किंचित् तस्या अग्रे शुकोब्रवीत् ॥४६॥
त्वत्समाना गुणैर्दृष्टा नार्येका वर्तते क्वचित् ।
क्षणं स्थित्वाह[2] हुं ज्ञातं कथयामि तवाग्रतः ॥४७॥
अस्त्यत्र दक्षिणे देशे पुरं काञ्चननामकम् ।
उग्रसेनो नृपस्तस्य[3] राज्ञी त्रैलोक्यसुन्दरी ॥४८॥
पुष्फा(ष्पा)वती सुता तस्या[4] गुणलावण्यमन्दिरम् ।
भण्डसेनास्ति तद्दासी त्वत्समाना त्वमेव हि ॥४९॥
एतद्वचनमाकर्ण्य स्मिताः सर्वाः सपत्निकाः ।
लज्जिता पट्टराज्ञी सा मन्ये वज्रेण ताडिता ॥५०॥
गता शोकगृहे राज्ञी पतिता साप्यधोमुखी ।
सर्वं जातं विषप्रायं हास्यगीतासनादिकम् ॥५१॥
चन्दसेनो नृपस्तावत् समायातः स्वमन्दिरे ।
आभोषार्थे तदा दासी समागाद्भूपसंमुखम्[5] ॥५२॥
स्वामिनी तव किं कुत्र गतेत्याह महीपतिः[6] ।
क्षणं स्थित्वावदद्दासी स्वामिन्य(नी)शोकमन्दिरे ॥५३॥
किमर्थं कस्यचिद्वार्थे[7] केन राज्ञ्यस्ति कोपिता[8] ।
शीघ्रं कथय रे दासि ! विरुद्धं भावि तेन्यथा ॥५४॥
भयेन कम्पमाना सा यावन्मौनेन संस्थिता ।
हता भूपेन बाढं सा शुकोक्तं सावदत्तदा[9] ॥५५॥
कीरोक्तिश्रवणाद्भूपः शान्तकोपो बभूव च ।
शयनीये स्थितो गत्वा समाहूयाथ तत्सखी[10]॥५६॥
गृहीत्वा स्वसमीपे तां राज्ञी प्रशमहेतवे ।
आह त्वं वद किं रुष्टा तिर्यञ्चो ज्ञानवर्जिताः ॥५७॥
तव स्नेहवशाद्भूपो दुःखी संतिष्ठते[11] बहिः ।
सख्यः सर्वा निराहाराः शुकोभूच्छोकसंकुलः ॥५८॥

---

1. B¹, B² and B³ °च्छ° । 2. B¹, B² and B³ °ह्वास्मि । 3. B¹, B² and B³ °स्तस्य । 4. B¹, B² and B³ तस्य । 5. B¹, B² and B³ संमुखा । 6. B¹, B² and B³ गता पृच्छति भूपतिः । 7. B¹, B² and B³ किमर्थं केन कस्यार्थे । 8. B¹, B² and B³ राज्ञी विरोधिता । 9. B¹, B² and B³ हतदुक्ते सा शुके क्रमेः (B² and B³ °मे) । 10. B¹, B² and B³ गत्वाप्याहूता तत्सखी गृहात् । 11. B¹, B² and B³ दुःखितो(तः सन्)तिष्ठते ।

उत्तिष्ठ क्षालय स्वास्यं भूप[1] कारय भोजनम् ।
विसर्जय सखीवर्गमस्माकं कुरु भोजनम्[2] ॥५९॥
नृ[3]पोक्तयैवंप्रकारेण सखीभिः प्रतिबोधिता ।
राज्ञी कदाग्रहं स्वीयं न मुञ्चति कथंचन ॥६०॥[4]
भूपेनालोचितं चित्ते शुकेनेयं वदिष्यति ।
शुकेमां बोधय त्वं भोस्त्वयैवेयं प्रकोपिता ॥६१॥
नृपादेशाद्गतः कीरो यत्र राज्ञी शशिप्रभा ।
विनयी शीतलालापान्मधुरान् वदति स्म सः ॥६२॥
मयाज्ञानवशात्तुभ्यं यदुक्तं दुर्वचः किल[5] ।
धर्तुं तद्धृदये स्वीये[6] न हि युक्तं विवेकिनि ॥६३॥
सुशीलाया विनीतायाः सज्ञानायाः शुभश्रियः ।
निर्यद्रूपे मय्यसारे तव रोषो न युज्यते ॥६४॥
बहुधा बोधिता राज्ञी चित्ते कोपं न[7] मुञ्चति ।
शुको वदति हे देवि ! त्यजस्वेदं कदाग्रहम् ॥६५॥
कुग्रहात्प्राणसंदेहः कुग्रहात्स्नेहनाशनम् ।
कुग्रहान्न जने श्लाघा कुग्रहान्नरकातिथिः ॥६६॥

[1]यथा कुग्रहतो राज्ञी दुःखं प्राप्ता मनोरमा ।
तां कथां शृणु हे देवि ! कथयामि तवाग्रतः ॥६७॥
श्रूयतां पूर्वदेशेस्ति पुर्य्ययोद्ध्याभिधानतः ।
जन्मेजयोस्ति भूनाथ आसमुद्रान्तभूविभुः[2] ॥६८॥
मान्यास्त्यन्तःपुरी तस्य पट्टराज्ञी मनोरमा ।
तया समं सुखं भुङ्क्ते गते काले कियत्यपि ॥६६॥
राज्यं निष्कण्टकं भुङ्क्ते न हि कोप्यस्त्युपद्रवः[3] ।
आस्थानस्थो नृपोन्येद्युरिन्द्रदूतः समागतः ॥७०॥
प्रणम्य तं महीनाथं दूतो वचनमब्रवीत् ।
इन्द्रेण प्रेषितो देव ! श्रूयतां मद्वचस्त्वया ॥७१॥
अस्ति दक्षिणपाथोधौ[4] त्रिकूटाचलसंनिधौ ।
द्वीपोस्ति भीषणो नाम लङ्कातो विषमक्षितौ[5] ॥७२॥
कवचा राक्षसास्तत्र दानपुण्यस्य विघ्नदाः ।
तुष्यन्ति देवताभ्यस्ते प्रतीकारं विना[6] न हि ॥७३॥
उपद्रवस्तु देवानां तेभ्यः संजायते सदा ।
देवेभ्यो न मृतिस्तेषां राक्षसानां कथंचन ॥७४॥
मनुष्या भक्षमस्माकं देवेभ्यस्तु [7]मृतिर्न हि ।
राक्षसास्तेन गर्वेण न मन्यन्ते भयं क्वचित् ॥७५॥
मनुष्यैर्मारणीयास्ते तेनाहं प्रेषितोधुना ।
त्वत्समो भूपतिर्नास्ति पराक्रम्युपकारकृत्[8] ॥७६॥
अस्मदीयस्वामिवाचं[9] प्रमाणीकुरुषे यदि ।
तदा त्वं निजसैन्येन प्रयाणं कुरु मत्समम् ॥७७॥
इन्द्रोप्येष्यति तत्रैव वैमानिकसमन्वितः ।
गोदावर्यस्ति संकेतमुभयोः सैन्ययोरपि ॥७८॥
जन्मेजयस्य भूपस्य ससैन्यस्य सुरप्रभोः ।
परस्परं च संजातः[10] संकेतस्थानसंगमः[11] ॥७६॥

---

1. B^2 and B^3 add कदा(B^2कु) ग्रहोपरिग्रहा before this verse। 2. B^1, B^2 and B^3 भूपतिः। 3. B^2 and B^3 °द्रवो। 4. B^1, B^2 and B^3 °समुद्रः। 5. B^1, B^2 and B^3 लङ्काविषमभूमिषु। 6. B^1, B^2 and B^3 विना तेन प्रतीकारे तुष्यन्ति देवता न हि। 7. B^1 वयाहं वान्मृति-र्न हि। 8. B^1, B^2 and B^3 उ(द्धु)पकारी पराक्रमी। 9. B^3 अस्माकं स्वामिनो वाचां। 10. B^1, B^2 and B^3 °तं। 11. B^1, B^2 and B^3 °मन्।

ऐरावते समारूढ इन्द्र इन्द्रपुरीपतिः[1] ।
जन्मेजयः समुत्तीर्णो मेले सति निजद्विपात् ॥८०॥
समालिङ्गितवानिन्द्रो दृष्ट्वा जन्मेजयं नृपम्[2] ।
संजाता परमा प्रीतिरुभयोरपि ही तयोः[3] ॥८१॥
इन्द्रदत्तविमानाधिरूढः स नृपपुङ्गवः ।
सेनान्यस्तस्य चारूढाश्चलिता राक्षसान् प्रति ॥८२॥
कौतुकाच्चलितश्चेन्द्रो वैमानिकसमन्वितः ।
दूतेन ज्ञापितं वृत्तं रक्षसां भूभुजा(जे)क्षणात्[4] ॥८३॥
संजाता राक्षसाः सर्वे संनद्धाः सपरिच्छदाः ।
अग्रमानं नृपं ज्ञात्वा संग्रामाय स्थिताः पुरः ॥८४॥
समागत्यास्य सैन्येन विमानैर्वेष्टितं पुरम् ।
नृपादेशाद्भटैर्युद्धं प्रारब्धं राक्षसैः समम् ॥८५॥
दुर्गस्था दुर्गपाः सर्वे बहिःस्था[5] नृपसैनिकाः ।
जातं परस्परं युद्धं दारुणं भीषणं महत् ॥८६॥
सायकैश्छि(च्छ)न्नमाकाशं[6] खड्गखाट्कारकैर्दिशः ।
जीनशालास्तु भिद्यन्ते [7]बाणैर्भल्लकभीषणैः ॥८७॥
श्रूयन्ते नैव वाद्यानि[8] सुभटाक्रोशकारतः ।
ईदृशे तत्र संग्रामे देवानामपि कौतुकम्[9] ॥८८॥
यथोन्मत्तकरीन्द्रेणोन्मूल्यन्ते भूमिपादपाः ।
तथैवोन्मूलयामास भूपालो रक्षसां पुरीम् ॥८९॥
भग्नं दुर्गं समालोक्य कवचा नाम राक्षसाः[10] ।
मुक्तशस्त्रकराः सर्वे पतिता भूपपादयोः ॥९०॥
सर्वे ते चौरवंश्या आनीता इन्द्रसंनिधौ ।
एतेऽपराधिनो ही वः कुरु दण्डं यथोचितम् ॥९१॥
इन्द्रोपदेशतस्तेऽपि कृताः पातालवासिनः ।
पुरस्तस्य[11] समग्रा सा लुण्ठिता ध्वंसिता पुनः ॥९२॥

इन्द्रेण भूप आनीतः[1] सहर्षेणामरावतीम् ।
महोत्सवेन[2] चागत्योपविष्ट स्थानमण्डपे ॥९३॥
निजासने स्वयं भूपः स्थापितो मध्यतो गृहम् ।
गीतनृत्यकथावार्तालापैः[3] प्रीणितवान् भृशम् ॥९४॥
इन्द्रोवोचन्नृपस्याग्रे[4] भूप ! मामनृणीकुरु ।
मत्पार्श्वतो वृणु वरं यत्किंचिद्रोचते तव ॥९५॥
त्वत्प्रसादान्नृपः प्राह सर्वमप्यस्ति मद्गृहे[5] ।
आसमुद्रान्तभूपोस्मि कल्याणं वर्तते गृहे ॥९६॥
एवं श्रुत्वा हरिः प्राह[6] न मोघं देवदर्शनम् ।
ज्ञात्वैवं भूपतिः प्राह[7] यथास्तु तव भाषितम् ॥९७॥
इन्द्रेणोक्तं तदा ब्रूहि यदस्ति तव मानसे ।
राजोचे देहि देवा(वां)शं वस्त्रयुग्मं च कुण्डलम् ॥९८॥
महिष्यग्रे गतश्चेन्द्रो बभाषे स्वप्रियां प्रति ।
देहि कुण्डलवस्त्रे मे देयं जन्मेजयाय मे ॥९९॥
तयोत्तार्य स्वदेहात्तत्प्रदत्तं स्वपतेः करे ।
कथयामास चेन्द्राणी देवराजाग्रतस्ततः ॥१००॥
यथाहं तव नारी हि वियुक्ता कुण्डलांशुकैः[8] ।
वियोगो भवतात्तस्मै प्रियापरिजनैः समम् ॥१०१॥
इन्द्रो वदति हा धिग्-धिग् मुधा[9] शापो न दीयते ।
दत्तो मयान्यथा न स्याद्भूपोच्छेदोङ्गनारिपुः[10] ॥१०२॥
हरिरेवं जगौ राज्ञे दत्त्वा सत्कुण्डलांशुके ।
मत्पार्श्वे त्वत्समाभीष्टा नित्यं तिष्ठन्ति तद्वरम् ॥१०३॥
एतच्छ्रुत्वावदद्भूप[11] इन्द्रोवग्दर्शनं पुनः ।
समायातो गृहे राजा प्रविष्टः पुरमुत्सवैः[12] ॥१०४॥
जितकाशी नृपोभ्येत्योपविष्टस्तु क्षणं सभाम् ।
विसर्ज्य मन्त्रिसामन्तान्[13] गतोन्तःपुर ईशिता ॥१०५॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 इन्द्रेणानीयते राजा । 2. B^1 and B^2 °स्त° । 3. B^1 and B^2 °वार्तप्रीत्या; B^3 °वार्तप्रीताः । 4. B^1, B^2 and B^3 °नृपाग्रेण । 5. B^1, B^2 and B^3 सर्वोऽस्ति मम मन्दिरे । 6. B^1, B^2 and B^3 हरिर्ब्रूते । 7. B^1, B^2 and B^3 प्रोचे । 8. B^1, B^2 and B^3 तेन कामिन्या वियुक्ता कुण्डलांशुकात् । 9. B^1, B^2 and B^3 वदते वासवो हा धिक् मुधा । 10. B^1, B^2 and B^3 दत्तोऽपि नान्यथा स्वामिन्! भूपालाः स्त्रियो रिपुः । 11. B^1 ममद्भूपः । 12. B^1 °स्तवे । 13. B^1, B^2 and B^3 विसर्जयित्वा मा° ।

एवं मन्त्रिभिरालापं कृत्वालापितवान् स्त्रियः ।
स्नेहेन प्रेरितो भूपः पट्टराज्ञीगृहं[1] गतः ॥१०६॥
उत्थाय[2] च नमस्कारं कुरुते स्म[3] मनोरमा ।
शुद्धशीलाः स्त्रियो यास्तु तासां स्याद्देवता पतिः ॥१०७॥
पर्यङ्के तूपविष्टो[4] राज्ञाऽप्यग्रेऽस्य संस्थिता ।
अवादीन्मत्कृते किं किं समानीतं सुरालयात्[6] ॥१०८॥
निष्कास्य कुण्डले राजा[7] देवदूष्यं च तद्ददौ[8] ।
हर्षेण प्रावृता ताभ्यां[9] जाता देवाङ्गनोपमा ॥१०९॥
सत्कृतस्तु तया भूपः सभायां प्रातरागतः ।
मन्त्रिसामन्तसीमालैः सर्वैरपि नतो नृपः ॥११०॥
राज्यूचे स्नेहतः पत्न्याः[10] किं किं नानयति प्रियः[11] ।
एवमालोच्य गर्वेण सपत्न्यन्तिकमागता ॥१११॥
नमस्कृता च सर्वाभिः(भी) रूपाद्विस्मयकारिणी ।
सूर्य[12]मण्डल सत्तेजा दुरालोका[13] बभूव सा ॥११२॥
नेपथ्यदर्शनायात्मरूपस्यालोकनाय च ।
आमन्त्रिताः स्त्रियः सर्वा याः स्युः प्राघूर्णिका अपि ॥११३॥
चतुर्धाशनपानादि भोजयन्त्यात्मनोऽग्रतः ।
कुण्डलांशुकतेजस्ता दुरालोका गभस्तिवत् ॥११४॥
स्त्रियो यथा यथा तस्याः समालोकनविह्वलाः ।
तथा तथा च[14] सा राज्ञी जाता हास्यपरायणा[15] ॥११५॥
प्राप्ते कुण्डले देवि ! न ते तापयतस्तु नः ।
भवद्दृष्टिदु(र्दु)रालोका सर्वतं नेति कौतुकम् ॥११६॥
वस्त्रताम्बूलदानेन प्रेषितास्ताः स्त्रियो गृहे ।
राजा राज्यश्रियं भुङ्क्ते सुखग्राही तया सह[16] ॥११७॥
एकस्मिन् दिवसे राजा राज्ञी दृष्टा सुदुःखिता ।
पप्रच्छ तव को व्याधिराधिर्वा बाधतेऽपि कः ॥११८॥

प्रच्छनीया न हि स्वामिन्नसौ वार्ता[1] कथंचन ।
का सा वार्तास्ति हे देवि ! गोपनीया ममापि हि ॥११९॥

महाग्रहेण साप्यूचे दोहदो वर्तते मम ।
मनुष्यरुधिरापूर्णवाप्यां स्नानं विधीयते ॥१२०॥

भूपोवग्नात्मसदृशं त्वयात्रादि वचः[2] प्रिये ।
मारिवाक् श्रूयते नैव मया कुत्रापि मत्पुरे[3] ॥१२१॥

लालिता या मया नित्यं प्रजा सा मेस्ति पुत्रवत्[4] ।
निर्दोषा सा कथं भद्रे घातनीया मया किल ॥१२२॥

दोहदस्तादृशः कार्यो यादृक्चक्रे[5] सुनन्दया ।
गजमारुह्य जीवानामभयं दत्तवत्यथो ॥१२३॥

प्रोचे मनोरमा राज्ञी दोहदः पूर्यते यदा ।
तदान्नं भुज्यते स्वामिन्नान्यथा दर्शनैर्नवैः[6] ॥१२४॥

भूपः कदाग्रहं ज्ञात्वा राजकार्ये प्रवर्त्तितः ।
लङ्घनं पट्टराज्ञी सा चकार स्वल्पबुद्धितः ॥१२५॥

अमात्यमन्त्रिवर्गेण श्रुता वार्ता कियद्दिनैः ।
मिलित्वा ते समायाता[7] विज्ञप्तो नृपपुङ्गवः ॥१२६॥

शृणु स्वामिन् ! स्त्रियो राजा मूर्खो बालः कदाग्रही ।
एते बुद्धिप्रपञ्चेन ग्रहीतव्या हि नान्यथा ॥१२७॥

पट्टराज्ञीकृते सर्वो लङ्घतेन्तःपुरीजनः ।
दासा दास्योसुखं प्राप्ताः संतापो भवतोप्यभूत् ॥१२८॥

ततो[8] बुद्धिप्रपञ्चेन पूरणीयस्तु दोहदः[9] ।
केनोपायेन भूपोपि पूरणीयोप्यचिन्तयत् ॥१२९॥

मन्त्र्यूचे कार्यतां वापी ह्यलक्तकपयोभृता[10] ।
तदा श्रेष्ठ उपायोयं चिन्तितो भूपतिर्जगौ ॥१३०॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 पृच्छनीया न ते स्वामिन्निमां वार्तां । 2. B^1, B^2 and B^3 वचनं भाषितम् । 3. B^1, B^2 and B^3 क्रोडन्त्रिमारिवाचोयं नान्यत्र श्रूयते क्वचित् । 4. B^1, B^2 and B^3 नित्यमेषा मे पुत्रवत्प्रजा । 5. B^1, B^2 and B^3 यादृगन्ते । 6. B^1 दर्शनेन वै । 7. B^1, B^2 and B^3 °त्वास्ते समागत्य । 8. B^1, B^2 and B^3 तदा । 9. B^1, B^2 and B^3 पूर्यते दोहदो न किम् । 10. B^1, B^2 and B^3 ह्यलक्तोदकपूर्यते (पूरिता) ।

कृता वापी नृपादेशादलक्तकजलैर्भृता[1] ।
विज्ञप्ता पट्टराज्ञी सा मन्त्रिणा विनयेन च ॥१३१॥

मातरुत्थीयतां शीघ्रं पूर्यतां दोहदो निजः ।
सा च यावद्गता वाप्यां दृष्टा सा रुधिरावृता[2] ॥१३२॥

सखीभिः सहशृङ्गारै[3]र्गीतवादित्रसंचयैः[4] ।
दीनदुःस्थितदानानि ददती तुष्ट[5]मानसा ॥१३३॥

नरैरवीक्षिता वाप्यां[6] प्रविष्टा स्नानमण्डपे[7] ।
दोहदं पूरयित्वा च वाप्या यावच्च निर्गता ॥१३४॥

भारुण्डेन तदोत्क्षिप्ता मांसपिण्डस्पृहालुना ।
नीयते नीयते राज्ञी स्त्रीभिः कोलाहलः कृतः ॥१३५॥

सेवका यावदायान्ति तावद्राज्ञी हृता[8] खगैः[9] ।
शोधिता बहुभिर्दूरं क्व नीता ज्ञायते न हि ॥१३६॥

शुकोवगेप दृष्टान्तः[10] पट्टराज्ञी तवोदितः[11] ।
मन्यतां मद्वचो देवि ! तद्वच्चमपि चान्यथा ॥१३७॥

कथयित्वा त्विमां वार्तां शुकोऽगान्नृपसंनिधौ ।
अस्माकीनं वचो देव ! पट्टराज्ञी न मन्यते ॥१३८॥

राज्ञोक्ते शुक ! राज्ञैषा त्वद्वचा कुपिता कथम् ।
भणितेनौपम्यवार्ता कारणोक्ता नृपान्तिके ॥१३९॥

हसित्वा भूपतिः प्राह युक्तमेव त्वयोदितम् ।
पाटं पंचयति स्वं यः[12] शैथिल्यं तस्य युज्यते ॥१४०॥

परं कीर ! त्वया वाच्यं[13] पुष्पवत्याः कथानकम् ।
पद्मिनीता च कौमार्ग वृत्तान्तं तन्निवेदय ॥१४१॥

शुकोवगम्नि कौमार्ग स्वैरान्वयनमद्भुता ।
देवाचार्यो न शक्नोति कर्तुं तद्गुणवर्णनम् ॥१४२॥

जन्म स्यात् सफलं तस्य यद्गृहे गृहिणी हि सा ।
शुकस्य वचनं श्रुत्वा जातः कन्यानुरागभाक् ॥१४३॥
शुकराज ! त्वया शिक्षा दातव्या मत्कृते तथा ।
क्षणाद्येन[1] प्रकारेण कन्यामुद्वाहयाम्यहम् ॥१४४॥
कार्यं सिद्ध्यति दुःसाध्यं शुकः प्राहोद्यमादिह ।
परिणीता च कौमारी शेनिका विक्रमेण वै[2] ॥१४५॥
भूपोवकीर ! का कन्या पर(रि)णीता कथं पुनः ।
विक्रमेणेति[3] वृत्तान्तं कथनीयं ममाग्रतः ॥१४६॥
शुकोवगेतदाख्यानं श्रूयतामेकचित्ततः ।
पश्चिमायां तु दिश्यत्र वारुणं नाम पत्तनम् ॥१४७॥
रूपचन्द्राभिधो राजा राज्ञी रुक्मप्रभाभिधा ।
बहुपुत्रोपरिष्टात्तु कन्या जातास्ति शेनिका ॥१४८॥
लाल्यमाना कियद्वर्षैः[4] पाठिता सा ततः परम् ।
सर्वशास्त्रे कृताभ्यासा परं सा द्वेषिणी नरे[5] ॥१४९॥
क्रमेण यौवनं प्राप्ता रूपेण रतितुल्यका[6] ।
मातृ(ता)पित्रोश्च संजाता संतापं तन्वती तदा ॥१५०॥
अन्यदा विक्रमो राजा मालवानामधीश्वरः ।
उपविष्टः सभायां हि मन्त्र्यमात्यपरीवृतः ॥१५१॥
सभायां तत्र चायातो विदेशीयो द्विजः क्वचित् ।
लात्वा देशं[7] समासीनो यथास्थाने नृपाज्ञया[8] ॥१५२॥
पृष्टो[9] विक्रमभूपेन सुधामधुरया गिरा ।
कथं कुतः समायातः ? प्रकाशय ममाद्भुतम् ॥१५३॥
अवादीद् ब्राह्मणो देव ! ह्येकचित्ततया शृणु[10] ।
अद्भुतं यादृशं पृष्टं कथयामि च तादृशम् ॥१५४॥
वारुणं नाम नगरं ह्यस्ति पश्चिमदिश्यहो ।
रूपचन्द्राभिधो राजा सेचानीनामिका[11] सुता ॥१५५॥

---

1. B^1 and B^2 यथा येन । 2. B^2 and B^3 विक्रमं यथा । 3. B^1, B^2 and B^3 एतदामूल० । 4. B^1, B^2 and B^3 °र्वं । 5. B^2 and B^3 नरैः । 6. B^1, B^2 and B^3 सादृशा (B^3 शी) । 7. B^1, B^2 and B^3 दत्त्वाशिषं । 8. B^1, B^2 and B^3 द्विजोत्तमः । 9. B^2 पृष्टे । 10. B^1, B^2 and B^3 तदा शृणु तमद्भुतम् । 11. B^1 नामतः; B^2 and B^3 नाम तद्° ।

विद्यया विजिता ब्राह्मी रम्भा रूपेण चात्मनः[1] ।
बुद्ध्या च वाक्पतिर्जिग्ये[2] चातुर्येण च विष्टपम् ॥१५६॥
अस्तीदृश्यद्भुता कन्या विश्वलोकविभूषणम्[3] ।
पुरुषद्वेषिणी सा तु रत्नद्वेषी यतो विधिः ॥१५७॥[4]
रम्याद्रम्यतरां वार्तां श्रुत्वा विक्रमभूपतिः ।
ददाति स्मेप्सितं दानं ब्राह्मणस्तु विसर्जितः ॥१५८॥
अथ विक्रमभूनाथश्चातुर्यैकधुरन्धरः ।
वार्तामोहितचित्तः सन्[5] प्रेषयामास सेवकान् ॥१५९॥
यावद्धानि नरद्वेषं प्रकारात्कुत एव सा[6] ।
कन्याया मूलवृत्तान्तं नी(ज्ञा?)त्वा मे कथ्यतां पुरः ॥१६०॥
शिक्षां दत्त्वाथ भूपेन प्रेषिता निजपूरुषाः ।
क्रमेण तेपि[7] संप्राप्ता वारुणाभिधपत्तने ॥१६१॥
तस्थुरेकप्रदेशेन वृद्धमालिनिकागृहे ।
मिष्टान्नाहारदानेन वृद्धाप्यावर्जिता भृशम् ॥१६२॥
मालिन्या ते तया पृष्टाः किमर्थं समुपागताः ?
मम पुत्राधिका यूयं यद्वाच्यं तद्वदन्तु भोः[8] ॥१६३॥
राजपुत्रा मातुराहुः काप्यास्ते शेनिका कनी[9] ।
श्रुता सा द्वेषिणी पुंस्सु (सु) तद्वृत्तान्तं[10] निगद्यताम् ॥१६४॥

मालिन्यूचेथ वृत्तान्तं मत्पुत्राः श्रृणुताद्भुतम् ।
सेचानिकासमीपेहं यास्यामि च गताप्यहम् ॥१६५॥
अन्यदा रूपचन्द्रोयं चिन्तयामास मानसे ।
नरद्वेषभवां वार्तां गत्वा पृच्छामि तां सुताम् ॥१६६॥
यावद्याति सुतावासे [1]भूपतिर्निष्परिच्छदः ।
तावत्सुता[2] समादिष्टा दत्ता जवनिकान्तरे ॥१६७॥
तदन्तरेवदद्भूपो वत्से[3] मद्वचनं श्रृणु ।
पक्षोभयविशुद्धा त्वं सुरूपा सद्गुणोचिता ॥१६८॥
सुशीला [4]सुन्दराचारा सदाक्षिण्या सुशास्त्रवित् ।
परं वत्से कथं जातं पुरुषद्वेषलक्षणम् ? ॥१६९॥
कन्योचे श्रूयतां तात ! त्वं तां श्रृणु कथामथ ।
गङ्गातीरेस्ति चासन्नं बदरीनामकं वनम् ॥१७०॥
सीचानकयुगं[5] तत्र वनान्तर्निवसत्यहो[6] ।
अन्यदा जलपानाय गतं गङ्गातटे तु तत्[7] ॥१७१॥
सार्थेशः कोपि तीरस्थः प्रासुकान्नेन सद्यतेः[8] ।
पारणं कारयामास दृष्ट्वा [9]सिञ्चानकोब्रवीत् ॥१७२॥
पश्य भद्रे ! मुनीन्द्रस्य धन्यो दत्ते च[10] पारणम् ।
प्राप्यते यदि मानुष्यं तदावां दीयते प्रिये ! ॥१७३॥
दानानुमोदनात्पुण्यमावाभ्यां समुपार्जितम् ।
कियद्भिस्तु दिनैस्तत्र वृक्षे मुक्तमथाण्डकम् ॥१७४॥
प्राप्ते ग्रीष्म ऋतौ तत्र दावानल उपस्थितः ।
संप्राप्तो दारुणोटव्यां वृक्षासन्नः समागतः ॥१७५॥
सिञ्चान्योक्तं द्रुतं स्वामिन् ! व्रज पानीयहेतवे ।
यथोपशाम्यते वह्निर्वृक्षपर्यन्तसेचनात् ॥१७६॥
एवं श्रुत्वा ततः शीघ्रं गतः [9]सिञ्चानको जले ।
तावत्सि[9]ञ्चानका पश्चाज्ज्वालापूरेण[11] वेष्टिता ॥१७७॥

---

1. B^3 भूपोपि नि° । 2. B^1, B^2 and B^3 सुताभिरा° । 3. B^1 वच्छे । 4. B^1, B^2 and B^3 सत्कु(B^3 कु)ता° । 5. B^1, B^2 and B^3 °न युगलं । 6. B^1, B^2 and B^3 निवसन्ति(ति) वनान्तरे । 7. B^1 and B^2 गतौ गङ्गातटे ततौ° । 8. B^1 and B^2 °न्नं मुनीश्वरे । 9. B^1 and B^2 सेचा° । 10. B^1, and B^3 ददति । 11. B^1, B^2 and B^3 °ज्वालाकेन ।

सिञ्चानी चिन्तयत्यन्तर्गतो भर्ता स कातरः ।
आत्मजेनापि न स्नेहः प्रियया तस्य किं भवेत् ॥१७८॥
धिग् धिग् निःस्नेहमर्त्यानां मुखे दृष्टेपि पातकम् ।
सिञ्चानी चिन्तयत्येवं दग्धा दावानलेन सा ॥१७९॥
मुनिदानानुमोदेन पुरा यत्पुण्यमर्जितम् ।
तत्पुण्यान्मानुषं जन्म[1] संजाता त्वद्गृहे सुता ॥१८०॥
तस्मात्कारणतस्तात[2] ! पुरुषद्वेषिणी ह्यहम् ।
न रोचते हि मे मर्त्यमुखस्यालोकनं क्वचित् ॥१८१॥
एवं पुत्रीकथां श्रुत्वा राजकार्ये गतो नृपः ।
अहं च[3] तन्मुखाच्छ्रुत्वा समायाता[4] निजे गृहे ॥१८२॥
चरैर्विक्रमभूपस्य मालिन्या मुखतः श्रुतम् ।
सिञ्चान्याः[5] पूर्ववृत्तान्तं ज्ञात्वागत्योक्तमीशितुः ॥१८३॥
विज्ञाय कन्यकावृत्तं विक्रमो वीर उत्तमः ।
उपायांश्चिन्तयामास पाणिग्रहणवाञ्छया ॥१८४॥
गौडिकावंशसंजाता वागलक्रीडनादिकाः[6] ।
गौडदेशात्समानीताः गुर्क्रीडावाडिका घनाः[7] ॥१८५॥
मन्त्रिणां राज्यभारं हि दत्वा साहसिकाग्रणीः ।
किंचित्सैन्यं समादाय वह्निवेतालकान्वितः ॥१८६॥
सह पेटकवर्गेण भूपतिर्गरिमान्वितः ।
मेचनकाभिधानं च स्वनामस्थापनं कृतम् ॥१८७॥
मार्गे नगरमध्ये ये समायान्ति हि भूभुजः ।
गत्वा तत्र कलावन्तो दर्शयन्ति निजाः कलाः ॥१८८॥
क्रीडन्त्यन्याः कलावन्तः ख्यातः मेचनकः स च ।
विदितः सकले देशे मार्गमुल्लङ्घयन्नपि ॥१८९॥
एवं च ग्रामानुग्रामं क्रीडयन्नद्भुताः कलाः ।
जगाम तत्पुरोद्याने यत्र मेचानिका कर्ना ॥१९०॥

वारुणाख्यपुरासन्नं[1] वनं पुष्फा(ष्पा)वतंसकम् ।
तत्र सेचनको नाम पेटकेन समं स्थितः ॥१९१॥
अतः प्रभातवेलायां रूपचन्द्रो नरेश्वरः ।
अनेकमन्त्रिसामन्तपूरितास्थानसंस्थितः ॥१९२॥
वामदक्षिणतस्तस्थुः सुस्वराः सरसा बुधाः ।
अग्रे गीताङ्गनादज्ञा सन्त्येसौ वासवोपमः ॥१९३॥
अतः सेचनको[2]ऽप्यश्वारूढः स्त्रीभिः समन्वितः[3] ।
संनह्य शस्त्रपाणिस्थः सभां गत्वा[4] नमन्नृपम् ॥१९४॥
देव ! ते[5] सत्यशीलाद्या विदिता विश्वमण्डले ।
तच्छ्रुत्वा त्वत्समीपेहं ह्यागतः शृणु कारणम् ॥१९५॥
विग्रहे देवदैत्यानां जायमाने रणाङ्गणे[6] ।
मया भूभामिनीनाथ ! गम्यते हि त्वदाज्ञया ॥१९६॥
यदि मे देहि वाचं त्वं तदा मे गमनं भवेत् ।
यस्य तस्यान्तिके पुंसो वाचं कोपि न याचते ॥१९७॥
ततो नृपो रूपचन्द्र [7]उवाचेदं नरं प्रति ।
वाचा दत्ता मया तुभ्यं कथयस्व यथोचितम् ॥१९८॥
नरोवोचदियं भार्या रक्षणीया प्रयत्नतः ।
यस्य कस्यान्तिके न स्त्रीरत्नं केनापि धार्यते ॥१९९॥
पुनर्विज्ञापयाम्येवं संग्रामे गम्यते मया ।
कुर्वतः समरं दैत्यैर्यदा[8] पतति मे वपुः ॥२००॥
प्रियाया दर्शनीयं तत् करोत्वेषा यथोचितम् ।
शिक्षां दत्त्वा नमन् भूपं हयेनोत्पत्य खं ययौ ॥२०१॥
पश्यमाना सभा सर्वा गतो दृष्टेरगोचरम् ।
सभ्याः सर्वे प्रशंसन्ति तं नरं कौतुकाद्भुतम् ॥२०२॥
कियत्यपि गता वेला करं खेटकसंयुतम् ।
आकाशात्पतितं दृष्टं सभा सर्वा चमत्कृता ॥२०३॥

---

1. B³ वारुणीनगरासन्नं । 2. B¹, B² and B³ सेचनकादेव° । 3. B¹, B² and B³ स्त्रियान्वितः । 4. B³ नत्वा । 5. B¹ and B² सत्य° । 6. B¹, B² and B³ नष्ट चैतं रणाङ्गणम् । 7. B¹, B² and B³ रूपचन्द्रनृपश्च न(नृ)प° । 8. B¹, B² and B³ दैत्यान् युद्धमानोऽहं यदा ।

हाहाकारपराः सर्वे यावत्पश्यन्ति विस्मयात् ।
तावत्करो द्वितीयोऽपि सखड्गः सहसापतत् ॥२०४॥

हाहापरस्ततो राजा दृष्ट्वा खड्गयुतं करम् ।
पतितं तावदाकाशान्मस्तकं तन्नरस्य च ॥२०५॥

ततश्च दुःखिताः सर्वे धुन्वाना मस्तकं मुहुः ।
सतुरङ्गः कबन्धश्चापतदास्थानमण्डपे ॥२०६॥

सर्वे हाहापरा जाताः सर्वे जाताः सुदुःखिताः ।
दर्शितं तत्प्रियायास्तद् दृष्ट्वा भर्तुः स्वरूपकम्[1] ॥२०७॥

तदग्रेऽञ्जलिमायोज्य पादपद्मं नमस्कृतम् ।
अवादीत् त्वत्प्रसादेन भुक्ता भोगा हृदीप्सिताः ॥२०८॥

तया भूपोऽपि विज्ञप्तः[2] स्वामिन् ! काष्ठानि मेऽर्पय ।
मृते भर्तरि नारीणां नान्यो मार्गः कुलस्त्रियाम् ॥२०९॥[3]

राजोचे स्थीयतां भद्रे ! मृते पि न हि किंचन ।
तव निर्वाहजां[4] चिन्तां यावज्जीवं करोम्यहम् ॥२१०॥

नारी प्राह तव स्वामिन् ! शीलाख्या वर्तते भुवि ।
रूपं दृष्ट्वा परस्त्रीणां न लोभस्तव[5] युज्यते ॥२११॥

एतच्छ्रुत्वा नृपः प्रोचे न लोभस्त्वं सुतासमा ।
काष्ठावरोहणे नार्यास्तिष्ठ तिष्ठोच्यते वचः ॥२१२॥

इत्युक्त्वा चन्दनैः काष्ठैर्नृपोऽकारापयच्चिताम्[6] ।
अनिच्छन्नानुभावात्स्त्री[7] प्रविष्टा सा चितानले[8] ॥२१३॥

युग्मस्नानेन[1] धौताङ्गाः सभासभ्याः समागताः ।
स तावज्जितकाशी ना नत्वा भूपं पुरः स्थितः ॥२१४॥
हे देव ! त्वत्प्रसादेन जित्वा दैत्यमहाबलम्[2] ।
समायातोऽधुनास्म्यत्र देहि मे वनितां विभो ! ॥२१५॥
राजा सविस्मयश्चित्ते यावद्दत्ते न चोत्तरम् ।
तावता[3] स नरः प्राह[4] पूर्वोक्तं देव ! नान्यथा ॥२१६॥
तृषार्तोऽम्बु क्षुधार्तोऽन्नं स्त्रीः कामं दुर्गतो धनम् ।
न मुञ्चति तथा सत्यं वचः सत्पुरुषो निजम्[5] ॥२१७॥
नरस्य वचनं श्रुत्वा भूपः स्थाता निरुत्तरः[6] ।
तावन्मन्त्रीश्वरो ब्रूते मद्वचः श्रूयतां प्रभो ! ॥२१८॥[7]
प्रत्यक्षोऽयं[8] मृतो दृष्टो जीवन्नेवाथ दृश्यते ।
तदा सा दैवयोगेन राज्ञीपार्श्वे विलोक्यताम् ॥२१९॥
इति मन्त्रिवचः श्रुत्वा भूपेनापि तथा कृतम् ।
राज्ञीपार्श्वात्समानाय्य तस्य पुंसोऽर्पिताङ्गना ॥२२०॥
नरेण तत्र कैवारं प्रारब्धं नरपाग्रतः ।
भूपो ज्ञात्वा कलावन्तं हृष्टो दत्ते घनं धनम् ॥२२१॥
सहर्षो भूपतेर्लोकः स्त्रियो जाताः ससम्मदाः ।
विसर्जितो नरः सोऽपि गतोऽस्तं च दिवाकरः ॥२२२॥
प्रातःकाले च भूनेतोपविष्ट स्थानमण्डपे ।
ज्योतिषिको[9] नरः कोऽपि भूपपार्श्वे समागतः ॥२२३॥
द्वादशतिलकैर्युक्तः कक्षायां न्यस्तपुस्तकः ।
भूपस्याशीर्वचो दत्त्वोपविष्टस्तु तदग्रतः[10] ॥२२४॥
पृष्टो भूपेन भो ज्योतिषिक ! ज्ञाता किमागमम्[11] ।
किं शास्त्रं दर्शयोद्दामं कलायाः प्रत्ययं निजम् ॥२२५॥

---

1. P[1], and P[3] युग्म° । 2. B[1], B[2] and B[3] दैत्यान् महाबलान् । 3. B[1], B[2] and B[3] °तः । 4. B[1], B[2] and B[3] नरो ब्रूते । 5. B[1], B[2] and B[3] have instead :—

स्त्रियं कामी धनं क्षीणं क्षुधिता(तो)न्नं तृषज्जलम् ।
प्राप्यते तानि वस्तूनि केके त्यं न मुंचति ॥

6. B[1] and B[2] भूपे नाभाति चोत्तरम् । 7. B[3] omits this verse completely । 8. B[2] °क्षेयं । 9. B[1], B[2] and B[3] °तिष्कको । 10. B[1] दत्त्वाप्युपविष्टस्त° । 11. B[1], B[2] and B[3] भो ज्योतिः ! किं किं जानासि चागमम् ।

स्वामिन् ! सत्यमिदं वाक्यं भवता यत्प्ररूपितम् ।
पुस्तकस्य वहे भारं यच्चहं प्रत्ययोऽस्मितः[1] ॥२२६॥
धनस्य प्रत्ययो दानं प्रत्ययः पात्रमंहृतेः[2] ।
पात्रे प्रत्यय आचारो[3] ज्ञानेऽपि प्रत्ययस्तथा ॥२२७॥
यथायं [4]प्रत्ययो राजन्नधुना पश्य कौतुकम् ।
निष्काश्य प(त्र)टिकां कोशाल्लग्नं स्थापितवांस्ततः ॥२२८॥
बलाबलं[5] ग्रहाणां तु ज्ञात्वा भूपं व्यजिज्ञपत् ।
मेघ आयाति चेद्रौद्रोऽधुना मे प्रत्ययस्तदा ॥२२९॥
ज्योतिर्वचनमाकर्ण्य सभा सर्वापि विस्मिता ।
व्योम्नि मेघलवो[6] नास्ति किमिहालोकभाषया ॥२३०॥
यावदेवं विमृशति[7] तावदभ्रो विनिर्गतः ।
क्षणान्मुशलधाराभिर्लग्नो मेघस्तु वर्षितुम् ॥२३१॥
तत्क्षणाज्जलपूरेण प्रवृत्तः प्लावितुं महीम् ।
सभां स्वीयां[8] जलैः पूर्णां दृष्ट्वा भूपः समुत्थितः ॥२३२॥
ज्योतिष्कस्य करे लग्न ऊर्ध्वभूम्यां गतो नृपः ।
जलेन प्लाविता सापि द्वितीयां भूमिकां गतः[9] ॥२३३॥
दृष्ट्वा तामप्यम्बुपूर्णां[10] भूपो व्याकुलमानसः ।
तृतीयां भूमिमारूढो ज्योतिष्केन समं ततः ॥२३४॥
सापि पूर्णाम्बुभिस्तुर्यां पञ्चमीं[11] च क्रमाद्गतः ।
एकविंशतिभूम्योऽपि[12] यावत्पूर्णा महाजलैः[13] ॥२३५॥
भूपोवदच्छृणु ज्योतिः ! प्रत्ययो भाषितस्त्वया[14] ।
अधुनाप्यागतः सोयं वद किं[15] क्रियतेऽधुना[16] ॥२३६॥

ज्योतिरूचे महाराजन् ! महतामिति चेष्टितम् ।
संपदि[1] सति(त्यां) नो गर्वो विपादो न विपद्यपि[2] ॥२३७॥

यतः— संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषा° ॥२३८॥[3]

तावत्पूर्णा जलैः सापि भूमिका भूप उत्थितः ।
नृपोपि यावन्नाशा(सा)ग्रं जले मग्नः क्षणेन सः[4] ॥२३९॥

भूपः प्रोचे वद त्सा(सा)धु क्रियतेप्यधुना किमु ।
ज्योतिरूचे महाराज[5] ! नेत्रमीलनमाचर[6] ॥२४०॥

नेत्रे निमील[7]यित्वा च यावद्भूपोनु[8]मीलति ।
न तावज्जलदो नाम्भु नार्द्रतास्ति भुवोपि च ॥२४१॥

उपविष्टो निजस्थाने न हि कोप्यस्त्युपद्रवः ।
तावन्नरेण कैवारं प्रारब्धं भूपतेः पुरः ॥२४२॥

राज्ञा ज्ञातं कलाविज्ञो न सामान्यास्त्यसौ कला ।
हसिताः सर्वसामन्ता भूपाद्याश्च चमत्कृताः[9] ॥२४३॥

राज्ञोचेत्यद्भुता विद्या शिक्षिता कस्य पार्श्वतः ।
एका पूर्वदिने दृष्टा द्वितीयाद्य किमुच्यते ॥२४४॥

स आह स्मास्ति सार्थेश गुरुः सेचनको[10] मम ।
शिक्षितस्तत्प्रसादेन भूपाग्रेद्यास्मि कौतुकी ॥२४५॥

भूपः प्रोचे कदा नृत्यं सेचनाख्यो गुरुस्तव ।
करिष्यति [11]किलास्माकं दर्शयिष्यति[12] कौतुकम् ॥२४६॥

तदा कलाविदप्याहास्मदीयो भूपते ! गुरुः ।
स्त्रीणां [च] वर्तते द्वेषो तासां नालोकयेन्मुखम् ॥२४७॥

एवं श्रुत्वा[13] महीनाथो जातो विस्मितमानसः[14] ।
कथंचिद्गुरुरात्मीयो मेलनीयो मयापि[15]हि ॥२४८॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 संपदे । 2. B^1, B^2 and B^3 विषादं विपदे न हि । 3. B^1 and B^3 omit the whole expression; B^2 stops after हर्षो । 4. B^1, B^2 and B^3 कि नृपोपि-नासाग्रं यावन्मग्नो जलेन सः [B^1 जले मग्नः] । 5. P^1 and P^3 °जन् । 6. B^1, B^2 and B^3 नेत्राणां मीलन क्षणम् । 7. B^1, B^2 and B^3 नेत्राणां मेल° । 8. B^2 न । 9. B^1, B^2 and B^3 °ता हृष्टम° । 10. B^1, B^2 and B^3 सेचा° । 11. B^1 and B^2 कदा; B^3 कदा । 12. B^1, B^2 and B^3 दर्शयति । 13. B^1 श्रुत्वा° । 14. B^1, B^2 and B^3 विस्मितमानसाः । 15. B^1 and B^2 ममापि ।

इत्युक्त्वा तस्य वेगेन स्वर्णरत्नादि भूषणम्[1] ।
शोभनाश्वादि पृच्छा(च्छ्या ?)दि दत्तं दानं [2]हृदीप्सितम् ॥२४९॥
प्रेषितः स निजे स्थाने सभा सर्वा विसर्जिता ।
राज्यलीलोचितैः सौख्यैः रात्री [3]राज्ञातिवाहिता ॥२५०॥
पुनः प्रातः सभासीनो रूपचन्द्रनरेश्वरः ।
सेचानकं समानेतुं नरान् प्रेषितवान्निजान्[4] ॥२५१॥
सेचानकः सशृङ्गारो नानाभरणभूषितः ।
सुखासने समारूढः [5]ससैन्यपरिवारकः[6] ॥२५२॥
नेत्रयोः पट्टको बद्धो डाङ्गिकैश्चाग्रतः श्रितः ।
पथि यत्र समायाति नारी नश्यति तत्पथात्[7] ॥२५३॥
परिच्छदेन संयुक्तो गतो यत्रास्ति भूपतिः ।
अभ्युत्थानं न सन्मानं नतिं कस्यापि नो सृजेत्[8] ॥२५४॥
उपविष्टः सभामध्ये नेत्रयोः पट्टकावृतः ।
निषिद्धाश्च स्त्रियः सर्वा रूपचन्द्रेण मण्डपात् ॥२५५॥
तथापि कौतुकाकांक्षी नरो रूपेण पश्यति ।
सेचानिका[9] च[10] साश्चर्या जालकान्तः प्रपश्यति[11] ॥२५६॥
पृष्टः स रूपचन्द्रेण सत्यं वद नरोत्तम ।
स्त्रीषु द्वेषी[12] कथं जातः कथय त्वं[13] ममाग्रतः ॥२५७॥
ततः सेचानको ब्रूते स्त्री नैवास्त्यत्र कुत्रचित् ।
नेत्रयोः पट्टकं त्यक्त्वा वदति स्म विदां वरः[14] ॥२५८॥
दिशायाः पूर्वभागेऽस्ति गङ्गानाम्नी महानदी ।
तस्यास्तीरेऽस्ति भो ! रम्यं विख्यातं बदरीवनम् ॥२५९॥
बहवः पक्षिणस्तत्र निवसन्ति यदृच्छया ।
सेचानकस्य युगलं मुदितं तत्र तिष्ठति ॥२६०॥

कियत्स्वहस्सु संजातः सेचानीगर्भसंभवः ।
एकस्यां वृक्षशाखायां मुक्तमण्डकयुग्मकम् ॥२६१॥

कियद्भिस्तु दिनैरेतौ संजातौ युग्मबालकौ ।
एकस्मिंस्तु दिने जातो दावाग्नेः समुपद्रवः[1] ॥२६२॥

सेचानेन तदैवोक्तं समानय जलं प्रिये ! ।
जलसेकाद्यथा वह्नेर्नाशयामि ह्युपद्रवम् ॥२६३॥

गता सा जलमानेतुं नायाता निर्दया पुनः ।
बालकोपरि दग्धोहं दावाग्नेर्ज्वालया तदा[2] ॥२६४॥

कन्यकोचे निराश्चर्यं कूटं किं जल्पसे मुधा ।
दग्धाहं बालकैः सार्धं नष्टस्त्वं स्नेहवर्जितः[3] ॥२६५॥

इति वादं विवदतोः श्रुत्वा सेचानिकापितुः(ता) ।
मिलितः पूर्वसंकेतो ज्ञातः पूर्वभवप्रियः ॥२६६॥

पुनश्चिन्ता समुत्पन्ना रूपचन्द्रस्य भूभुजः ।
परमेतत्सुतारत्नं दास्ये नाटकिनो न हि ॥२६७॥

उक्तं च— कुलं[4] च शीलं च रूपज्ञता च
विद्या वयो रूपधनाढ्यता च ॥
एते गुणाः सप्त वरेतिरिक्त-
स्ततः परं पुण्यफलाय कन्याः ॥२६८॥

पुम्भिः सार्धं निर्विरोधं ज्ञात्वा भूपः समुत्थितः ।
सेचानोप्यश्वमारुह्य यावद्याति निजाश्रमे ॥२६९॥

तावत्केनापि भट्टेन ह्येकेनाप्युपलक्षितः ।
स एष मालवाधीशो विक्रमादित्यभूपतिः ॥२७०॥

दातॄणां दानधौरेयो वीराणामेकवीरराट् ।
साहसैकनिधिः[5] सम्यग् विक्रमी विक्रमो नृपः ॥२७१॥

एतद्वचनमाकर्ण्य रूपचन्द्रो धराधिपः ।
पादचारी समायातो यत्र विक्रमभूपतिः ॥२७२॥

---

1. B1, B2 and B3 हास्यमाना(नौ) दिनैकस्मिन् दावानलसमुपद्रवः । 2. B1, B2 and B3 ज्वाला दावानलस्य च । 3. B3 °तम् । 4. B1 and B2 omit the whole verse; P1 and P3 have only कुलं च शीलं च । 5. B1, B2 and B3 साहसैक निधिः ।

करौ च कुड्मलीकृत्य स्तुतिमेवं विनिर्मि(र्म)मे[1] ।
गृहं पवित्रयास्माकं [2]पदपङ्कजरजेन तु ॥२७३॥

धन्योहं मत्पुरं धन्यं यत्प्राप्तो विक्रमाधिपः ।
प्रकृष्टविनयेनाथ[3] समानीतो निजे गृहे ॥२७४॥

पुनः पप्रच्छ भूनाथः प्रारब्धं किमिहाद्भुतम् ।
मालवेश्वर ! वार्तेयमारब्धा वद कारणम् ॥२७५॥

हसित्वा विक्रमः प्रोचे प्राघूर्णोस्म्यधुना तव ।
तव कीर्तिः परा भूर्ता भूर्तितोहं तवागतः ॥२७६॥

इति प्रीतिवचः श्रुत्वा रूपचन्द्रो नराधिपः[4] ।
परमानन्दरूपेण[5] भोजितो भक्तिपूर्वकम् ॥२७७॥

मन्त्रयित्वा मन्त्रिभिः स विज्ञप्तो विक्रमाधिपः ।
प्रसादं कुरु भूमीन्द्र ! वचनं मामकं शृणु ॥२७८॥[6]

न हि दानं विना प्रीतिर्न शोभां प्राप्यते क्वचित्[7] ।
यथा पंचामृतं भोज्यं घृतहीनं न शोभते ॥२७९॥

गजवाजिसुवर्णाद्याः पादार्थास्तव[8] मन्दिरे ।
तव योग्यमिदं पुत्री[9]रत्नमेतद्विवाहय ॥२८०॥

एतद्वचनमाकर्ण्य हृष्टो मालवभूपतिः ।
वाञ्छितार्थप्रदानेन को न तुष्यति मानवः[10] ॥२८१॥

प्रशस्ते दिवसे भूपः कारयामास[11] मण्डपम् ।
परिणीता विक्रमेण सुता मेचनिकाह्वया[12] ॥२८२॥

अनेकगजवाज्यादि[13] स्वर्णरत्नादि भूषणम्[14] ।
प्रददौ रूपचन्द्रोयं जा(जा)मातृकरमोचने ॥२८३॥

उत्सवेन च वीवाहं[1] कृत्वा विक्रमभूपतिः ।
समायातो निजे स्थाने स्वसैन्यपरिवारितः ॥२८४॥
सिद्ध्यत्युद्यमतः कार्यमगम्या ये मनोरथाः[2] ।
यथा सेचानिका कन्या विक्रमेण विवाहिता ॥२८५॥
यथा विक्रमभूपस्य शुकेनायं निवेदितः ।
उद्यमोपरि दृष्टान्तश्चन्द्रसेननृपाग्रतः ॥२८६॥

एतत्कथानकं श्रुत्वा हृष्टः[3] कीरस्य वाचया ।
मया पुष्फा(ष्पा)वतीनाम्न्याः[4] कथं कार्यः परिग्रहः[5] ॥२८७॥
शिक्षां पृच्छति भूनाथे कन्यावरणहेतवे ।
कीरोपि कथयामास भूपस्य हितवाञ्छया ॥२८८॥
कृतास्ति यदि सामग्री विदेशागमने[6] त्वया ।
तदा शकुनजाङ्घेया[7] गृ(ग्र)हीतव्या कथा हृदि[8] ॥२८९॥[9]
यथा शकुनिकीरोवक् श्रेष्ठिपुत्रफलप्रदः ।
तथा हि सर्वलोकानां चिन्तितार्थफलप्रदः ॥२९०॥
चन्द्रसेनो नृपः प्राह शुकराज ! ममाग्रतः ।
कथनीया समग्रापि कथा श्रेष्ठिसुतस्य च ॥२९१॥
कीरोवग्मालवे देशे पुरं दशपुराभिधम् ।
देवदत्ताभिधः श्रेष्ठी वसते तत्र वित्तवान्[10] ॥२९२॥
देवश्रीरस्ति तद्भार्या सुतो दशरथाभिधः ।
वात्सल्यात्पितृमातृभ्यां बालत्वे स विवाहितः ॥२९३॥
पाठितश्च[11] ततः सम्यक्कलाविद्यादिकोविदः ।
जातः सर्वगुणावासो मन्ये विद्यानिकेतनम् ॥२९४॥
संप्राप्त[12]रूपलावण्यो[13] यौवनेनाप्यलंकृतः ।
जातश्च विषये लुब्धो द्वितीयवयसः फलम् ॥२९५॥
एकदा श्रेष्ठिपुत्रेण नापिताय निवेदितम् ।
मन्मित्राणां मत्समानां सन्ति जाता गृहे सुताः ॥२९६॥

---

1. B¹ and B² उच्छवेन च वेवाहं । 2. B¹ and B² °रथैः । 3. B² and B³ हृष्ट° । 4. B³ °कन्या । 5. B³ परिणीया मया कथम् । 6. B¹, B² and B³ विदेशगमने । 7. B², °जंघे° । 8. B¹, B² and B³ हृदयस्य । 9. B adds the following after this verse :—पर शकुनजंघ उपरि कथा । 10. B¹, B² and B³ धनवान् ततः । 11. B¹, B² and B³ पाठितोऽपि । 12. B¹ and B² °प्तं । 13. B¹ and B² °ण्यं ।

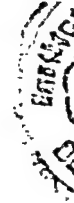
इष्टगोष्ठ्युपविष्टस्य स्निग्धा मम हसन्ति हि ।
पित्रा विवाहवार्तापि कास्यस्य न हि कथ्यते ॥२९७॥
कथनीयं च नानाग्रे मदुक्तं वेत्त्यसौ यथा[1] ।
प्रत्युत्तरं तथास्माकं कथनीयं त्वया सखे ॥२९८॥
श्रेष्ठिपुत्रगिरं श्रुत्वा संप्रदायेन संयुतः ।
वामशाखी स्थितः श्रेष्ठी नापितस्तत्र चागतः ॥२९९॥
दर्पणं दर्शयामास पादसंवाहनापरः ।
श्रेष्ठिनं जल्पयामास[2] विवाहादिकवार्तया ॥३००॥
[3]क्रमप्यवसरं प्राप्य कथयामास नापितः ।
भवतां पुत्ररत्नं तु[4] विवाहे योग्यतां गतम्[5] ॥३०१॥
हसित्वा श्रेष्ठिनाप्यूचे त्वयाद्यापि हि न श्रुतम् ।
मया वात्सल्यतः पुत्रो बालत्वेयं[6] विवाहितः ॥३०२॥
नापितः पुनरप्यूचे कुतः कस्य गृहे प्रभो !
एतदाश्चर्यमस्माकं न श्रुतं कस्य चान्तिकात्[7] ॥३०३॥
श्रेष्ठ्यूचे मालवे देशे निकटं ह्यस्ति चात्मनः ।
बेंगटनगरं नाम श्लाघ्यं सुरपुराधिकम् ॥३०४॥
तत्रास्ति धनदः श्रेष्ठी राजमान्यो महाधनी ।
नन्दानाम्न्यस्ति[8] तत्पुत्री परिणीताङ्गजेन मे[9] ॥३०५॥
स्वरूपं श्रेष्ठिपुत्रस्य नापितेन निवेदितम् ।
गृहीत्वाज्ञां पितुस्तस्याः समानयनहेतवे ॥३०६॥
[10] श्रेष्ठिपुत्रो रथारूढः प्रस्थितोऽल्पपरिच्छदः ।
पुरात् पदैः समागत्याकथयत्रिजगेहकान् ॥३०७॥
वामदारे यदा देव्या भाषते[11] वचनत्रयम् ।
ग्रामान्तरे तदायामि व्याघुट्य्येऽन्यथा त्वहम्[12] ॥३०८॥
एतद्वचनमाकर्ण्य सुता[13] मा दक्षिणे भुजे ।

तथैव दक्षिणे भागे देव्या शब्दायते भृशम् ।
पुनर्वेश्म समायातो निजश्रेयोभिलापुकः ॥३१०॥
अरुणोदयवेलायां यावद्गच्छति मार्गतः ।
देव्या शब्दसदृक्शब्दश्चटकः[1] कोपि जल्पितः ॥३११॥
तावद्दशरथः श्रेष्ठी सोत्साहवचनं जगौ ।
मातरस्माकमप्येवं वचः किं श्रावयस्यहो ॥३१२॥
निवेद्येदं मुखे[2] वाक्यं रथं खण्डितवान्पथि ।
तावत्सूर्योदये देव्या निजस्थाने समागता ॥३१३॥
पप्रच्छ चटकाद्यान्सा मार्गेणास्मिन् गतोस्ति कः ।
यथोक्तं चटकेनोक्तं श्रेष्ठिपुत्रेण यत्कृतम् ॥३१४॥
शकुनो हाहापरत्वेन चिन्तयामास मानसे ।
अग्रे श्रेष्ठिसुतस्यापि मृत्युरस्ति कथं कृतम् ॥३१५॥
शकुनोप्यात्मलज्जातः[3] कृत्वा रूपं द्विजन्मनः ।
मिलितः कटके गत्वा तस्य श्रेष्ठिसुतस्य च ॥३१६॥
सोपि सार्थस्थितो याति क्रमाद्वैराटमाययौ ।
सपरिच्छद [4]आयातः श्वशुरस्य निकेतने ॥३१७॥
जामातरं तं विज्ञाय श्वशुरः सालकादिभिः ।
संमुखं तस्य चायातः[5] कृतं गौरवमादरात् ॥३१८॥
जामाता तैः समानीतो गृहमध्ये कृतादरः ।
कृतमाङ्गल्यकाचारः श्वश्रूभिः शालकादिभिः[6] ॥३१९॥
मर्दनोद्वर्तनं कृत्वा स्नानभोजनकादिभिः ।
दिनं हर्षातिरेकेण क्रीडाद्यैरत्यवाहयत्[7] ॥३२०॥
जाता संध्या ततः स्त्रीभिर्नन्दा संस्नापिता तनौ ।
शृङ्गारषोडशोपेता कृता [8]भूषणभूषिता ॥३२१॥
एकं(क)यौवनसम्पन्ना भूषाभिर्भूषिता पुनः[9] ।
साक्षाद्देवाङ्गनाकारा प्रेषिता शयनीयके ॥३२२॥

---

1. B^1 and B^2 °टिकः । 2. B^1, B^2 and B^3 इत्युक्त्वा रि(टि)ह [illegible] । 3. B^1, B^2 and B^3 °लज्जाभिः । 4. B^1, B^2 and B^3 °दना° । 5. B^1, B^2 and B^3 [illegible] । 6. B^1 and B^3 शालिका° । 7. B^1, B^2 and B^3 दिवा [illegible] । 8. B^1, B^2 and B^3 शृङ्गारैः षोडशैः (B^2 and B^3 °शी) [illegible] विभू° । 9. B^1 and B^2 [illegible] B^3 विभूषणविभूषिता ।

चिन्तयामास सा कन्या संकेतो यत्र विद्यते ।
पूर्वं तत्रैव गच्छामि पश्चान्निजधवान्तिके ॥३२३॥
एवं विमृश्य सा कन्या यक्षस्यायतने गता ।
चिन्तयत्यन्तरे यक्ष[1] आगता पतिघातिनी ॥३२४॥[2]
या स्त्री निजपतिं त्यक्त्वा भजतेन्यपतिं पुनः[3] ।
पतिघातकृतं पापं तयापि [4]समुपार्जितम् ॥३२५॥
अद्याहमस्याः पापिन्याः शिक्षां दास्यामि निश्चितम् ।
विमृश्यैकशवस्यैवं देहे यक्षोप्यधिष्ठितः ॥३२६॥
सजीवं(वो) मृतकं(को) जातं(तः) तां भाषयति कामिनीम्[5] ।
वेलाद्य महती लग्ना भद्रे ! कथय कारणम् ॥३२७॥
साप्यूचे परिणीतो मे भर्ताद्य समुपागतः ।
तद्विशेषवशात्स्वामिन् ! विलम्बो मेप्युपस्थितः ॥३२८॥
संकेतितनरस्या[6]'जल्पते मृतपूरुषः[7] ।
संतुष्टालिङ्गनं मेद्य[8] दत्त्वा याहि निजे प्रिये ॥३२९॥
स्नेहादुत्कण्ठिता कन्या यावदालिङ्गनं ददौ ।
दन्तैर्नासां कराभ्यां च कर्णावत्रोटयच्छि(च्छ)वः ॥३३०॥
कन्यका निजदोषस्य गोपनाय गृहे गता ।
भर्तुः समीपमागत्योच्चैःस्वरेणापि पूत्कृतम्[9] ॥३३१॥
कन्यकायाः पिता माता बान्धवाश्च समागताः ।
दृष्ट्वागमदुग्रं कार्यं को न कुप्यति मानसे ॥३३२॥
वणिक्कुले[10] न जातोयं जातश्चाण्डालजे कुले[11] ।
यदेषा बालिका भद्र ! त्वयाजन्म[12] विडम्बिता ॥३३३॥
तावत्कोलाहलं श्रुत्वा रक्षकाः समुपागताः ।
तत्कर्षित्वा हटं नीतः प्रातर्भूपस्य संनिधौ ॥३३४॥



श्रुत्वा व्यतिकरं राजा ब्रूते कोपारुणेक्षणः ।
मद्भ्रातृपुत्री रे पाप ! निर्दोषेयं[1] विडम्बिता ॥३३५॥
विस्मितः श्रेष्ठिपुत्रोसौ चिन्तयामास मानसे ।
शकुनस्तादृशो जातः कार्यं नीत्याजनीदृशम्[2]॥३३६॥
भूपोवक् कथमानीतः पापिष्ठोयं ममाग्रतः ।
शूलिकायां समारोप्य आदिष्टं वन्धकान्[3] प्रति ॥३३७॥
वधाय नीयमानेस्मिन्[4] हाहाकारपराः प्रजाः[5] ।
शकुनो द्विजरूपेण भूपस्याग्रे न्यवेदयत्[6] ॥३३८॥
श्रूयतां देव ! मद्वाचो[7] रोषं च हृदि मा कुरु ।
राजनीतिकथा पूर्वं भाविनी संश्रुता त्वया ॥३३९॥[8]—तथा हि[9]
अविवेकी नृपः स्थानमन्यायपुरपत्तनम् ।
उन्मार्गी नाम मन्त्र्यस्ति सर्वलगरः[10] प्रधानकः ॥३४०॥
राज्यं तस्यानया रीत्या सर्वदापि प्रवर्तते[11] ।
कियत्यपि दिने देव ! यज्जातं तन्निशम्यताम् ॥३४१॥
चौरेण पातितं क्षात्रं श्रेष्ठिनः कस्यचिद्गृहे[12] ।
भित्तिः पपात सहसा[13] क्षात्रपातकरोपरि ॥३४२॥
पूत्कर्तुं स गतश्चौरो द्रुतं भूपस्य चान्तिके ।
अन्यायश्च महान् जातः[14] श्रूयतां मद्वचः प्रभो ! ॥३४३॥
गतः श्रेष्ठिगृहे स्वामिन् रात्रौ क्षात्रस्य पातने ।
भित्तिपातात्कटी भग्ना पूत्करोमि त्वदग्रतः ॥३४४॥
तच्छ्रुत्वा[15] भूपतिः क्रुद्धः क्षणाच्छ्रेष्ठिनमाह्वयत् ।
ईदृग्विधानि कर्माणि करोषि त्वं पुरे मम ॥३४५॥

निरागसोऽस्य चौरस्य[1] कुटी भग्ना त्वया कथम् ।
ईदृशीं भित्तिकां कश्चिन्मन्दिरे कारयत्यहो[2] ॥३४६॥

श्रेष्ठ्यूचे नास्ति मे दोषो दोषश्चितिकरस्य च[3] ।
द्रव्यदाने प्रशक्तोऽहं न शक्तो भित्तिकर्मणि[4] ॥३४७॥

राजोचे त्वद्वचः सत्यं प्रेषयामास सद्भटान्[5] ।
चेजारकाः समानीता नत्वा भूपं पुरः स्थिताः ॥३४८॥

भृ(भ्रु)कुटीभीषणो राजावदत्तान्[6] भित्तिकारकान् ।
ईदृशी किं कृता भित्तिश्चौरोपरि पपात या ॥३४९॥

तैरुक्तं नास्ति दोषो नः[7] परं किं कुर्महे प्रभो ! ।
यद्वधूः श्रेष्ठिनोऽमुष्य[8] मध्यद्वाराग्रतः स्थिता ॥३५०॥

एभिः सत्यं वचः प्रोक्तमानीता श्रेष्ठिनो[9] वधूः ।
उन्मत्ता यौवनेन त्वं यत्स्थिता शिल्पिनोऽग्रतः[10] ॥३५१॥

साप्यूचे नास्ति मे दोषो गच्छन्त्या जिनमन्दिरे ।
नग्नो दिगम्बरो दृष्टो लज्जिताग्रे ततः स्थिता[11] ॥३५२॥

श्रुत्वा भूपोऽवदद्वाक्यं श्रेष्ठिवध्वोदितं ऋतम् ।
नग्ने दृष्टे पुनर्लज्जा कथं स्त्रीणां न जायते ॥३५३॥

आकारितः स दिग्वासा भृ(भ्रु)कुटीभीषणेक्षणः ।
नग्नत्वं दर्शयन्नत्र[12] कथं भ्रमसि मत्पुरे ॥३५४॥

दिग्वासा नोत्तरं दत्ते यावत्तिष्ठति मूकवत् ।
तावद्भूपः सक्रोधोऽवक् शूलारोपोऽस्य चोचितः ॥३५५॥

दिग्वाससं पुर(स्)कृत्वा[13] यावद्गच्छन्ति ते भटाः ।
श्रेष्ठिना द्रव्यदानेन [illegible] ॥३५६॥

पुनरागत्य भूपाग्रे नत्वा ते वदन्ति हि[14] ।
स्वामिन्न दोषोऽस्ति दिग्वाससः शूलान्ता क्रियते कथम्[15] ॥३५७॥

भूपोवक् शूलिकामानो[1] यः कोपि पुरुषो भवेत् ।
समुत्पाद्य स दातव्यः प्रष्टव्योहं पुनर्नहि ॥३५८॥

नमस्कृत्य नरा भूपं निःसृता [2]निजमन्दिरात् ।
पट्टराज्ञ्यास्तदा भ्राता संमुखो मिलितः क्षणात्[3] ॥३५९॥

तं शूलिकानुमानेन ज्ञात्वा भूपस्य सालकम् ।
लात्वा समानयामासुः शूलाभ्यर्णे वराककम् ॥३६०॥

स वृत्तान्तः श्रुतो राज्ञ्या रोदिति स्म गुरुस्वरम्[4] ।
आगत्य भूपतेः[5] पार्श्वे सा भृशं क्रन्दति स्म च ॥३६१॥

प्रधानास्तु समायातास्तस्या आकर्ण्य रोदनम् ।
ददुः शिक्षां नरेशाय धीर्यते[6] दुःखतो मनः ॥३६२॥

दण्डं दत्त्वा तलारक्षे[7] नेष्यामो नृपसालकम् ।
दीनाराणां सहस्रं च दापयित्वा स मोचितः ॥३६३॥

तादृशं तव राज्येहं पश्याम्याश्चर्यमद्भुतम्[8] ।
निरागाः श्रेष्ठिपुत्रो यच्छूलायामधिरोप्यते ॥३६४॥

निर्मन्तुरस्त्यसौ देव ! नाशिकाकर्णकर्तनात् ।
कथयामि द्विजोप्यूचे वृत्तान्तोयं निशम्यताम् ॥३६५॥

भवद्व्यापादितश्चौरः पतितोस्ति पुराद्बहिः ।
गत्वा तन्मुखं हस्तौ विलोक्यौ कौतुकेन भोः[9] ! ॥३६६॥

द्विजवाक्याद्गतो राजा कौतुकी नालसोभवत् ।
दृष्टौ तस्य करे कर्णौ नासिका मुखमध्यतः ॥३६७॥

विस्मयेन ततो राजा ददर्श द्विजसम्मुखम् ।
किमेतदिति चाश्चर्यं कथय त्वं ममाग्रतः ॥३६८॥

नन्दिकायाश्च वृत्तान्तं श्रुत्वा भूपो द्विजोदितम् ।
भगिन्या लघुनन्दायाः श्रेष्ठिपुत्रो विवाहितः ॥३६९॥

शुकोवक् शकुनात्सोपि निःसृतो मरणापदः[1] ।
विवाहितान्या भार्यास्य समागात्कुशलाद्गृहे[2] ॥३७०॥

चन्द्रसेनेन भूपेन यथा शुकमुखाच्छ्रुतम् ।
शकुनज्ञानावास्तिक्यं पुनः पृच्छोत्तरं ददौ ॥३७१॥

शुकोवग्यदि सामग्री विवाहाय कृता त्वया ।
नैमित्तिकं समाहूय पृच्छां कुर्वागमे तथा[3] ॥३७२॥

नैमित्तिकवचः सम्यक् मिलितं नैव चान्यथा ।
ज्ञाल्पेनोऽम्भि (स्थि?)तो बालो ह्यजापुत्रो नृपो यथा ॥३७३॥

॥ अत्र अजापुत्रकथा सविस्तरा वा संक्षेपतः कथनीया ॥

अथ पुष्का(ष्पा)वतीकन्याविवाहाय नरेश्वरः ।
प्रस्थितः सुमुहूर्तेन शकुनैः शोभनैस्ततः ॥३७४॥

शुकराजः समीपस्थः शिक्षां दत्ते यथा यथा ।
तथा तथाकरोत्सर्वं चन्द्रसेनो नरेश्वरः ॥३७५॥

ससैन्यः सपरीवारो मित्रैः सह च पण्डितैः[4] ।
क्रमान्मार्गं समुल्लङ्घ्य ग्रामाटव्यां पुरादिकम् ॥३७६॥

काञ्चनपुरसीमायामासन्नो यावदागतः ।
तावत्पृच्छति भूनाथः शिक्षां कीरान्तिके पुनः ॥३७७॥

शुकराज ! क्व तिष्ठामः किं कुर्मश्च[5] समादिश ।
कन्येयं परिणेतव्यास्माभिः पुनरहो कथम् ॥३७८॥

कन्यावाञ्छापरं भूपं शुकोवक् श्रूयतां तथा ।
माता पिता च कन्यायाः परमार्हतभक्तिमान् ॥३७९॥

तत्सुतापि सदार्हन्तं जिनपूजार्थहेतवे ।
समागच्छति चोद्याने पुष्का(ष्पा)वचयनामके ॥३८०॥

प्रासादो महता तत्रोत्सेधेनास्य गुणेन हि ।
कारितो रत्नसिंहेन श्रीयुगादिजिनेशितुः[6] ॥३८१॥

पित्रोरस्याः कुमार्याश्च निश्चयोप्यस्ति मानसे ।
इदं[1] मम सुतारत्नं जैनो हि[2] परिणेष्यति ॥३८२॥
सा कन्या तत्र पूजार्थे नित्यं याति जिनालये ।
राजन् ! यदि विवाहेच्छा वर्तते तदिदं कुरु ॥३८३॥
संस्थाप्य दूरतः सैन्यं त्वमत्र[3] स्नानमाचर ।
शुचि वस्त्रं परीधाय गृह्ण पूजोपचारकम्[4] ॥३८४॥
मयापि गम्यते पूर्वं तत्र देवकुलेधुना ।
एतत्सर्वं त्वया भूप ! करणीयं द्रुतं वचः ॥३८५॥
शुकेन च[5] यथा प्रोक्तं भूपालेन[6] तथा कृतम् ।
राजा स्वल्पपरीवारश्चलितः कीरसंयुतः ॥३८६॥
युगादिं [7]भुवने नत्वा राजा गर्भगृहे स्थितः ।
शालायां पञ्जरं बद्ध्वा प्रविष्टो[8] दक्षिणे भुजे ॥३८७॥
जिनमष्टप्रकारेण[9] पूजयित्वा नरेश्वरः ।
कायोत्सर्गे स्थितो यावत् कुमारी तावदागता ॥३८८॥
सखीपञ्चशतीसार्धं नूपुरारावझंकृतिः ।
वस्त्राभरणभूषाढ्या चैत्यद्वारेण संस्थिता ॥३८९॥
शुकोवक् स्वागतं तुभ्यं सुशीले ! सद्गुणान्विते !
वार्यतां नूपुरारावो भूपो ध्यानाच्चलिष्यति ॥३९०॥
नारीनूपुरझाङ्कारैर्यस्य चित्तं न चञ्चलम् ।
स श्रीमान्न(न्ने)मियोगीन्द्रः पुनातु भुवनत्रयम् ॥३९१॥[10]
कुमारी तद्वचोलुब्धा[11] समायाता शुकान्तिके ।
भूपरूपं समालोक्य जाता मदनविह्वला ॥३९२॥
भोः कीर ! कथयास्माकं भूपः कोसौ क्व चागतः ।
क्व गमिष्यति किं नाम कथं स्वल्पपरिच्छदः ॥३९३॥
कीरो मन्दस्वरेणोचे सैष चन्द्रावतीपतिः ।
प्रयाति जिनयात्रायै[12] राजासौ चन्द्रसेनकः ॥३९४॥

एवं श्रुत्वा कुमार्यूचे ज्ञातो राजा नवैव हि ।
एकं गुणेन केन त्वं निर्दुःषि(र्दुःखं) निवेदसे ॥३९५॥

शुकोऽवक् शृणुतां बाले ! गुणा भूपशरीरजाः ।
गुण्या यदि वर्ण्यन्ते न पारः प्राप्यते तदा ॥३९६॥

शुक उवाच—
त्यागे वारिनिधिर्वने मलिनता कर्णे न धर्मे रुचिः
कल्पेऽस्यस्त्यकुलीनता कठिनतायुक्तश्च चिन्तामणिः ।
वैमुख्याचरणा तु देवगुरुभिर्नीचाश्रितस्ते बली
सर्वे दूषणदूषिताः शृणु सखे ! निर्दूषणोऽयं नृपः ॥३९७॥

एवं निर्दूषणं ज्ञात्वा निष्ठामि वरसुन्दरि ! ।
अहं पृच्छामि कीरेवर् यदि नो मयि कुप्यसि ॥३९८॥

सात्यूचे न हि कुप्यामि कीरेवक् तद्वचः शृणु ।
प्रौढा प्रौढगुणोपेता कुमार्यद्यापि किं त्वकम् ॥३९९॥

तयोक्तो निजवृत्तान्तः कुमार्या पितृमातृजः ।
वरिष्यति वरो ज्ञेनो मित्थ्यान्यो मां न च क्वचित् ॥४००॥

यथैवं शुकराजोऽवक् यदा राजायमुत्तमः ।
आकृष्टस्तव पुण्येन समायातोऽत्र भामिनि ! ॥४०१॥

दृष्टिं कृत्वा स्थिताः सर्वे कुमार्यूचे शुकाग्रतः ।
अनेन तव भूपेन मोहितं मम मानसम् ॥४०२

स्थातव्यमन्यथा कीर ! भूपोऽयं दिवसत्रयम् ।
मातापित्रोः समादेशात् परिणेष्यामि नान्यथा ॥४०३॥

यदेनं मे न दास्यन्ति तदा मत्मरणं ध्रुवम् ।
इति निश्चित्य मद्वाचा स्थातव्यं भूपते ! त्वया ॥४०४॥

एतद्वचनमाकर्ण्य राजा [illegible] ।
एवं कृत्वा [illegible] ॥४०५॥

तावत्कन्या स्खलज्जातो वस्त्राभ(व?)रणपूर्वकम् ।
सखीभिः सपरीवारा गता गर्भगृहान्तरे ॥४०६॥
राजा शुकं समादाय सहर्षः[1] सैन्यमागतः ।
प्रशंसां शुकराजस्य कुरुते स्म[2] मुहुर्मुहुः ॥४०७॥
राजवर्गीयलोकाग्रे कथयामास[3] भूपतिः ।
शुकराजो मया प्राप्तो नूनं चिन्तामणीसमः ॥४०८॥
कन्या जिनार्चनं कृत्वा स्नेहाकुलितमानसा ।
शून्यचित्ता गृहे प्राप्ता सखीभिः परिवारिता ॥४०९॥
विकृतां विह्वलां कन्यां ज्ञात्वा त्रैलोक्यसुन्दरी ।
पृच्छति स्म[4] सखीवर्गं पुत्री[5] चिन्तातुरा कथम् ॥४१०॥
तद्वृत्तान्तं सखीदिष्टं ज्ञात्वा राज्ञी न्यवेदयत्[6] ।
भूपतेरग्रतः प्रायोभिप्रायं स्वसुताकृते[7] ॥४११॥
भूपेनोक्तं ततो भव्यं जातं मन्ये हृदीप्सितम् ।
[8]करस्खलितघृतपूरं पतितं शर्करोपरि ॥४१२॥
उग्रसेनस्ततो राजा सुतापाणिग्रहोत्सुकः ।
चन्द्रसेननृपस्यान्ते जगाम[9] सपरिच्छदः ॥४१३॥
चन्द्रावतीपतिस्तावद्दृष्ट आस्थानमण्डपे ।
चामरैर्वीज्यमानस्तु छत्रेणालंकृतः स्थितः ॥४१४॥
सरसाः सगुणाः सौम्या वामदक्षिणयोर्बुधाः[10]।
अनेकमन्त्रिसामन्तालंकृतो दृष्ट उन्नतः ॥४१५॥
उग्रसेनः सभामध्ये संनिधौ यावदागतः[11]।
तावच्चन्द्रावतीशोपि प्रोत्थितः संमुखस्ततः ॥४१६॥[12]
स्नेहेन च समालिङ्ग्य नमस्कारपुरःसरम् ।
प्रेम्णै(म्णे)कस्मिन्विष्टरेपि निविष्टं भूपतिद्वयम् । ४१७।

[1]प्रकृष्टविनयेनापि सुधामधुरया गिरा ।
चन्द्रसेननृपस्याग्र उग्रसेनो व्यजिज्ञपत् ॥४१८॥

धन्योऽहं मत्पुरं धन्यं धन्या राज्यरमा मम ।
धन्या वेला घटी धन्या यज्जातं तव दर्शनम्[2] ॥४१९॥

पवित्रय पुरं तत्त्वं पवित्रय पुरीजनम् ।
प्रसादं कुरु मे भूप ! पवित्रय गृहं मम[3] ॥४२०॥

विनयावर्जितो भूपश्चन्द्रावत्या[4] नरेश्वरः ।
शुकपञ्जरमादाय चचालाल्पपरिच्छदः ॥४२१॥

महतो विनयाद् भूपो नगरेऽपि प्रवेशितः ।
मर्दनोद्वर्तनस्था(स्ना)नभोजनाद्यैश्च सत्कृतः ॥४२२॥

ताम्बूलास्वादनं कृत्वा वामशायी क्षणं लभूत्[5] ।
प्रसुप्य चोत्थितं[6] ज्ञात्वोग्रसेनः समुपागतः ॥४२३॥[7]

विनयादग्रतो भूपोऽभ्येत्य विज्ञपयत्यदः[8] ।
सुहृदभ्यागतो गेहे प्राप्यते भाग्ययोगतः ॥४२४॥

तव पार्श्वे गजाश्वादि स्वर्णादिमणिमौक्तिकम् ।
वर्तते त्वद्गृहे भूरि भवतः किं ददाम्यहम् ॥४२५॥

परमस्मद्गृहे त्वस्ति कन्यारत्नं मनोरमम् ।
पुष्का(ष्पा)वतीति नाम्ना या मम तां त्वं[9] विवाहय ॥४२६॥

चन्द्रसेननृपस्तावदुग्रसेनाय भाषते ।
त्वया दत्ता मया प्राप्ता[10] दानं किं स्यादतः परम् ॥४२७॥

शोभने दिवसे प्राप्ते विवाहं च सविस्तरम् ।
कारयामास भूनाथः सुतायास्तद्वरस्य च ॥४२८॥

करमोचनके दत्ता गजाश्वा वस्त्रभूषणे ।
चन्द्रावतीशे कन्याया[1] जातः स्नेहः परस्परम् ॥४२९॥

कियन्त्यहान्यपि स्थित्वा ह्युग्रसेनगृहे नृपः ।
जातौ प्रीतिपरौ तौ द्वावत्यन्तं भूपती तदा ॥४३०॥

मुत्क(कृत्वा)लाप्य ततः स्थानाच्चलितश्चन्द्रभूपतिः[2] ।
पुष्पावत्याः पिता माता शिक्षां दत्तः शुभावहाम् ॥४३१॥

भक्ता श्वशुरश्वश्रूणां सपत्नीनिन्दनं त्यज ।
पतिप्रेमपरा वत्से ! त्वं तिष्ठ[3] सहचारिणी ॥४३२॥

यथा[4]–जंपिज्जइपियं विणयं करिज्ज वज्जिज्ज पुत्ति ! परनिंदं ।
विसणे वि हु मा मुंचसु देहच्छाय व्व नियनाहं ॥४३३॥

मिलित्वा पुत्रिजामात्रोर्दत्त्वा शिक्षामपि प्रियाम् ।
सपरिच्छदोग्रसेनो व्याघुट्य सदनं ययौ ॥४३४॥

चन्द्रसेनस्ततो राजा पुष्पावत्यान्वितः स्त्रिया ।
शुकेन सह तं मार्गं गोष्ठ्या स स्मातिवाहति ॥४३५॥

अविलम्बप्रयाणेन प्राप्ता चन्द्रावती पुरी ।
मन्त्रिभिर्निर्मितोत्साहः प्रविष्टो नृपतिः पुरे ॥४३६॥

अन्तःपुरे गतो राजा सर्वोप्यन्तःपुरीजनः ।
पट्टराज्ञीं विनागत्यानमन्नृपपदद्वयम्[5] ॥४३७॥

सर्वासां च सपत्नीनां पुष्पावत्यमिलत्प्रिया ।
ताभिर्युता वधूस्तत्र गता[6] यत्र शशिप्रभा ॥४३८॥

घनेन[7] विनयेनाथ[8] पुष्पावत्या शशिप्रभा ।
समुत्थाप्य[9] समानीता प्रक्षिप्ता भूपपादयोः ॥४३९॥

1
८
९

शुकोवक् पञ्जरस्यास्ये फलं प्राप्तं कदाग्रहात् ।
यथा कृतं तथा प्राप्तं न दोषो भूपतेरियम् ॥४४०॥

उक्तहास्यं विभाव्येत्थं शुकोभून्मुदितान्तरः ।
राज्ञापि नूतनस्नेहात् क्रीडनेन्तःपुरे स्त्रिया ॥४४१॥

चन्द्रसेनस्य कन्यास्ति नाम्ना मदनमञ्जरी ।
परमं यौवनं प्राप्ता वरयोग्या महागुणा ॥४४२॥

एकदा कन्यका दृष्ट्वा शुकं निर्व्यञ्जनस्थितम् ।
पप्रच्छ रहोगतां चिन्तां न शृणोति यथा परः ॥४४३॥

शुकराज ! त्वया प्रायो भूमीमण्डलमध्यतः ।
राजानो बहवो दृष्टाः सद्गुणाढ्य कृपापराः ॥४४४॥

परं पृच्छामि ते पार्श्वाच्छ्रुत्या देया प्रियङ्करी ।
अहं प्रौढं वयः प्राप्ता कं भूपं वरयाम्यहो ॥४४५॥

शुकोवग् यद्यहं पृष्टस्तदा त्वं मद्वचः कुरु ।
गुणानामेकमावासं वर त्वं भोजभूपतिम् ॥४४६॥

वर्णने भोजभूपस्य देवाचार्योपि न क्षमः ।
तव योग्यो वरः सोऽस्ति रोचते चाथ तत्कुरु ॥४४७॥ युग्मम्

कन्योचे कीर ! सत्योक्तिः परमस्त्यत्र कारणम् ।
भूपते बहुभार्योसौ मां स्मरिष्यति वा न वा ॥४४८॥

कीरोवग्भोजभूपस्य स्त्रियस्त्रः सन्ति वल्लभाः ।
चतुःषष्टिसहस्राण्यन्या नार्यो निशम्यते ॥४४९॥

गुणैः प्रधानतास्यास्ति रूपेण न हि किंचन ।
भोजस्य पट्टमहिषी सूत्रधारसुता यथा ॥४५०॥

कुलाकृते कथं याति सूत्रधारस्य कन्यका ।
कथं विवाहिता राज्ञा सा कथा कथ्यतां शुक ! ॥४५१॥

कीरः प्राह शृणु त्वं भो ! भाग्याढ्यो भोजभूपतिः ।
सुखेन राज्यं कुर्वन्नास्ते यथा हरिः ॥४५२॥

अन्यदास्थानसंस्थस्य भूपस्याग्रे समागतौ ।
चटिका चटकश्चैकः कलहन्तौ परस्परम्[1] ॥४५३॥

मनुष्यभाषया ब्रूते चटको भूपतेः पुरः ।
स्वामिन्नेषास्ति भार्या मे अपत्ये च[2] तवाग्रतः ॥ ४५४ ॥

मया कलहतेप्येषा[3] वराकी प्रतिवासरम् ।
स्फे (स्फो)टयास्मद्विरोधं त्वं[4] कुरु स्वामिन् ! पृथक् पृथक् ॥४५५॥

गृहलक्ष्मीरपत्ये च न्यायमार्गे यदा मम ।
समायाति तदा देयं न चेदस्याः प्रदीयताम् ॥४५६॥

भूपोवग् न्याय एवायमपत्यानि पितुः किल ।
चटिकोचे कथं राजन्नीदृशं भाषितं वचः ॥४५७॥

ये च मात्रा धृता गर्भे सोढा यत्प्रसवव्यथा ।
यया च पालिता बालाः सा भूपेनान्यथा कृता ॥४५८॥

राजोचे क्षेत्रदृष्टान्तं क्षेत्रे वपति कर्पु(र्ष?)कः ।
निष्पन्ने सोपि गृह्णाति न हि क्षेत्रस्य किंचन ॥४५९[5]॥

चटिकोचे यदाप्येवं प्रमाणं भूपतेर्वचः ।
टंक्युत्कीर्णाक्षरैः शालायां न्यायोयं विलिख्यताम्[6] ॥४६०॥

चटिकोक्तं कृतं राज्ञा[7] भूपोक्तं च तया कृतम् ।
गता सापत्यदुःखेन तीर्थे कुत्रापि कामिके ॥४६१॥

धारायां भोजभूपाग्रे जातिस्मृतियुता सुता ।
भवेयमुत्तमे वंशे झंपां संचिन्त्य सा ददौ ॥४६२॥

धारायां सूत्रधारस्य सोमदत्तस्य मन्दिरे ।
पञ्चोच्चग्रहसंभृता सुता सत्यवतीत्यभूत्[8] ॥४६३॥

लाल्यमाना प्रयत्नेन ववृधे सा दिने दिने ।
जातिस्मृतिगुणोपेता जाता द्वादशवार्षिकी ॥४६४॥

गृहं यत्क्रियते कार्यं तद्वचस्तु न लुप्यते ।
निर्गुणिष्ठा मुखे मिष्टा दुष्टा दुष्टजनेऽपि सा ॥४६५॥

सत्यवत्याह्वि नैकस्मिन् कथितं पितुरग्रतः ।
गृहीतं बहुमूल्येन सुजात्योऽश्वोऽतिसुन्दरः ॥४६६॥

सुतावचनमात्रेण गृहीतो घोटकोऽद्भुतः ।
विख्यातो नगरीमध्ये सद्गुणात् तत्पराक्रमात् ॥४६७॥

विद्यन्ते यस्य कस्यापि घोटिकाः सदनस्थिताः ।
ताः सगर्भा बभूवुश्च सत्रधारस्य घोटकात् ॥४६८॥

पूर्णे गर्भे प्रसूतास्ते जात्याश्वाः सुमनोहराः ।
विशालः सत्रभृत्पुत्र्या निजाश्वान् पृच्छति स्म शम् ॥४६९॥

तेषु तुरङ्गप्रसादेन किशोराः सन्ति नोऽश्वजः ।
आवदन्त्यपि लोकेभ्यः कतिचिद्दासगा गताः ॥४७०॥

एकदा तेन भूतेन सत्रधारेण तैः समम् ।
समागच्छन् झगटकः समभ्यन्तां सदश्वकाः ॥४७१॥

अश्वाधिपा वदन्त्येवं किं वयं नाथवर्जिताः ।
किं वा भूपस्त्वमेवास्यस्माभिर्यत्कलहायसे ॥ ४७२ ॥

सत्रधारस्ततः प्रोचे स्थिरीभाव्यं किमाकुलाः ।
दास्यत्यस्यद्विभोरग्रे गृ(ग्र)हीष्यामि तुरङ्गमान् ॥ ४७३ ॥

कलहो दारुणो जातो लोकेषु न निवर्तते ।
समागते भूपतेरग्रे पृच्छन्तु घोटकाधिपाः ॥ ४७४ ॥

भूपेनाकर्ण्य वृत्तान्तः(न्तं) समाहूतः स सत्रवित् ।
सन्दर्शी सुताबुद्धः समायातो नृपान्तिके ॥ ४७५ ॥

तत्स्वरं समाकर्ण्य आनतुः स भूपतिः ।
सुतयार्थं पृच्छति स्म विवादोऽयं क निश्चितः ॥ ४७६ ॥

सूत्रधारसुता प्रोचे शिक्षितोयं तवान्तिके ।
सकोपः प्राह भूपालो मत्पार्श्वाच्छिक्षितः कथम् ॥४७७॥

साप्याहास्थानशालायां[1] टंक्युत्कीर्णाक्षरावली ।
वाच्यतां यच्चटिकाया न्यायमार्गः कृतस्त्वया ॥४७८॥

गजदन्तावलिन्यायादग्रतः स्यान्महद्वचः ।
प्रदापयतु चास्माकं किशोरान् मत्तुरंगजान् ॥४७९॥

सामन्ता मन्त्रिभिः सार्धं ज्ञात्वाभिप्रायमीशितुः ।
स्वं स्वं किशोरकं तस्मै ददुः सूत्रभृते क्षणात् ॥४८०॥

विस्मिता च सभा सर्वा गृहीताश्च किशोरकाः[2] ।
सूत्रधारः समायातः सत्यवत्यान्वितो[3] गृहे[4] ॥४८१॥

दुष्टचित्तेन भूपेनाहूतः सूत्रभृदप्यथो ।
सत्कृत्य बहुधा पूर्वं कथयामास तं प्रति ॥४८२॥

कुरु दुर्गं पुरोमुष्याः कथयामि यथाविधि ।
कपिशीर्षोपरिष्टात्तु कुरु दुर्गं[5] [6]ममाज्ञया ॥४८३॥

नो चेत्तव विरुद्धं स्याज्ज्ञात्वा कुरु यथोचितम् ।
विलक्षः सूत्रधारस्तु श्रुत्वैवं च गतो गृहे ॥४८४॥

सचिन्तं पितरं ज्ञात्वा[7] सत्यवत्यपि पृच्छति ।
यथोक्तं भूपतेर्वाक्यं कथितं तत्सुताग्रतः ॥४८५॥

किमेतद्वचनं तात ! स्थीयतां कुरु भोजनम् ।
हृष्टस्तेनैव[8] वाक्येन कृताचारः स[9] भुक्तवान् ॥४८६॥

सुताशिक्षामुपादाय गतो भूपस्य संनिधौ ।
शिल्पी व्यजिज्ञपद्भूपं श्रूयतां मद्वचः प्रभो ॥४८७॥

कियदन्नं भोजनाय[10] यदि दापयति क्षितीट्[11] ।
तदा निश्चिन्ततामेत्या(त्य)[12] पुर्यां दुर्गं करोम्यहम् ॥४८८॥

कोष्ठके भूभुजा दिष्टं देयमन्नं मदाज्ञया ।
विज्ञाय कोष्ठकेऽपि सत्यवत्यागता पुनः ॥४८९॥

मापं करं समादाय यावन्मापति कोष्ठिकः ।
आदिष्टं कन्यया तावन्मापितुं त्वं न जानसे ॥४९०॥

कोष्ठिकोऽवग्यथा पूर्वैर्मापकैर्माप्यते मया ।
माप्यते तु तथा गत्या त्वमन्यथेत्सि तद्वद ॥४९१॥

कन्योचे कुरु मद्वाक्यं मापे पूर्णे शिखां कुरु ।
पश्चात्स्पृश्य मापं त्वं देयमन्नं विधिनामुना ॥४९२॥

किमज्ञानासि बाले त्वं कोष्ठकेनापि भाषितम् ।
जातः परस्परं वादो गतं भूपस्य संनिधौ ॥४९३॥

उभयोरपि वृत्तान्तं श्रुत्वा भूपेन भाषितम् ।
कथं बाले ! शिखा पूर्णे क्रियतेऽदोऽस्ति कौतुकम् ॥४९४॥

कविर्लोपोऽपि दृगं कुर्ते तत्र किं न कौतुकम्' ।
वक्रोक्तिवचनं राजा हृष्टदृष्टान्तकोऽजनि ॥४९५॥

प्रीतिषदा(दृ?)क्कन्यायाम्(म?)भूपोऽप्येवं जगाद सः ।
पूर्वं मया विचार्येयं ततो वृद्धैः परीक्षणम् ॥४९६॥

एवं विमृश्य भूपालः सभाग्गृहं गतः ।
यावदित्था सा सुमेधा सत्यवती विवाहिता ॥४९७॥

कन्योत्सवे तेन दत्तान्यैतास्ताः) सभूषणाः ।
कृत्वा तद्गृहात्स्वं पुनरेवं जजल्प सा ॥४९८॥

अथवा मद्वचो बाले ! यच्छामि तवाग्रतः ।
माता पिता तव भ्राता भृत्योऽन्वयः परिच्छदः ॥४९९॥

सर्वेषां मद्गृहादस्मात्समागत्य सद्विभूषणम् ।
यदा संपदश्च तत्समानस्यं यदा गृहे ॥५००॥

एतद्वचनमाख्याय भूपोप्यागा[1]न्निजे गृहे ।
मातृपित्रादिकान् दृष्ट्वा कन्या दीनान्वदत्यपि ॥५०१॥

चिन्ता कार्या भवद्भिर्नो दृश्यं मद्बुद्धिकौशलम् ।
कियद्भिर्वासरैरेते मया पूर्या मनोरथाः[2] ॥५०२॥

इति शान्तवचः प्रोच्य स्थापितः स्वपरिच्छदः ।
कियत्स्वहस्सु भूपोपि ससैन्यो निर्गतः पुरात् ॥५०३॥

सीमालाः सन्ति भूपाला ये केपि च महाबलाः ।
भोजभूपप्रतापेन जाताः सर्वे निरर्थकाः ॥५०४॥

ज्ञात्वा भूपस्य वृत्तान्तं सत्यवत्या [3]विचिन्तितम् ।
सूत्रधाराय विज्ञाप्य सामग्री प्रगुणीकृता ॥५०५॥

नरवेषं च जग्राह कियत्सख्यन्विता तदा ।
वैदेशिकाः स्वर्णकाराः सज्जिताः सार्थहेतवे ॥५०६॥

सुवेषाः सद्गुणाः श्रेष्ठाः सेवकास्तेपि सत्कृताः ।
सालङ्कराः सुशोभाढ्यास्तुरगस्तुरगी य(त ?)था[4] ॥५०७॥

एवं समग्रसामग्रीयुता[5] पुंवेषधारिणी ।
सत्यवती दिनैः कैश्चित् प्राप्ता सैन्येस्य तत्क्षणात् ॥५०८॥

स्थिता प्रदेशेप्येकत्र भूपस्य मिलने गता ।
तत्रापि लब्धसत्कारोपविष्टास्थानमण्डपे[6] ॥५०९॥

प्रधानैः सेवकः पृष्टः कोसौ हि प्रवराकृतिः ।
वैदेशी सेवनायातो नाम्नासौ सत्यसंगरः ॥५१०॥

कुमारेण समं प्रीतिः संजाता तस्य भूपतेः[7] ।
निर्वाहाय ददौ द्रव्यं न ललौ सत्यसंगरः ॥५११॥

पुरग्रामैर्न मे कार्यं न हि द्रव्यैः प्रयोजनम् ।
द्यूतक्रीडार्थमायातो भोजभूप ! तवान्तिके ॥५१२॥

कुमारो भूभुजा सार्धं क्रीडति स्म दिवानिशम् ।
तयोरत्यन्तरसे क्वापि स्वभोज्यमपि विस्मृतम् ॥५१३॥

तुल्यं ज्ञात्वा नृपं तत्र कुमारस्तु प्रजल्पति ।
तवाश्वेऽपि हि ढालयन्ते पाशका भूपते ! मया ॥५१४॥

तथास्तु भूभुजाप्युक्तः कुमारेण जितस्ततः ।
प्रेषयामास भूपाश्वान् स्वस्थाने पुनरप्यवक् ॥५१५॥

शरीराभरणं सर्वं स्थाप्यतां देव ! सांप्रतम् ।
तथा कृते च भूपेन कुमारेणापि तज्जितम् ॥५१६॥

स्थाने स्वे तत् प्रेषयित्वा कुमारोऽवक् पुनस्ततः ।
छत्रचामरकादीनि स्थाप्यन्तामधुना तव ॥५१७॥

राज्ञा तान्यपि मुक्तानि कुमारेण जितानि च ।
स्वस्थाने प्रेषितान्येवं शयनाय समुत्थितः ॥५१८॥

भूपाश्वाद्गुर्विणी जाता कुमारस्य तुरङ्गिका ।
तेन तादृशभूषादि स्वर्णकारैस्तु कारितम् ॥५१९॥

तत्तु तादृशमेवाभूच्छत्रचामरकाद्यपि ।
एवं कृत्वा निजं कार्यं कुमारेणापि चिन्तितम् ॥५२०॥

सर्वं भूपस्य यद्वस्तु दीयते नहि सुन्दरम् ।
तस्मात् कौतुकेनेदं गृहीतं क्रीडता मया ॥५२१॥

एवं दृष्ट्वा सभा सर्वा हृदये च चमत्कृता ।
सत्यसंगरको नाम साधकं कृतवाञ्जितम् ॥५२२॥

एवं च प्रत्यहं क्रीडन्नेकदा सत्यसंगरः ।
कथयामास भूपस्य क्रीडन्नेव स्वभार्यया ॥५२३॥

स्वभार्या दीयते तुभ्यं मयका यदि हार्यते ।
यदि त्वया हार्यते स्त्री देया मम दिनाष्टकम् ॥५२४॥
कां चिद्दासीं प्रदास्यामि चिन्तितं हृदि भूभुजा[1] ।
क्रीडति स्म समं तेन विमृश्यैवं नरेश्वरः[2] ॥५२५॥
जितः स भूभुजा[3] सद्यो जातः[4] कोलाहलः[5] क्षणात् ।
कृत्रिमं च विलक्षत्वं प्राप्तोसौ सत्यसंगरः ॥५२६॥
ऋतुकाले कियत्स्वेषा दिवसेषु गता स्वयम्[6] ।
भूपपार्श्वे सशृङ्गारा स्त्रीवेषा दिव्यगन्धभृत्[7] ॥५२७॥
कर्पूरागरुकस्तूरीधूपधूम्रेण वासिता ।
सताम्बूला समायाता दिव्यरूपं दधत्यसौ[8] ॥५२८॥
तथा चातुर्यतस्तिष्ठेद्यथा भूपो न लक्षते[9] ।
प्रहरत्रितयं तस्थौ भूपतेरन्तिके तु सा[10] ॥५२९॥
अपकीर्तिं निजां श्रुत्वापवादाद्भीतमानसः ।
भूपतिः प्रेषयामास पश्चात्तां सदने निजे[11] ॥५३०॥
तयास्ति[12] प्रत्ययार्थं च गृहीता[13] भूपमुद्रिका[14] ।
समायाता निजे स्थाने चतुर्थप्रहरे निशः ॥५३१॥
कार्यसिद्धिः कृता सम्यग् भूपस्योक्तानुसारतः[15] ।
धारायामेत्य[16] वृत्तान्तः कथितो मातुरग्रतः ॥५३२॥
मुदिताः स्वजनाः सर्वे पितृभ्रातृमुखास्तदा[17] ।
सुखितागमयत्कालं कियन्त्यपि दिनानि सा[18] ॥५३३॥
भोजभूपः समायातो जित्वा सीमालभूपतीन् ।
राज्यं सम्यक् पालयति[19] कोपि नोपप्लवास्थित् ॥५३४॥

मन्त्यवन्त्याः स सद्गर्भो ववृधे निरुपद्रवः[1] ।
नवा च पूर्णैर्दिवसैः[2] सूनुः सुतः शुभे दिने[3] ॥५३५॥

उच्चस्थाने ग्रहाः पञ्च परमोच्चाश्च केचन ।
लग्नतः केन्द्रगोरस्थोरिष्टहान्यै च ते ग्रहाः ॥५३६॥

सूत्रधारः प्रमोदेन करोति[4] स्म महोत्सवम् ।
चक्रुर्नालककर्मापि गोत्रवृद्धाः स्त्रियोऽपि ताः ॥५३७॥

नगरशुद्धिस्तु संजाताद्दशमे[5] दिवसे कृता ।
भोजितो बन्धुवर्गोऽपि नामस्थापनकं व्यधात् ॥५३८॥

देवराजोऽभिधानेन[6] लाल्यमानो दिने दिने ।
क्रमेण पञ्चवर्षीयो जातो रूपगुणाधिकः ॥५३९॥

तावत्कृतकिशोरास्ते संजाताश्च तुरङ्गमाः ।
शोभने दिवसे सत्यवत्येवमकरोत्पुनः[7] ॥५४०॥

स्नापितः पाणिना बालो विलु(लि)प्तः कुङ्कुमद्रवैः ।
अलङ्कृतः सुवर्णेन दिव्यभूषणभूषितः ॥५४१॥

कर्णेन चामराभ्यां च कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः ।
भोजराजोऽवतंसेन देवराजो विनिर्मितः ॥५४२॥

सुतो(तं) हये समारोप्य स्वयं स्थित्वा सुखासने ।
वादित्रे वाद्यमानेष्वा गता तत्र चमूवृता[8] ॥५४३॥

आस्थानस्थोऽपि भूनाथश्चिन्तयामास मानसे ।
'चित्रं जनसमूहोऽयं किमायातीति पश्यति[9] ॥५४४॥

तावत्स्वकृता 'नन्द चित्रदा भोजभूपतिः[10] ।
सन्तुष्टः समायाति यथादिष्टा त्वया पुरा ॥५४५॥

सुतेनोक्तं च यद्वेवं तदा प्रत्यायनस्य माम ।
एवं श्रुत्वा ददौ राजा तां 'नामाङ्कितमुद्रिकाम् ॥५४६॥

स्वकीयां मुद्रिकां दृष्ट्वा हृष्टो हृदि महीपतिः[1]।
स्वोत्सङ्गे सुतमारोप्य जातो रोमाञ्चकञ्चुकी ॥५४७॥
विसर्जिता सभा सर्वा नीता चान्तःपुरे प्रिया[2] ।
मिमिले च तया सार्कं विस्मयाकुलमानसः[3] ॥५४८॥

बुद्धिप्रपञ्चचतुरां ज्ञात्वा तां स नरेश्वरः ।
सकलान्तःपुरीमध्ये पट्टराज्ञीं चकार च ॥५४९॥
शुकोवक् शृणु कौमारि ! गुणैः किं किं न लभ्यते[4] ।
एतदाख्यानकं श्रुत्वा प्रोचे मदनमञ्जरी ॥५५०॥

त्वद्वचो हि मया कीर ! कर्तव्यं नात्र[5] संशयः ।
नरोन्यो वरणीयो मे[6] सहोदरसमो न हि[7] ॥५५१॥
इति निश्चित्य कौमारी जाता भोजेनुरागिणी ।
ज्ञात्वानुरागं तन्माता वदति स्म नृपाग्रतः ॥५५२॥

सुतामनोरथं ज्ञात्वा चन्द्रसेनमहीपतिः[8] ।
अमात्यं प्रेषयामास धारायां भोजसंनिधौ ॥५५३॥
दिनैः स्तोकैरमात्योपि प्राप्तो धारापुरीं ततः ।
प्रासादमन्दिरश्रेणीं गतोपश्यच्चतुष्पथे[9] ॥५५४॥

कोटीश्वराश्च ये सन्ति दुर्गमध्ये वसन्ति ते[10] ।
लक्षेश्वरा बहिःस्थाश्च वसन्ति क्षितिपाज्ञया ॥५५५॥
तेषां गृहापणान्पश्यन् संप्राप्तो भूपमन्दिरे ।
आश्चर्यं विविधं[11] तत्र किं किं पश्यति युग्मदृक् ॥५५६॥

शुभ्रान्मनोरमांस्तुङ्गान् स्वर्णकुम्भैरलङ्कृतान् ।
ऊर्ध्वदृग् व्यथितग्रीव आवासान् पश्यति स्म सः ॥५५७॥
गजशालागजान् मत्तानपश्य[12]त्पर्वतोपमान् ।
हव्य(य)शालाहयान् सूर्यरथास्वाभानपश्यन[13] ॥५५८॥

राजानो मिलितास्तत्र जाता प्रीतिः परस्परम् ।
क्वाप्यावासे समानीय स्थापितः सपरिच्छदः ॥५७१॥
शुकं निर्व्यञ्जनं ज्ञात्वा कुमार्यागत्य पृच्छति ।
त्वदादेशरतो[1] भोजः शिक्षां देहि ममाधुना[2] ॥५७२॥
कीरोवग्यदि शिक्षां मे करोषि गुणशालिनि ! ।
तदा सर्वसुखप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥५७३॥
दत्त्वा शिक्षां कुमार्यास्तु प्रेषिता सा निजे गृहे ।
शुकस्य पञ्जरं तेन नीतं [3]विवाहमण्डपे ॥५७४॥
लग्नस्यावसरे प्राप्ते हयेनारुह्य भूपतिः ।
दानेन प्रीणयन् दीनान् राजद्वारे समागतः ॥५७५॥
कृता विवाहजाचारा नीतश्चतुरिकान्तरे ।
भोजेन सह कौमारी जगृहे[4] फेरकत्रयम् ॥५७६॥
चतुर्थे फेरके[5] प्राप्ते कुमार्यप्यूर्ध्वतः[6] स्थिता ।
पृष्टा च सा कथं भद्रे ! त्वं नो दास्यसि फेरकम् ॥५७७॥
पितृभ्यां कारणं पृष्टं कथयत्येव कन्यका ।
भोजोयं न भवेद्भूपो [7]ह्यधुनैव श्रुतं मया ॥५७८॥
पित्रोक्तं किं जनोक्तेन प्रत्यक्षोयं स भूपतिः ।
कन्यकोचे च यद्येवं भोजवद्दर्शयेत्कलाम् ॥५७९॥
परकायाप्रवेशस्य कलां मे दर्शयिष्यति ।
तदेनं परिणेष्यामि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥५८०॥
सुताया निश्चयं ज्ञात्वा भूपो भोजं[8] व्यजिज्ञपत् ।
स्त्रियाः कदाग्रहः सोयं भञ्जनीयो यथातथा ॥५८१॥
चन्द्रसेनवचः श्रुत्वा भोजभूपो व्यजिज्ञपत् ।
एकं मृतं छगलकं समानय ममान्तिके ॥५८२॥
इमां तस्य गिरं श्रुत्वा शुकः [9]सञ्जीदमृव सः ।
निजदेहं संग्रहीष्यामीति चिन्तापरः स च ॥५८३॥

गता प्राप्ता च राज्यश्रीश्चान्यः पाणिग्रहोत्सवः ।
इति हर्षपरो लोकः प्रवेशयति[1] भूपतिम् ॥५९६॥

भोजभूपः समायातः प्रमोदान्निजमन्दिरे ।
अन्तःपुर्यादयः सर्वे समायाता नृपान्तिके ॥५९७॥

पूर्वोक्ताभिः समस्याभिरुपलक्ष्य नृपोत्तमम्[2] ।
योजिताञ्जलयः सर्वे प्रणेमुः पदपङ्कजम् ॥५९८॥

मन्ये चिन्तामणिः प्राप्तोथवा कल्पतरुः किमु ।
नृपस्य दर्शनं जज्ञेन्तःपुरीणां[3] प्रमोददम् ॥५९९॥ यथा—[4]

पेम्माउ राण[5] णवजुव्वणाण ह्वाण मेलए जाए[6] ।
जं संमु इयं सुक्खं[7] तं भयवं केवली मुणइ ॥६००॥

तनुं स्वां गृहीत्वास्य धूर्तस्य पार्श्वात्
ततश्चन्द्रसेनस्य पुत्रीयमूढा ।
अवन्तीं[8] गतो राज्यधानीं स जीया[9]-
द्धरां भुज्यमानश्चिरं भोजभूपः ॥६०१॥

इति [10]भोजचरित्रे परकायाप्रवेशविद्याभ्यसनो देवराजजन्मवर्णनो नाम चतुर्थः प्रस्तावः ॥४॥

ईदृग्विधा च राज्यश्रीर्भुज्यमाना निरन्तरम् ।
दीनेभ्योऽदापयद्दानं श(स) आगाराण्यमण्डयत्[1] ॥१॥

अन्तःपुरस्थितो भूपः कियद्भिर्दिवसैस्ततः[2] ।
राज्यश्रियं पालयन् सन् गमयामास[3] वासरान् ॥२॥

राज्ञी सगर्भा संजाता नाम्ना मदनमञ्जरी ।
यत्नतः पाल्यमानास्तु पूर्यन्ते दोहदाः पुनः ॥३॥

परिपूर्णैर्दिनैर्जातः शुभग्रहनिरीक्षितः ।
चन्द्रराजोऽङ्गजो नाम्ना[4] वृद्धिंगतो दिने दिने ॥४॥

देवराजोऽष्टवर्षीयो[5] चन्द्रोऽभूत्पञ्चवार्षिकः ।
अर्पितौ तत्पिता राज्ञः[6] विद्याध्ययनाय तौ ॥५॥

दिनैः स्तोकैर्जातौ सर्वशास्त्रपरायणौ ।
समस्तकलाभ्यासौ बाल्यादध्ययनप्रेमिणौ ॥६॥

देवराजोऽपि संजातः क्रमाद् द्वादशवार्षिकः ।
चन्द्रराजः पुनर्जज्ञे नववार्षिकः क्रमात् ॥७॥

उभयोः प्रीतिरत्यन्तं नखमांसाधिकाऽपि च[7] ।
अथवा सोदराणां प्रीतिः श्लाघ्या जनेऽपि हि ॥८॥ यथा[8]—

सह जग्गि रामा[9] सह सोयणाइ सह हर[10] सरोसवंताण ।
नयणा बन्धवजाणं अजम्म[11] अकित्तिमं पिम्मं ॥९॥

सोमभूपस्य तौ पुत्रौ प्राज्ञौऽन्योऽन्यनिरन्तरौ[12] ।
गुणैरानन्दभावेन सज्जनः को न जायते ॥१०॥

चन्द्रसेनेन भूपेन प्रहिता अन्यदा नराः ।
उत्सुका मिल[1]नायेयुर्भोजस्य प्रान्तिके क्षणात्[2] ॥११॥

भूपोद्याप्यस्ति संसुप्तः कथितं मध्यवर्तिभिः ।
उत्सु[3]कान् पुरुषान् ज्ञात्वामात्यैरेवं विचिन्तितम् ॥१२॥ यथा[4]—

बालको नृपतिश्चैव गुरुः सिंहोथवा रिपुः ।
एते सुप्ताः स्थिताः सन्तो जाग्रणीयाः क्वचिन्नहि ॥१३॥

तत् किं कुर्मोधुनामात्या यावदेवं विचिन्तयन् ।
तावत्कुमारौ भूपस्य क्रीडन्तौ समुपागतौ[5] ॥१४॥

अमात्यवचनैस्तौ द्वौ गतौ यत्रास्ति भूपतिः ।
प्रबुद्धस्तद्वचः श्रुत्वा कुर्वंश्चित्ते घनां रुषम्[6] ॥१५॥

केन दुष्टात्मना जागरूकोहं निर्मितः क्षणात् ।
यावत्पश्यति क्रुष्टासिस्तावद्दृष्टौ कुमारकौ[7] ॥१६॥

अव(च ?)ध्याविति भूपोदात्पुत्रयो[8]र्देशपट्टकम् ।
यावत्क्षेत्रे मदाज्ञास्ति कार्या तावत्स्थितिर्न हि ॥१७॥

यदीन्द्रस्याप्सरोमध्ये भानुमत्यस्ति नामतः ।
तामानीय समेतव्यं नान्यथा दृष्टिगोचरे ॥१८॥

पितुः शिक्षावतो वाचं[9] शीर्षे सारोप्य तत्क्षणात् ।
पाणिना खड्गमादाय निर्गतौ विकसन्मुखौ ॥१९॥

गत्वा मात्रन्तिके नत्वा तौ व्यजिज्ञपतामिति[10] ।
ताताज्ञायाः प्रमाणार्थमावाभ्यां गम्यते पुनः ॥२०॥

गच्छतः पथि सोमाली भि(खि)द्येते नोष्णशीततः ।
क्षुत्तृपापीड्यमानौ तौ कानरत्वं न गच्छतः ॥२१॥

बाल्येपि वर्तमानौ तौ महासाहसशालिनौ ।
मार्गमुल्लङ्घ्य संप्राप्तौ समुद्रतटके पुरे ॥२२॥

यदि शक्तिस्तवास्तीति ह्युपकारं तदा कुरु ।
संनद्धः स पुमान् सद्यः परोपकरणक्षमः ॥३४॥

दत्त्वा शिक्षां निजभ्रातुः स्वबाहुबलपूरितः[1] ।
नाङ्गरशृङ्खलालग्नो ददौ झम्पां महोदधौ ॥३५॥

लग्नः सन् शृङ्खलादेशे[2] गतो दूरे कियत्यपि ।
तावत्प्रासादशृङ्गाग्रे विलग्नादर्शि[3] शृङ्खला ॥३६॥

आश्चर्यं देवराजस्य जलधौ चैत्यसंस्थितम् ।
दृष्ट्वापूर्वमिदं स्थानं पश्चान्मोक्षामि[4] शृङ्खलाम् ॥३७॥

विमृश्येदं गतश्चैत्ये यावद्गर्भगृहान्तरे ।
श्रीयुगादिजिनस्तावद्दृष्टः पद्मासनस्थितः ॥३८॥

एकचित्तेन तीर्थेशं यावदाद्यं स्तवीति सः ।
एका स्त्री तावदायाता वृद्धा काचिन्मनोहरा ॥३९॥

तां दृष्ट्वा देवराजोवग् मातः ! कथय कारणम् ।
अगाधजलधावेतत्केन चैत्यं विनिर्मितम्[5] ॥४०॥

एतच्छ्रुत्वावदद् वृद्धा सर्वां[6] मूलादिमां कथाम् ।
हे वत्सैकाग्रचित्तेन श्रोतव्यं[7] मद्वचस्त्वया ॥४१॥

श्रीयुगादिजिनेन्द्रस्य प्रव्रज्याव[8]सरे तदा ।
भरथाद्या बभूवुस्ते[9] शतमेकं तनूद्भवाः ॥४२॥

ज्ञात्वा युगादिदेवेन सर्वेषां च पृथक् पृथक् ।
सर्वे जनपदा दत्ता[10] विभज्य स्वयमेव हि ॥४३॥

अयोध्यां भरते तक्षशिलां बाहुबलिन्यपि ।
नामानुसारतोन्येषां देशानपि ददौ मुदा[11] ॥४४॥

दत्त्वा संवत्सरं यावद्दानं श्रीनाभिनन्दनः ।
दीक्षामादाय विच्छर्दात्[12] कृत्वा कर्मक्षयं ततः ॥४५॥

अत्रास्य पञ्चमं ज्ञानं पुण्डरीके गणेश्वरे ।
संजातं पूर्णिमं च अत्रास्य नाम्नं नगम् ॥४६॥

निर्वाणमनवंस्तत्र प्रापुः श्रीपुण्डरीकवत् ।
सहस्रसंख्याकोट्या मुनिभिः परिवारितः ॥४७॥

नमिविनम्याद्याभिः सामन्तां प्रतिपाद्य च ।
गत्वा च नद्रिवैः सूक्ते सहस्रद्वगमायुक् ॥४८॥

चतुर्दशेन भक्तेन सहस्रदशागणस्थितः ।
ययौ मोक्षपुरीं तत्र शुक्लध्यानपरायणः ॥४९॥

षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्यश्चतुःषष्टिः सुराधिपाः ।
चक्रुर्निर्वाणकल्याणं चतुर्देवनिकायकाः ॥५०॥

त्रिदशैः समागत्य भरतेनाथ चक्रिणा ।
कारितः श्रीगुरुस्थाने प्रासादोऽयं महाप्रभोः ॥५१॥

सिंहनिषद्यानकं ज्ञात्वा श्रीयुगादिजिनेशितुः ।
प्रतिमां स्थापयित्वात्र गतो अष्टापदे गिरौ ॥५२॥

तत्पुनिश्चयमानोक्तं प्रासादं हि हिरण्मयम् ।
चतुर्द्वारं चतुर्मानं चतुर्विंशतिना(का)न्वितम् ॥५३॥

कारयामास सर्वार्थं प्रासादं सुमनोहरम् ।
श्रीजिनबिम्बदर्शनीयाढ्यं संस्कृतोत्सवतारकम् ॥५४॥

कारयित्वा ततो यात्रां श्रीमद्भरतनायकः ।
तत्रादर्शगृहे गत्वा पद्मखण्डानामपाल्ययत् ॥५५॥

चतुर्दश च रत्नानि भाण्डागारेषु जागरे ।
निधानानि नवैतानि तेऽपि आसानि तत्क्षणम् ॥५६॥

अथ निधिः[1] –

नेसप्पे[1] १ पंडुअए[3] २ पिंगलए[4] ३ सव्वरयण ४ मह[5] पउमे ५

कालेय[6] ६ महाकाले ७ माणवगमहानिहीः ८ संखे ९[7]।

रत्नानि[8] सेणावइप्रमुखानि[9] ॥

अन्तःपुरीचतुःषष्टिसहस्राणि गृहान्तरे।

ज्ञेयाः पिण्डविलासिन्यः सपादलक्षमानकाः ॥५७॥

लक्षाश्चतुरशीतिश्च रथसद्गजवाजिनाम्[10]।

कोट्यः षण्णवतिर्जाता ग्रामपत्तिव्रजस्यच[11] ॥५८॥

[12]द्वासप्ततिः[13] सहस्राणि वेलाकूलनटस्य[14] च।

अष्टादश च कोट्यः स्युर्लासंसंबद्धवाजिनाम्[15] ॥५९॥

एवं राज्यश्रियं प्राप्य श्रीमद्भरथचक्रिराट्[16]।

निविष्टोस्त्यन्यदा स्थाने ऽेकदा स्नानहेतवे[17] ॥६०॥

आनखं चाशिखं रूपं दृष्ट्वा दर्पणमध्यगम्।

फाल्गुने पत्रहीनं च यथा वृक्षशरीरकम्[18] ॥६१॥

तं(तद्)दृष्ट्वा चक्रवर्ती तु जातो वैराग्यरङ्गभाक्[19]।

हृदये चिन्तयामास धिग्रूपं यौवनं च धिक् ॥६२॥[20]

गता गच्छन्ति यान्त्येते प्राणाश्चलं रूपं च यौवनम् ।
नश्वरेऽस्मिन् संसारे धर्म एकोऽस्ति निश्चलः ॥६३॥

घातित्वा घातिकर्माणि घातितानि पुरा भवे ।
निरालम्बाग्निखड्गेनाप्यन्तरङ्गाश्च वैरिणः ॥६४॥

भावनायाः प्रभावेन शुक्लध्यानस्य योगतः ।
संजातं केवलज्ञानं चारित्रेण तपो विना ॥६५॥

स्फुरद्दुन्दुभिनादेन विबुधैः पञ्चवर्णजाः ।
पुष्प(ष)वृष्टी स्तवश्चैवं केवलिसत्कृतिः ॥६६॥

दशेन्द्रा देवलोकस्य चन्द्रसूर्येन्द्रयुग्मकम् ।
द्वात्रिंशद्व्यन्तरेन्द्राश्च विंशतिर्भुवनेश्वराः ॥६७॥

इन्द्रा एते चतुःषष्टिः शचीभिः परिवारिताः ।
दिक्कुमार्यश्च सम्प्राप्ता गन्धर्वाः किन्नरादयः ॥६८॥

गीतनृत्यादिवाद्यैश्च कृतकेवलमहोत्सवः ।
भरतो जगादैवं सौधर्मेन्द्रस्य चाग्रतः ॥६९॥

देव्यं सिंहासनसंस्थाने श्रीयुगादिजिनेन्द्रजम् ।
स्थिते श्रीवृषभस्थाने तस्य भिन्ना मता हि ॥७०॥

तदाभिषेकं ततः प्रोक्त्वा हरिः सौधर्मनायकः ।
तस्मादिनादस्य पादौ शुश्रूषा क्रियते मया ॥७१॥

पश्चात्कर्माणि छेदित्वा सागरे गतेऽस्मिन् ।
द्वितीयकर्मोदये तत्र नाम्ना श्रीअजितो जिनः ॥७२॥

अजितजन्मनो जातस्य महामहः ।
चतुःषष्टिमहेन्द्रैस्तु देवस्य न जानीते ॥७३॥

सर्वा अपत्यहीनास्ताः स्त्रीणां दुःखमिदं महत् ।
संतानेन च या हीनास्ता हीनाः सर्ववस्तुभिः[1] ॥७४॥ यथा[2]–

दिनं दिनकरं विना वितरणं विना वैभवं
महत्त्वमुचितं विना सुवचनं विना गौरवम् ।
सरः सरसिजं विना धनभरं विना मन्दिरं
कुलं तनुरुहं विना श्रयति नैव सश्रीकताम् ॥७५॥ पुनः–

दिगम्बरं[3] गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्यहीना न पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥७६॥ उक्तं च–

तं मन्दिरं मसाणं जत्थ न दीसंति धूलिधवलाइं ।
निवडंतरडंताइं तिदुन्निणो डिंभडिंभाइं[4] ॥७७॥

एवं विचिन्त्य बहुधा दुःखपूरितमानसः ।
उद्यान[5]वनभूमीषु गतः सगरभूपतिः ॥७८॥ यथा–

जने रतिस्तु रक्तानां विरक्तानां वने रतिः ।
अनवस्थितचित्तानां न जने न वने रतिः ॥७९॥

दृष्टस्तु मुनिरुद्दाम[6]केवलज्ञानभास्करः ।
अयोध्यायां समायातो भव्यनरव्रान् विबोधयन् ॥८०॥

नमस्कृतो मुनिस्तेन सगराख्येन चक्रिणा[7] ।
देशनान्ते च[8] विज्ञप्तः स एव[9] मुनिपुङ्गवः ॥८१॥

स्वामिन् ! सन्तानहीनस्य निष्फलं[10] जीवितं धनम् ।
भगवन् ! मम किं[11] सूनुर्भविष्यति न वाथवा[12] ॥८२॥

मुनिरप्याह भो भद्र ! पृच्छस्यादरतो यदि[13] ।
सुताः षष्टिसहस्राणि भविष्यन्ति तवालये[14] ॥८३॥

सगरोऽप्याह हे स्वामिन् ! सुतस्यैकस्य संशयः ।
कुतः[15] षष्टिसहस्राणि कौतुकं वर्तते मम ॥८४॥

[illegible] न संदेहो जैनं शासनमिदं यतः ।
[illegible] भविष्यन्ति गुणान्वित ॥८५॥
आतपत्रकलं चैकं तुभ्यं यच्छन् निरन्तरो ।
प्रत्यक्षीभूय दत्ते सा [illegible] शासनदेवता ॥८६॥
स्तोत्रं स्तोत्रकरं तस्य दानस्य प्रविभज्य भोः ।
समस्तानामपि स्त्रीणां सन्ततिस्ते भविष्यति ॥८७॥
एवं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनीन्द्रपदपङ्कजम् ।
प्रमोदमेदुरो भूत्वा चक्रवर्ती गृहं गतः ॥८८॥
निशान्ते नृपतिः प्रातं फलमाप्य च [illegible] ।
स्त्रीरत्नस्य करे दत्तं प्रोक्त्वा व्यतिकरं च तत् ॥८९॥
दध्यौ च पट्टराज्ञी किमन्यासां सुतैः गुणैः ।
एकोऽपि यदि मे भावी राज्यधुर्यस्तदा वरम् ॥९०॥ यथा–
किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥९१॥ पुनः–
किं तेन जातु ! जातेन मातुर्यौवनहारिणा ।
स जातो येन जातेन वंशो याति समुन्नतिम् ॥९२॥ उक्तं च–
एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
सह एव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी ॥९३॥
एवं विचिन्त्य सहसा भक्षयामास तत्फलम् ।
तत्फलेन च गर्भं सा दधौ [illegible] ॥९४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९६॥

[illegible]

वर्धापनं पुरे तत्र कारितं चक्रवर्तिना ।
प्रदत्तं नाम सर्वेषां वृद्धिं प्राप्ताः क्रमेण ते[1] ॥९७॥

पाठिताः समये सर्वे [2]शास्त्रशस्त्रादिकाः कलाः[3] ।
यौवनेन च संयुक्ता[4] रूपश्रीनिधयोऽभवन् ॥९८॥ यथा–

खादयतु यदपि तदपि हि[5] मलिनं वासश्च परिदधात्वङ्गे[6] ।
प्रकटीकृत[7]लावण्यं तदपि रमणीयम् ॥९९॥

एकदाष्टापदे यातो यात्रायै सगरो नृपः[8] ।
पुत्रदारादिसंघेन चातुर्वर्ण्येन संयुतः ॥१००॥

नमस्कृत्य जिनान् सर्वांश्चतुर्विंशतिसंख्यकान्[9] ।
बिम्बद्वयं च पूर्वस्यां दक्षिणस्यां चतुष्टयम् ॥१०१॥

बिम्बाष्टकं पश्चिमायां दशकं च तथोत्तरे ।
एवं संपूज्य संस्तूय वर्णयंश्च[10] यथाविधि ॥१०२॥

संघभक्तिं च संघार्चां कृत्वाचारान् यथाविधि ।
समायातो निजे स्थाने सगरः संघसंयुतः[11] ॥१०३॥

कुमारा हर्षपूरेण गिरेरुत्तीर्य भूस्थिताः ।
कीर्तनं पूर्वजानां च दृष्ट्वोर्ध्वभुवि संस्थितम् ॥१०४॥

भरतेन कृते तीर्थे[12] परिखा न कृता कथम् ।
पञ्चमारकजा[13] लोकास्तीर्थध्वंसविधायिनः ॥१०५॥

भविष्यन्ति ततोऽस्माभिः क्रियते परिखोद्यमः ।
यथागम्यं भवेत्तीर्थं विलम्बो न विधीयते[14] ॥१०६॥

[15]अधर्मेषु विलम्बः स्यात् विलम्बो दुष्टचिन्तने ।
विलम्बः परदारासु धर्मे नैव विलम्बनम् ॥१०७॥

कियत्यपि गते काले जलधेर्मध्यमागतम्[1] ।
तच्चैत्यं वत्स[2] ! जानीहि पृच्छायास्तेद उत्तरम् ॥११९॥

एतदाख्यानकं तत्र चैत्यस्योत्पत्तिमूलजम्[3] ।
तयाप्सरोवृद्धयोक्तं देवराजस्य चाग्रतः[4] ॥१२०॥

सद्गुणं सस्वरं कान्तं सलावण्यं मनोहरम् ।
चैत्यमध्यस्थितं बालं दृष्ट्वा जाता दयापरा ॥१२१॥

साप्यवोचत्कुमाराग्रे शृणु रूपश्रियो निधे[5] ! ।
त्यज देवकुलं तिष्ठ प्रच्छन्नो मद्गृहान्तरे ॥१२२॥

कुमारोवक्किमम्बे ! त्वं भाषसे भीतिकृद्वचः[6] ।
देवो वा दानवः कोस्ति यस्य भीतिर्निगद्यते[7] ॥१२३॥

देवेन्द्रस्याप्सरा अस्ति नाम्ना भानुमतीति सा ।
मत्सुता प्रेक्षणे नित्यं नरे क्षिप्ता[8] समेष्यति ॥१२४॥

रूपाधिकं नरं दृष्ट्वा विशेषान्मारयत्यसौ ।
एवं मत्वा सुता[9] मे त्वं तिष्ठैकं कोणके क्षणम् ॥१२५॥

देवराजो वचः श्रुत्वा हृष्टोत्यन्तं स्वमानसे ।
एषा भानुमती नूनं भूपेनाभाषिता पुरा ॥१२६॥

पूजोपकरणं कृत्वा पूजायै स्वकरे विभोः[10] ।
तामायान्तीं[11] स विज्ञाय कपाटान्तरके स्थितः ॥१२७॥

तावन्नूपुरझंकारैर्भानुमत्यप्युपागता ।
संप्रदायेन संयुक्ता स्त्रीणां वृन्देन चारुणा ॥१२८॥

प्रविष्टा गर्भगेहे[12] सा ददर्शार्हन्नमर्चितम् ।
नूनं नरेण केनापि पूजितोयं[13] दुरात्मना ॥१२९॥

मदग्रे परमानीय प्रेषणीयस्त्वया गृहे ।
[1]तथास्तु कथयन्त्येषा गृहीत्वामृतमद्भुतम् ॥१४२॥
समायाता निजे स्थाने सिक्तस्तद्भस्मपुञ्जकः[2] ।
जीवितस्तत्क्षणाद्बालो मन्ये सुप्तः समुत्थितः ॥१४३॥
कुमारः कथयामास मातर्जागरितः कथम् ।
श्रुत्वा वृद्धावदत्तस्मै भानुमत्या यथा कृतम् ॥१४४॥
सोऽप्याह मातरेवं चेत्तदाहं जीवितः कथम् ।
वृत्तान्तो[3] मूलतः सर्वः[4] कुमाराग्रे निवेदितः[5] ॥१४५॥
कार्यार्थी च कुमारोवक् सौधर्मेन्द्रं प्रदर्शय ।
जनोक्ति[6]र्बहु दृष्टं स्यात्सुन्दरं जीविताद्बहोः ॥१४६॥
वृद्धाप्यूचे तदा भव्यं त्वाज्ञास्ती[7]न्द्रस्य चेदृशी ।
इत्युक्त्वा द्वावपि प्राप्तौ सौधर्मेन्द्रस्य संनिधौ ॥१४७॥
कुमारेण सभा दृष्टा पूर्णा सामानिकैर्हरेः[8] ।
न ज्ञायते तदा कश्चिदिन्द्रः कोन्योथवापरः ॥१४८॥
आसन्नः स गतो यावद्रूपतो मोहितो[9] हरिः ।
पुनः पुनः समालिङ्ग्य स्वोत्सङ्गे स धृतः क्षणात् ॥१४९॥
पृच्छतीन्द्रः क वत्स[10] ! त्वं किं वा कोसि किमागतः ।
वृत्तान्तं मूलतो वत्स ! श्रोतुमिच्छामि ते गिरा ॥१५०॥
कुमारेण निजं वृत्तं कथितं च हरेस्तदा[11] ।
शापादग्ध इति श्रुत्वा भानुमत्यां चुकोप सः ॥१५१॥
सापि तत्र सभां याता हरिणाकारिता द्रुतम्[12] ।
देवि त्वं गर्वितासीदुग्रो[13]कोपद्रवकारिणी ॥१५२॥
एष बालो गुणाधारो रूपलावण्यमन्दिरम् ।
दह्यमाने त्वया दुष्टे ! नागता किं दयापि ते[14] ॥१५३॥

एतदागोभवद्दण्डाच्छापं लाहि त्वमप्यहो ।
मदाज्ञावशतो दुष्टे नृलोके[1] मानुषी भव ॥१५४॥

अथावसरमासाद्य कुमारः कोविदाग्रणीः ।
समुत्थाय नमस्कृत्य चेन्द्रमेवं व्यजिज्ञपत् ॥१५५॥

यदाज्ञा प्राप्यते स्वामिन् ! तदा व्याघुट्य गम्यते ।
इति तस्य गिरं श्रुत्वा हरिर्वचनमब्रवीत् ॥१५६॥
किं कुर्वे [2] वत्स[3] ! स्वर्गेत्र मनुष्यावस्थितिर्न हि ।
त्वत्समानं नरं नो चेत् पार्श्वाद्दूरीकरोति कः ॥१५७॥
परं याचस्व मत्पार्श्वाद्यत्किंचिद्रोचते तव ।
निर्लोभत्वं समादाय कुमारो वाक्यमब्रवीत् ॥१५८॥ यतः[4]–
सर्पाः पिबन्ति पवनं [5] न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणै[6]र्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥१५९॥
संतोषात्प्राणिनां लक्ष्मीः स्वल्पापि हि सुखप्रदा ।
असंतुष्टस्य पुंसोपि सौख्यं कोटीश्वरस्य नो ॥१६०॥
तव प्रसादतः स्वामिन् राज्यमृ[7]द्धिश्च पुष्कला ।
लोभादपि हि या प्रीतिः सा प्रीतिर्न प्रशस्यते ॥१६१॥[8]
वचसानेन देवेन्द्रो न सामान्यः पुमानसौ ।
तथापि वत्स[9] ! देवानां दर्शनं न हि निष्फलम् ॥१६२॥
तत्तथास्तु कुमारोवग्यदा दिशसि[10] वाञ्छितम् ।
तदा भानुमतीमेतामन्यां वृद्धां च मेर्पय[11] ॥१६३॥

---

1. B[1], B[2] and B[3] मदाज्ञा गच्छ रे दुष्टे[B[3] ष्टा]मनुजे । 2. B[1], B[2] and B[3] कुर्मो । 3. B[1], B[2] and B[3] वच्छ । 4. B[1] and B[3] उक्तं च instead of यतः; B[2] omits this word and has no substitute । 5. B[2] ends the verse with पवनं । 6. P[1] and P[3] end it with °स्तृणैर्वा कन्दैः । 7. B[1] and B[2] °रि°; B[3] ऋ० । 8. B[3] adds the following after this verse:—

दंत कुमि कुरंग चण जवघन तव राचंत ।
जवहांकं तानि रवणी तव नीन्तुं विम्वंन ॥
गमनेही मानुं नदो मच्चिवकाल्वहंत ।
गरसमनेहीनुवजल्ल वेगाही विहरंन ॥

9. B[1] and B[2] वच्छ । 10. B[1], B[2] and B[3] °वन्वदि दास्यसि । 11. B[1], B[2] and B[3] समर्पय ।

इन्द्रदत्ते गृहीत्वा ते मिलित्वा निर्गतस्ततः ।
चैत्ये पुनः समागत्य नमस्कृत्वादिमं[1] जिनम् ॥१६४॥

प्रक्षिप्य पञ्जरे ते द्वे चैत्येशा[2]स्य तत्क्षणात् ।
सिद्धे कार्ये विवेकी ना विलम्बं न करोत्यहो[3] ॥१६५॥

शृंगस्थां शृंखलां मुक्त्वा बद्ध्वा पञ्जरकैस्ततः ।
उद्धृतो नगरः सोपि संलग्नो याति यावता ॥१६६॥

कियत्यपि गते दूरे शृङ्खलायाः करस्च्युतः ।
पतितः सहसास्यैव चैत्यस्योपरितः स्खलन् ॥१६७॥

देवराजः क्षणं स्थित्वा चिन्तयामास मानसे ।
करगोचरमायातं दैवात्कार्यं वृथाभवत्[4] ॥१६८॥ यतः[5]–

किं करोति नरः प्राज्ञः[6] शूरो वा यदि[7] पण्डितः ।
दैवं यस्य छलान्वेषी(षि) करोति विफलां क्रियाम् ॥१६९॥

[8]वत्सराजो मम भ्राता मिलिष्यति कथं मम ।
भानुमत्याश्च वृद्धाया वियोगोप्यतिदारुणः ॥१७०॥

एवं मत्वा समुत्तीर्य प्रविष्टो जिनमन्दिरे ।
ज्ञात्वा मरणजं कष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७१॥

श्रीयुगादिजिनाधीशाधिष्ठातः ! शृणु मद्वचः ।
मिलिष्यति यदा बन्धुरन्नपानं तदा मुखे ॥१७२॥

स्थितो जिनालये तत्र निराहारः कियद्दिनैः[9] ।
गोमुखोस्ति त्वधिष्ठाता देवी चक्रेश्वरी ततः ॥१७३॥

चक्रेश्वरीपुरः सोपि[10] यक्षाग्रे च यतो[11] जगौ ।
लङ्घनं चात्र चैत्येहं कुर्वे च म्रिये यदा ॥१७४॥

अपकीर्तिस्तदा वां भविष्यति महीतटे ।
तदाग्रहात्तथा कार्यं यथा कीर्तिर्[illegible][12] ॥१७५॥

यक्षोवक् शृणु हे देवि[1] ! पूर्वं सत्त्वं परीक्ष्यते[2] ।
पश्चादस्य करिष्यामि[3] संयोगं बन्धुना समम् ॥१७६॥

एवमस्य[4] परीक्षार्थं सिंहशार्दूलराक्षसाम् ।
रूपं कृत्वा स यक्षेन्द्रो रात्रौ भीतिमदर्शयत् ॥१७७॥

परं कुमारः कस्यापि भयं न कुरुते हृदि ।
प्रत्यक्षः सत्यतो यक्षोभूत्स विंशतिवासरैः ॥१७८॥

कण्ठे कन्थां करे दण्डं पद्भ्यां विपुलपादुके ।
खटिकां च करे कृत्वा योगिवेषः[5] समागतः ॥१७९॥

यक्षो वदति वत्स[6] ! त्वं मत्पार्श्वाद्वृणु वाञ्छितम् ।
कन्थां गृहाण मत्सत्कां चिन्तितार्थप्रदायिनीम् ॥१८०॥

पादुकाभ्यां पदस्थाभ्यां यत्रेच्छा तत्र गम्यते ।
खटिकया च लिख्यन्ते गजवाजिरथादिकाः ॥१८१॥

एतद्दण्डप्रभावेन स्पृष्टाः सज्जीभवन्ति ते ।
चतुरङ्गचमूयुक् त्वं[7] पश्चाद्गच्छ यथेप्सितम् ॥१८२॥

एवं दत्त्वा कुमाराय शिक्षां तद्वस्तु [8]चाद्भुतम् ।
कुण्डे झम्पां ददौ यक्षः क्षणेनादृश्यतां गतः ॥१८३॥

देवराजकुमारस्तु यावत्पश्यति विस्मितः ।
तावच्चक्रेश्वरी देवी[9] चलकुण्डलभास्वरा[10] ॥१८४॥

कुमारं कथयामास कथं वत्स[11] ! विलम्ब्यते ।
युगादीशप्रसादेन पूर्यन्तां त्वन्मनोरथाः[12] ॥१८५॥

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पादुके परिधाय च ।
कन्थादण्डौ समादाय खटिका सज्जिता करे ॥१८६॥

बन्धुर्मे यत्र वत्सोस्ति भानुमत्यप्सरा अपि[13] ।
पादुकेहं तत्र मोच्यो विलम्बो नात्र युज्यते ॥१८७॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 शृणु भद्रे त्वं । 2. B^1, B^2 and B^3 सत्त्वपरीक्षणम् । 3. B^1, B^2 and B^3 कृत्वा पश्चात्करिष्येहं । 4. B^1, B^2 and B^3 तदा तस्य । 5. B^1, B^2 and B^3 °वेषे । 6. B^1 and B^3 वच्छ । 7. B^1, B^2 and B^3 °युक्तः । 8. B^1, B^2 and B^3 °स्तु म° । 9. B^1, B^2 and B^3 °री प्राप्ता । 10. B^3 °भासुरा । 11. B^2 and B^3 वच्छ । 12. B^1, B^2 and B^3 पूर्यन्ते ते मनो° । 13. B^1, B^2 and B^3 यत्र मे बन्धुवच्छोस्ति यत्र भानुमत्यप्सराः ।

एतद्वचनमात्रेण समायातस्तटान्तरे ।
वत्सराजः[1] सदुःखात्मा यत्रास्ते भानुमत्यपि ॥१८८॥

सहसा पुरतोतिष्ठद्देवराजो हि बान्धवः ।
विस्मितः पादपद्मानि नमस्कृत्य व्यजिज्ञपत् ॥१८९॥

बान्धव ! त्वं स्थितः कुत्रैतावन्ति च दिनान्यपि[2] ।
कथं क्षीणाङ्कोत्यन्तं वेपोयं कथमीदृशः ॥१९०॥

वृद्धायाः [3]पदमानम्य भानुमत्यास्तथैव च ।
वत्सराजवचसोपि प्रत्युत्तरमभाषत ॥१९१॥

वत्स ! दत्ता मया झम्पा सर्वेषां पश्यतस्तदा ।
कथितः[4] सर्ववृत्तान्तो[5] यावदागां हि ते पुरः[6] ॥१९२॥

सर्वेषां लङ्घनं ज्ञात्वा ह्येकविंशतिमे दिने[7] ।
देवराजः स्वकन्थायाः[8] प्रत्ययार्थं करोत्यदः ॥१९३॥

कण्ठादुत्तार्य मुक्त्वाग्रे कन्थापार्श्वाद्ययाच[9] नः ।
स्नानपूर्वं सुदेवार्चां[10] पश्चाद्भोज्यं यथेप्सितम् ॥१९४॥

संप्राप्तं भोजनं तेषां प्रमोदात्पारणं कृतम् ।
चित्ते द्वावपि संतुष्टौ तौ व्यचिन्तयतामिति ॥१९५॥

देवराजोवदद्वत्स ![11] यज्ञातं वाञ्छितं फलम् ।
सप्रसादो युगादीशः सांनिध्यं गोमुखस्य च ॥१९६॥

किमर्थं स्थीयते ह्यत्र[12] कार्यभ्रंशो हि मूर्खता ।
पितुराज्ञा कृतास्माभिर्गन्त्वा वाञ्छादि पूर्णे ॥१९७॥

बन्धुनैवं समालोच्य[13] प्रयाणे कृतनिश्चयः ।
रात्रौ विलम्ब्य तत्रैव प्रातस्तौ द्वौ सहस्थितौ ॥१९८॥

देवराजेन कन्थाप्ता पादुके पादयोर्धृते ।
खटिकां दण्डमादाय चेदं वचनमब्रवीत् ॥१९९॥

वत्स ! वामाञ्चलं लाहि कन्थाया मातुदक्षिणम्[1] ।
पृष्ठ्या(ष्ठा)श्चलं भानुमत्या ग्रहीतव्यं करे दृढम् ॥२००॥

हे पादुके ! नयास्माकं समुद्रतटके पुरे ।
एतद्वचनमात्रेण संप्राप्ता वाञ्छिते पुरे ॥२०१॥

स्थिता एकप्रदेशे ते रम्यासु वनभूमिषु ।
प्रमोदाद्दिवसान् कांश्चित् स्थिताः कौतूहलेन ते[2] ॥२०२॥

चिन्तितान् देवराजोपि स्फुटान् खटिकया तया ।
रूपकान् लिखयामास गजवाजिपदातिकान् ॥२०३॥

येन येन यथा दण्डः स्पृशत्येष तथा तथा ।
सजीवो जायते सोपि सुधादण्डप्रभावतः ॥२०४॥

एवं गजाश्व[3]सामन्ता बहवस्तत्परिच्छदाः ।
देवराजो नृपः ख्यातः स्वसैन्यपरिवारितः ॥२०५॥

सुखासनस्था सा वृद्धा भानुमत्यपि सा तथा[4] ।
वस्त्राभरणभूषाढ्या दासदासीभिरावृता ॥ २०६॥

ससैन्यश्चलितस्तावद्बन्धुप्रीतिमनोहरः ।
ग्रामाकर[5]पुरोद्यानं क्रमादुल्लंघयन् पथि ॥२०७॥

धाराया वनभूमीषु स्थितं सैन्यं महर्द्धिषु ।
वादित्रै र्वाद्यमानैस्तु[6] देवराजः स्थितस्ततः ॥२०८॥

दृष्ट्वा सैन्यश्रियं तस्य लोका विस्मयितान्तराः[7] ।
ज्ञापयन्ति स्म भूपस्य[8] स्वामिन् ! किं कोप्यभून्नृपः[9] ॥२०९॥

भोजराजोवदत्तेभ्यो ज्ञायते नैव[10] किंचन ।
कर्त्तेमं निश्चयं प्रेष्य[11] प्रेषयित्वा स्वपूरुषम् ॥२१०॥

---

1. P[1] and P[2] मा तुद क्षणम् । 2. B[1] तु । 3. B[1] एवंविधाश्व° । 4. B[1], B[2] and B[3] ततया । 5. B[1], B[2] and B[3] ग्रामागार° । 6. B[1], B[2] and B[3] °मानस्तु । 7. B[1], B[2] and B[3] विस्मयमानसाः । 8. B[1], B[2] and B[3] विज्ञापयन्ति भूपाग्रे । 9. B[1], B[2] and B[3] कोत्र नृपतिः । 10. B[1], B[2] and B[3] न हि । 11. B[1], B[2] and B[3] निश्चयोयं करिष्यामि ।

एवं कृते सति नृपे समायातो नृपान्तिके ।
प्रहितो देवराजेन भट्ट एको व्यजिज्ञपत् ॥२११॥

पुत्रौ[1] भोजनरेन्द्रस्य देवराजोभिधानतः ।
वच्छराजो द्वितीयोस्ति[2] विज्ञापयति मन्मुखात् ॥२१२॥

देशपट्टे त्वया देव ! पूर्वं निष्कासितौ सुतौ ।
भानुमत्यन्वितावेतौ चतुरङ्गचमूवृतौ ॥२१३॥

श्रुतं वाक्यं हि भूपेन कर्णयोरमृतोपमम् ।
सर्वाङ्गं शीतलं जातं यद्दग्धं विरहाग्निना ॥२१४॥

वर्द्धापनं पुरे चक्रे[3] प्रमोदान्मन्त्रिपुङ्गवैः ।
कुमारोक्तमथो[4] सर्वं दास्यप्यन्तःपुरे जगौ ॥२१५॥

सुतसंतापदग्धानां राज्ञीनां च मनोरथाः ।
पुनरागमवार्ताभिस्तयोः[5] पल्लविता द्रुतम् ॥२१६॥

भोजभूपः स[6] तत्कालमुत्थितः सपरिच्छदः ।
चतुरङ्गचमूयुक्तः समस्तान्तःपुरीवृतः ॥२१७॥

उत्सवं[7] कारयामास नगरे नगरान्तिकात्[8] ।
तोरणैर्हट्टशोभाभिश्छादितं[9] गगनाङ्गणम् ॥२१८॥

एवं कृत्वा समायातो भूप उद्यानभूमिषु ।
सबन्धुर्देवराजोपि पितुः संमुखमागतः ॥२१९॥

तस्य पादौ समाश्रित्य[10] परमाद्विनयान्वितौ[11] ।
उत्थाया(प्या)लिङ्गयामास[12] सानन्दो धराधिपः ॥२२०॥

पुत्रश्रियं नृपो वीक्ष्य[13] भानुमत्यप्सरोपमाम् ।
स्वप्नानुसारतो बाला भुक्तापि सुपलक्षिता ॥२२१॥

पराचिंदवलग्नेन भानुमती विवाहिता ।
विवाहात्पुत्रसंयोगाज्जातो हर्षदो[14] नवः ॥२२२॥

सत्यवत्याः[1] समायाता सार्थे[2] मदनमञ्जरी ।
पुत्रदर्शनसोत्कण्ठा[3] पश्यन्ती तौ चतुर्दिशम् ॥२२३॥
देवराजवत्स[4]राजौ दृष्ट्वा तां चातिहर्षितौ ।
पतितौ पदयोस्तस्या[5] न्यस्य भूमौ स्वमस्तकम् ॥२२४॥[6]
सकुटुम्बस्तदा भूपः पृच्छति स्म निजं सुतम् ।
कथं राज्यरमा प्राप्तानीता भानुमती कथम् ॥२२५॥
देवराजकुमारोवग् नत्वा भूपपदाम्बुजम् ।
कथयिष्ये यदा[7] यूयं श्रोष्यथोद्युक्तमानसाः ॥२२६॥
देशपट्टे गतौ यावद्विवाहं भूपतेः पुरः ।
वृत्तान्तो मूलतः सर्वः कथितः स्वजनाग्रतः ॥२२७॥
राजा राज्ञी समुत्थाय द्वावपि प्रस्तुताञ्जली ।
तौ व्यजिज्ञपतां नत्वा वृद्धायाश्चरणाम्बुजम्[8] ॥२२८॥
अस्मत्कुलमुद्धरितं राज्यं [9]चोद्धरितं त्वया ।
जीवापितः सुतोयं मे ह्युपकारः कृतो मम ॥२२९॥
एवं चमत्कृता[10] वृद्धा दानमानेन तोषिता ।
सत्यवत्या निजे स्थाने स्थापिता पुत्रवत्सला[11] ॥२३०॥
पुत्रागमनजोत्साहं[12] विवाहं भोजभूपतिः ।
प्राप्य हर्षप्रपूर्णः सन् प्रवेशमसृजत्पुरे[13] ॥२३१॥
वादित्रैर्वाद्यमानैस्तु भट्टाजयजयारवैः ।
स्त्रीणां माङ्गल्यगीताद्यैः समायातो नृपो गृहे ॥२३२॥
निष्कण्टकतरं राज्यं पालयन् भोजभूपतिः[14] ।
देवराजकुमाराय युवराजपदं ह्यदात् ॥२३३॥

---

1. B¹, B² and B³ °त्या । 2. B¹ °र्थं । 3. B¹, B² and B³ पुत्रस्य दर्शनोत्कण्ठा । 4. B¹, B² and B³ °वच्छ । 5. B¹, B² and B³ °स्तासां । 6. B³ adds the following after this verse :—

महर्षा स्ता(मा) वरोमाञ्चा पुनर्प्रेमविमोहिता ।
उच्छा(त्था)योत्सङ्गमानीतः स्नापितो हर्षदश्रुभिः ॥

7. B¹ तदा । 8. B¹, B² and B³ पादपद्मं च वृद्धाया नमस्कृत्य व्यजिज्ञपत् । 9. B¹, B² and B³ °ज्यम् । 10. B¹, B² and B³ च मस्कृता । 11. B¹, B² and B³ °वच्छ[B¹ त्स]लात् । 12. B¹, B² and B³ °समुत्साहं । 13. B¹, B² and B³ उभयोत्साहसम्पन्नः प्रवेशमकरोत्पुरे । 14. B¹, B² and B³ पाल्यमानस्तु भूपतिः ।

कियन्त्यपि दिनानीशः स्थितोऽन्तःपुरमध्यगः[1] ।
भानुमत्यप्सरोरूपव्यामोहितमनास्ततः ॥२३४॥

एकस्मिन् दिवसे राजा विज्ञप्तो राजपूरुषैः[2] ।
उद्वासयितुमारब्धो देशः सीमालराजभिः[3] ॥२३५॥

एतच्छ्रुत्वा स भूपालः कोपादरुणलोचनः ।
प्रयाणं दापयामास चतुरङ्गचमूवृतः ॥२३६॥

एकत्र च[4] सरस्तीरे स्थितः सैन्ययुतो नृपः ।
भोजनावसरे प्राप्ते राज्ञा भानुमती स्मृता ॥२३७॥

विरहात्तापसंतापान्न रतिं लभते क्वचित् ।
प्राणैः प्रयाणमारब्धं भानुमत्या अदर्शने ॥२३८॥

न पर्यङ्के न भूपीठे न जने न वनान्तरे ।
समाधिर्न हि कुत्रापि विना तां प्राणवल्लभाम् ॥२३९॥

सर्वेऽपि वररुच्याद्या मिलिता मन्त्रिपुङ्गवाः ।
कुर्वन्ति स्म किलालोचं[5] विलक्षास्ते परस्परम् ॥२४०॥

यदि व्याघुटति [6]क्ष्मापस्तदा ते वैरिभूभुजः ।
देशं विध्वंसयिष्यन्ति कः स्याद्वारयितुं क्षमः ॥२४१॥

मन्त्रिणः कथयामासुः सर्वे वररुचेः पुरः
विलम्बः कार्यते भूपात्तच्चित्तस्यैव दर्शनात्[7] ॥२४२॥

दध्यौ वररुचिः सत्यमेवैभिर्मे प्रजल्पितम् ।
भानुमत्या हि रूपं चेत् करोम्यन्यकृतं ततम् ॥२४३॥

स्मृत्वा सरस्वतीं देवीं कृत्वा सुन्दरवर्णकम्[8] ।
चित्रे भानुमतीरूपं निर्मिमीते स्म सुन्दरम् ॥२४४॥

निष्पन्नं तद्यथायोग्यं स्थाने स्थाने[9] यथाविधम् ।
प्रोचे वररुचिर्वाक्यं भानवे प्रीतिपूर्वकः ॥२४५॥

रूपं मे सृजतः क्वापि विस्मृतं स्यात्प्रमादतः[1] ।
तत्र मातस्त्वया सम्यक्करणीयं तथाविधम् ॥२४६॥

एतद्वचनमात्रेण यावच्चिन्तयति[2] द्विजः ।
कुञ्चिकाग्रान्मषीबिन्दुः पतितो गुह्यदेशगः[3] ॥२४७॥

तं प्रमार्ज्य ततश्चित्ते चिन्तयामास पण्डितः[3] ।
पुनः पपात तत्रैव मषीबिन्दुस्तथैव सः[4] ॥२४८॥

एवं वारत्रयं यावत् पतति स्म[5] पुनः पुनः ।
तथैव स्थापितः सोपि जातं रूपं यथोचितम् ॥२४९॥

तद्रूपं दर्शितं राज्ञो वररुच्यादिमन्त्रिभिः ।
हर्षाच्चित्रं करे लात्वाङ्गोपाङ्गानि व्यलोकयत्[6] ॥२५०॥

ललाटं च मुखं नासाकपोलं लोचनद्वयम् ।
कर्णाद्यवयवान् वीक्ष्य[7] न कुत्राप्यन्तरं भवेत्[8] ॥२५१॥

एवं निरीक्षमाणः संस्तिलं[9] गुह्येपि दृष्टवान् ।
विस्मितश्चिन्तयामास विकल्पानेवमीश्वरः[10] ॥२५२॥

विश्वासाद्वञ्च्यते लोके ह्यविश्वासी न वञ्च्यते ।
अन्तःपुरे व्यभिचारो वररुच्युद्भवोस्ति हि ॥२५३॥

प्रियाविरहजं दुःखं विस्मृतं तस्य कोपतः ।
वधकं नरमाहूय तस्याग्रेप्येवमब्रवीत् ॥२५४॥

[11]एते वररुचेर्नेत्रे निष्कास्य मम दर्शय ।
करणीयं हि मद्वाक्यं प्रष्टव्योहं पुनर्नहि ॥२५५॥

वधकैर्विप्रतार्यैष भद्रचित्तः[12] पुरोहितः ।
नीतोरण्ये महाघोरे[13] यावद्घाताय सज्जितः ॥२५६॥

---

1. B[1], B[2] and B[3] विस्मृतं यत्र कुत्रापि रूपनिर्माणयत्यमाम्(यणे मया ?) । 2. B[1], B[2] and B[3] °ते । 3. B[1], B[2] and B[3] गुह्यवेश्मनु । 4. B[1] च; B[2] and B[2] तम् । 5. B[1], B[2] and B[3] °ते च । 6. B[1], B[2] and B[3] विलोकयन् । 7. B[1], B[2] and B[3] °श्चवयवैः सर्वैः । 8. B[2] न हि कुत्राप्यन्तरम् । 9. B[1], B[2] and B[3] °मानु तिलं । 10. B[1], B[2] and B[3] °नेक-भूपतिः । 11. B[1], B[2] and B[3] एतद्वर । 12. B[1], B[2] and B[3] °त्तं । 13. B[1], B[2] and B[3] नीतोटव्यां(वीं) महाघोराम् ।

विप्रोवग् वधकं ज्ञात्वा दुष्टचित्तो भवान् कथम् ।
सोप्याह द्विज ! किं कुर्वे[1] वयमादेशवर्तिनः ॥२५७॥
भूपोक्तिमन्यथा कर्तुं वयं नैव क्षमाः क्वचित् ।
शिक्षां देहि तदस्माकं सर्वथायति सुन्दराम् ॥२५८॥
द्विजोपि वधकं प्रोचे राज्ञोक्तं कुरु मे द्रुतम् ।
अन्यथा सकुटुम्बं त्वां भूपोयं घातयिष्यति[2] ॥२५९॥
एतद्वचनमाकर्ण्य वधकोवग् दयापरः ।
नाम न श्रूयते यत्र तत्र गच्छ द्विजोत्तम[3] ! ॥२६०॥
स्वरक्षार्थं वररुचिः स गतोन्यत्र कुत्रचित् ।
प्राप्तो मृगाक्षिणी लात्वा वधकोपि[4] नृपान्तिके ॥२६१॥
दूरस्थे चक्षुषी तेन दर्शिते भोजभूपतेः ।
तद्दर्शनात्स[5] संतुष्टः क्रोधो नैवास्त्यतः परम् ॥२६२॥
द्वितीये दिवसे[6] प्राप्ते देवराजो नृपात्मजः ।
गतः स्वल्पपरीवारो ह्यश्वान् वाहयितुं बहिः ॥२६३॥
प्रहितो भृगुकच्छेन तुरङ्गोयं ममाङ्गनः ।
कुमारस्तं समारूढो भवितव्यप्रयोगतः[7] ॥२६४॥
उद्याने वाहितः पूर्वं पश्चान्मुक्तोतिवेगतः ।
कियतीं च भुवं गत्वा पं(ख)च्छिन्नः[8] न तुरङ्गमः ॥२६५॥
तदा[9] चतुर्गुणीभूय[10] भूमिं वेगादलङ्घयत् ।
योजनानि[11] कियन्त्येषोरण्ये नानाविभीषणे ॥२६६॥
खेदखिन्नकुमारेणादर्श्येको दूरतस्तरुः ।
नीत्वा तस्याप्यधोभागे समुत्क्षुत्पादक्लान्तिरतः ॥२६७॥
मुक्ताश्वोपि पदे यस्मिंस्तस्मिन्नेव न[12] संस्थितः ।
उत्तीर्य[13] स कुमारोऽश्वादुपविष्टस्तरोस्तले ॥२६८॥

विश्रान्तः शीतलच्छायवृक्षस्याधः कुमारकः ।
तुरगः सुकुमारत्वात् प्राणमुक्तो बभूव च[1] ॥२६९॥

कुमारश्चिन्तयामास[2] किं जातमसमञ्जसम् ।
क्व राज्यं राजलीला मे क्व पित्रोरपि संगमः ॥२७०॥

वृक्षास्तु सरलास्तुङ्गा अत्राटव्यां च सन्त्यमी ।
सूर्यस्याभ्युदयश्चास्तं क्वचिन्न ज्ञायते मया ॥२७१॥

अत्रान्योप्यस्ति संतापः सिंहव्याघ्रसमाकुले[3] ।
डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतराक्षसपूरिते[4] ॥२७२॥

ईदृग्विधे वने घोरे क्षुत्तृषाद्यैः स पीडितः ।
सरः शीतलवाःपूर्णं ददर्श क्वापि च भ्रमन् ॥२७३॥

वस्त्रपूतं जलं पीत्वा स्थितश्छायातरोस्तले ।
पुनर्बभ्राम च वने कस्यापि मिलनेच्छया ॥२७४॥

भ्रममाणे कुमारेस्मिन् सूर्योप्यस्ताचलं ययौ ।
दुष्टजीवभयभ्रान्तः समारूढः क्वचिद्द्रुमे ॥२७५॥

संवाह्य यावदात्मानं कुमारः स्थानमाश्रितः ।
व्याघ्रात् त्रस्तस्तरौ तत्र समारूढोथ वानरः ॥२७६॥

भयभीतः कुमारस्तु खड्गमादाय संस्थितः ।
नरवाण्या कपिः प्राह भयं मा कुरु मा कुरु ॥२७७॥

पश्याधोमुष्य वृक्षस्यास्ते सिंहो[5] दारुणेक्षणः ।
त्वया सह मम प्रीतिर्दुष्टोयं मात्र भक्षयेत् ॥२७८॥

वानरस्य गिरं श्रुत्वा विश्वस्तो राजनन्दनः ।
वृक्षाधोभागगस्तावद् दृष्टः सिंहोथ[6] दारुणः ॥२७९॥

भूम्यां पुच्छं समुत्फाल्य नीत्वा शीर्षोपरि क्षणात् ।
प्रसार्यास्यं ततो गुञ्जन् वृक्षसम्मुखमुच्छलन् ॥२८०॥

मृगेन्द्रभयभीतौ तौ वानरक्ष्माप[7]नन्दनौ ।
वृक्षस्थौ सुहृदौ जातौ जल्पतश्च परस्परम् ॥२८१॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 सुकुमारत्वे श्रान्तः प्राणान् विमोचितः [B^3 मुमोचितम् (मुमोच सः)] । 2. B^1 and B^2 °स्तदा चित्ते । 3. B^1 and B^2 °कुलः । 4. B^1, B^2 and B^3 °तः । 5. B^1, B^2 and B^3 पश्य वृक्ष अधोभागे सिंहोसौ । 6. B^1 °ति । 7. B^1, B^2 and B^3 °नृप° ।

असौ दुष्टस्वभावोस्ति[1] बुभुक्षापीडितो हरिः[2] ।
आवाभ्यां न प्रमादो हि[3] करणीयः कथंचन ॥२८२॥

वार्तां प्रकुर्वतोरेवं गता रात्रिः कियत्यपि ।
वानरः कथयामास श्रूयतां राजनन्दन ! ॥२८३॥

निद्रा व्याप्नोति ते बाढं नेत्रयो रजनीक्षणे[4] ।
शेहि त्वं तन्ममोत्सङ्गे[5] पूर्वप्राहरिकोस्म्यहम् ॥२८४॥

धृत्वाङ्के मस्तकं सुप्तो विश्वस्तो राजनन्दनः ।
कपिं प्राहरिकं ज्ञात्वा सिंहो वदति तं प्रति ॥२८५॥

आवां वनेचरौ द्वौ स्त आवामेकत्र वासिनौ ।
आत्मवर्गे कुरु प्रीतिं परवर्गे कुतः सुखम् ॥२८६॥

नृवनेचरयोः[6] प्रीतिः पूर्वं शास्त्रेस्ति[7] निन्दिता ।
तदिमं देहि मे मर्त्यं चिराद्राज्यं वने कुरु ॥२८७॥

सिंहस्य वचनं श्रुत्वा कपिर्वचनमब्रवीत् ।
स्ववर्ग[8]परवर्गाभ्यां किं स्यात्सारास्ति वाग्नृणाम्[9] ॥२८८॥

ददाम्येनं कथं तुभ्यं दत्ता वाचा मया यतः[10] ।
एवं मत्वा मृगेन्द्र ! त्वं मुञ्चैनं गच्छ चान्यतः ॥२८९॥

मृगेन्द्रः[11] पुनरप्यूचे क्षुधार्तोयं दिनत्रयात् ।
कृपा नोत्पद्यते तुभ्यं दृष्ट्वा मां दीनमाननम् ॥२९०॥

कपिरूचे कृपा भद्र ! दुष्टे जीवे कृता वृथा ।
जीवितं प्रापितो दुष्टः सुन्दरं कुरुते न हि[12] ॥२९१॥

एवं विवादवशतो[13] गतं यामद्वयं निशः ।
प्रबुद्धः न [14]कुमारोपि कपिर्वचनबाधरो[15] ॥२९२॥

सुप्यते मयका मित्र ! जागरूकस्त्वमप्यहो[1] ।
न कापि वर्तते शङ्का त्वयि[2]प्राहरिके सति ॥२९३॥

कपिः पुनरपि प्राह[3] प्रपञ्ची हरिरस्त्यसौ ।
विप्रतारयति क्रूरो[4] दातव्यो न तथा[5]प्यहम् ॥२९४॥

एवं श्रुत्वा कुमारोवक् प्रपञ्ची किं करिष्यति ।
कालिन्द्यां रमते हंसो न श्यामाङ्गस्तथाप्यसौ[6] ॥२९५॥

प्राहाथ वानरो वत्स ! मा कुर्यास्त्वं रुषं मयि ।
सुष्ठु वा दुष्टकार्यं वा मानवाज्जायते ध्रुवम् ॥२९६॥

इति गाढतरां शिक्षां दत्त्वा राजसुताय सः ।
अविश्वासी वानरोपि संनद्धः शयनाय सः ॥२९७॥

कुमारस्य स उत्सङ्गे[7] सुप्तो निर्भरमानसः ।
ज्ञात्वा सिंहस्ततोवादीत् कुमारं मृष्टया गिरा ॥२९८॥

दुष्टात्मा वानरो धूर्तो[8] मद्भीतस्त्वय्ययं हितः ।
गतेन्यत्र मयि त्वां हि भक्षयिष्यति नान्यथा ॥२९९॥

एवं यावत्सनिद्रोयं[9] भूमौ पातय मत्पुरः ।
भक्षयित्वान्यतो यामि श्रेयसा[10] त्वं गृहे व्रज ॥३००॥

कुमारोवग्घिता शिक्षा वैरिणोपि हि गृह्यते ।
मृगेन्द्र ! सत्यमेवोक्तं का मैत्री स्याद्वनेचरे[11] ॥३०१॥

न मे युक्तमिदं कार्यं[12] कुमारेणापि चिन्तितम् ।
भवितव्यतया बुद्धिः परं [13]भवति तादृशी ॥३०२॥

कुमारोप्येवमावेद्य यावत्तं भुव्यपातयत् ।
कपिस्तावत्समालम्ब्य तथैवारूढवांस्तरौ ॥३०३॥

---

1. B1, B2 and B3 मयका मित्र! जागरूकोप्यहं पुना । 2. B1, B2 and B3 न हि शंका प्रकर्तव्या मयि । 3. B1, B2 and B3 कपिरूचे कुमाराय । 4. B1, B2 and B3 °यते दुष्टो । 5. B1, B2 and B3 त्वया । 6. B1, B2 and B3 न हि श्यामतनुः कथम् । 7. B1, B2 and B3 कुमारोत्संगमाश्रित्य । 8. B1, B2 and B3 वानरो धूर्तदुष्टात्मा । 9. B1, B2 and B3 एवं ज्ञात्वा सनिद्रोयं । 10. B1, B2 and B3 कुशलै[स्] । 11. B2 and B3 °चरैः । 12. B2 and B3 नात्मनः सदृशं कार्यं; B1 omits the previous verse and this foot । 13. B1, B2 and B3 °तव्यानुमानेन बुद्धिर्म° ।

विलंबश्चिन्तयामास कुमारो यावदात्मनि ।
कपी रोषारुणः प्रोचे यथा ज्ञातं तथा[1] कृतम् ॥३०४॥

यद्यहं घातयामि त्वां[2] वाचा मे यात्यहो[3] तदा ।
एवं कर्णे लगित्वायं[4] ददौ दारुणचीत्कृतिम् ॥३०५॥

ततः कुमारः[5] संजातो मूको ग्रथिलचेष्टितः ।
सैन्यकोलाहलात्तावत्कपिसिंहादयो ययुः[6] ॥३०६॥

ततः पदानुसारेण पृष्ठौ सैन्यं समागतम् ।
वनभूम्यन्तरे भ्राम्यद्वृक्षवृन्दान्तरेष्वपि ॥३०७॥

केनापि[7] वृक्षमारूढः कुमारोऽप्युप[8]लक्षितः ।
समायाता चमूस्तत्र[9] दृष्टः शाखामृगोपमः ॥३०८॥

कुमारं पृच्छति क्षेमं विसेमिरा[10] प्रजल्पति ।
भूमावेहि पुनः प्रोक्तो[11] विसेमिरेति भाषते ॥३०९॥

सामन्ता मन्त्रिणो वक्त्रं स्वं स्वं पश्यन्त्यमी मिथः[12] ।
पालोटव्यामिहैकाकी[13] जातः प्रेताधिष्ठितः ॥३१०॥

पश्चात्तापपराः सर्वे किं कृतं विधिनाधुना ।
निर्माय विश्वालङ्कारं कलङ्कः किं कृतोऽधुना[14] ॥३११॥

एवं विचिन्तयन्तस्ते[15] समारोप्य सुखासने ।
कुमारं तं पुरस्कृत्यानयामासुर्नृ[16]पान्तिके ॥३१२॥

भूपोऽप्यालापयामास वीक्ष्य दैष्टां सुतस्य ताम्[17] ।
आस्ते ते कुशलं वत्स ! विसेमिरोत्तरं ददौ ॥३१३॥

कुमारवचनं श्रुत्वा भोजभूपः सुदुःखितः ।
सुतरत्नस्य दोषोयं विधिना विहितः[1] कथम् ॥३१४॥

किं जातं कस्य दोषोयं प्रतीकारोस्ति कीदृशः ।
चित्ते[2] दोलायमानस्तु धारायां प्राप्त ईशिता ॥३१५॥

कुमारचेष्टितं वीक्ष्य सत्यवत्यस्ति दुःखिता ।
कथयामास भूपाग्रे पश्य दैवेन[3] यत्कृतम् ॥३१६॥

उपायो हि कुमारस्य करणीयो यथाविधि[4] ।
येन नीरोगतामेति तव पुण्यप्रभावतः ॥३१७॥

भूपेनानेकविद्यानां दर्शितो मन्त्रवादिनाम् ।
प्रतीकारः कृतस्तैश्च गुणो नाभूत्कथंचन ॥३१८॥

राज्ञ्यूचे श्रूयतां स्वामिन्! भवेद्वररुचिर्यदा[5] ।
तदैवैतं कुमारं हि कुरुते रोगवर्जितम्[6] ॥३१९॥

भूपोवग्देवि ! किं कुर्मः कुकर्मास्ति मया[7] कृतम् ।
पश्चात्तापो ममात्यन्तं[8] कराच्चिन्तामणिर्गतः ॥३२०॥

राज्ञ्यप्युवाच वधकः समाकर्ण्य प्रपृच्छ्यताम् ।
भाग्याच्चेदस्ति जीवन् स[9] सुन्दरं किमतः परम् ॥३२१॥

आकार्य वधकः पृष्टो[10] भूपेन कृतनिर्भयः[11] ।
सोवक् कोपो न मे कार्यः सत्यवादे[12] कथंचन ॥३२२॥

जीवन्मुक्तोस्ति कारुण्यात्[13] प्रच्छन्नं भ्रमति क्वचित् ।
भयानि सन्त्यनेकानि भयं न मरणात्परम् ॥३२३॥

एवं श्रुत्वा नृपो हृष्टो जीवन्नस्ति स चेद्गुरुः[14] ।
तदा यथा तथा कृत्वानेष्यामि स्वान्तिके लघु[15] ॥३२४॥

---

1. B^1, B^2 and B^3 विहितो विधिना । 2. B^1, B^2 and B^3 चित्तं । 3. B^3 देवेन । 4. B^1 and B^2 °णीयस्तद्यथाविधः । 5. B^2 and B^3 यदा । 6 B^1, B^2 and B^3 तदाप्येष कुमारस्य नीरुजं कुरुते क्षणात् । 7. B^1, B^2 and B^3 °मे सहसा । 8. B^1, B^2 and B^3 पश्चात्तापोधुना किं मे । 9. B^1, B^2 and B^3 जीवति [B^1 and B^2 ध्रुवं] भाग्ययोगेन । 10. B^1, B^2 and B^2 °कः पृष्टः । 11. B^1, B^2 and B^3 °याः । 12. B^1, B^2 and B^3 कोपो देव ! न चास्माभिः करणीयः । 13. B^1, B^2 and B^3 कृपया जीवितो मृतः । 14. B^1, B^2 and B^3 जीवमानोस्ति चेद् [B^3 सद्] गुरुः । 15. B^1, B^2 and B^3 कृत्वा ना(वा ?)नयामि निजान्तिके ।

इति निश्चित्य मनसा सुपायश्चिन्तितो महान्[1] ।
ग्रामे ग्रामे निजा मर्त्याः प्रेषिताः शोधहेतवे ॥३२५॥

कथयन्ति प्रतिग्रामं[2] ग्राह्योयं नृपवर्करः[3] ।
स्थूलं कृशं वा यः कर्ता स राज्ञो मारणोचितः ॥३२६॥

ग्रामीणास्तद्वचः श्रुत्वा सर्वे जाता भयाकुलाः ।
शुश्रूषितोयं स्थूलः स्यादन्यथा च[4] भवेत्कृशः ॥३२७॥

नन्दकग्रामवास्तव्या मिलितास्ते महत्तराः ।
गता वररुचेः पार्श्वे विज्ञप्तिः[5] पामरैः कृता[6] ॥३२८॥

ज्ञात्वोदन्तं द्विजः प्राह[7] श्रूयतां मद्वचोधुना[8] ।
शुश्रूष्य वोत्कटः सायं प्रातर्दर्श्यो वृकाग्रतः[9] ॥३२९॥

तदुक्तं तत्र कुर्वाणैर्गते[10] काले कियत्यपि ।
पामरैर्वोत्कटा नीता धरायां भूभृदाज्ञया[11] ॥३३०॥

भूपादेशाद्गृहीतास्ते वोत्कटास्तोलिता अपि ।
स्थूलः केषां कृशः केषां सदृशा नोत्तरन्ति ते ॥३३१॥

तोलितः सम उत्तीर्णो नन्दकग्रामसंगतः ।
पृष्टास्तेपि द्विजं ज्ञात्वा प्रेषितास्तत्र मानदाः[12] ॥३३२॥

द्विजोप्यन्यत्र स गतो न लब्धो नृप[13] पुन्दः ।
विज्ञप्तो नृप[14] आगत्य स्वरूपं कथितं ततम् ॥३३३॥

प्रहिताः पुरुषा राज्ञा[15] ग्रामे ग्रामे निजाः पुनः[16] ।
ग्रामीणान् कथयामासुः[17] नाक्षिपदन्नैक् तत्र ॥३३४॥

युष्मद्ग्रामेषु[18] ये कूपाः प्रेष्या प्राकारान्तरे नु ते ।
विवाहो भोजमपत्यासन्नोयं समागतः ॥३३५॥

ग्रामीणास्ताडयमानास्ते कूपान्प्रेषितु[1]मक्षमाः ।
क्रियते किं प्रोच्यते किं देशः सर्वोप्युपद्रुतः ॥३३६॥

सणवाडा[2]भिधे ग्रामे जनास्तत्र निवासिनः ।
सर्वे वररुचेः पार्श्वे समागत्य व्यजिज्ञपन् ॥३३७॥

तेषां वार्तां समाकर्ण्य द्विजः प्रत्युत्तरं ददौ ।
यूयं गत्वान्तिके राज्ञः[3] कथयन्त्वेव मद्वचः ॥३३८॥

अस्माकं कूपका ग्राम्या नागच्छन्ति पुरे प्रभोः[4] ।
एकः कूपो नागरिकस्तदर्थं प्रेष्यतां[5] वरम् ॥३३९॥

द्वावेकत्र यथा बद्ध्वा प्रेष्येते भूपतेः पुरः[6] ।
हसित्वा भूपतिः प्राह वचो वररुचेरिदम् ॥३४०॥

प्रहिताः पुरुषास्तत्र प्राप्तो नैव गतः क्वचित् ।
पुनः प्रेषितवान् भूपः प्रतिग्रामं निजान्नरान्[7] ॥३४१॥

वालुकारज्जवो लोकैः प्रेष्या राज्ञो गृहाद्गृहात् ।
बन्धनाय तुरङ्गाणां विलोक्यन्ते महादृढाः[8] ॥३४२॥

वचोसमञ्जसं श्रुत्वा ग्रामीणास्ते विलक्षकाः ।
न मुच्यन्ते राजपुंभिर्लञ्चादानादपि क्वचित् ॥३४३॥

देवग्रामनिवासिन्यः सकला मिलिताः प्रजाः ।
कृताञ्जलिभिरूचेथ ताभिर्वररुचिः पुनः[9] ॥३४४॥

ज्ञातवृत्तो वररुचिस्तेषां प्रत्युत्तरं ददौ ।
गत्वा च भोजपार्श्वे तैर्विज्ञप्तं[10] पामरैर्जनैः ॥३४५॥

देव किंचिन्न जानीमो ग्राम्याः प्रेतसमा वयम्[11] ।
एका रज्जुर्दर्शनीया[12] वलिष्यामस्तदग्रतः ॥३४६॥

हसित्वा भूपतिः प्राह ग्राम्याणां नेदृशी मतिः ।
बुद्धिर्वररुचेरेषा शीघ्रं गच्छन्तु भो भटाः ! ॥३४७॥

---

1. B[1], B[2] and B[3] कूपचालन॰ । 2. B[1] and B[2] ॰ड॰; B[3] शिणवाडि(ड्य)॰ । 3. B[1], B[2] and B[3] गत्वा नृपपार्श्वे । 4. B[1], B[2] and B[3] प्रभो । 5. B[2] कूपैकं नागरीकं चेत् प्रेष्यते देव तद् । 6. B[1], B[2] and B[3] प्रेषयामस्तया कुरु । 7. B[1], B[2] and B[3] प्रतिग्रामं भटानपि । 8. B[1], B[2] and B[3] मिट्ट[B[1] ढ; B[2] ढु]र्वो क्रियतां दृढम् । 9. B[1], B[2] and B[3] गता वररुचिर्यत्र विज्ञप्तस्तैः कृताञ्जलि । 10. B[1], B[2] and B[3] भोजभूपाग्ने विज्ञप्तः । 11. B[1], B[2] and B[3] देव न जानीमोस्माभिर्ग्रामीणाः प्रेतसादृशाः । 12. B[1], B[2] and B[3] आर्यं दर्शय मिन्दुर्यां॰ ।

राजादेशाद्गतास्तेपि[1] स गतोन्यत्र कुत्रचित् ।
ग्रामे ग्रामे शोधितोपि न प्राप्तः स तु कुत्रचित् ॥३४८॥

पुनः प्रहितवान् भूपः प्रतिग्रामं[2] निजाञ्जनान् ।
कथयामास तल्लोकान् श्रूयतामेकचित्ततः ॥३४९॥

ग्रामे ग्रामेपि ये सन्ति[3] राजमान्या नरा इह ।
यथाविधि नृपादेशस्तथागन्तव्यमत्र तैः ॥३५०॥

ग्राम्या भीताः समाचख्युर्भूपादेशविधिः कथम् ।
ऊचुस्तेप्येकचित्तैस्तु स विधिः श्रूयतामहो ॥३५१॥

न पादचारैर्नारूढैश्छायायां नातपेपि न ।
भवद्भिरत्रागन्तव्यमादेशो राज्ञ ईदृशः ॥३५२॥

ईदृग्विधं नृपादेशं श्रुत्वा लोको व्यचिन्तयत् ।
द्रविणग्रहणोपाय[4] आरब्धोयं महीभुजा ॥३५३॥

गोदावरी[5]निवासिन्य एकत्र मिलिताः प्रजाः ।
गता वररुचेः पार्श्वे विज्ञप्तस्ताभिरद्भुतम्[6] ॥३५४॥

छिद्रोवग्मेपमारुह्य शीर्षे कार्या च चालिनी[7] ।
मच्छिक्षां प्रविधायैतां यान्तु शीघ्रं नृपान्तिके ॥३५५॥

गताश्चैतं विधिं कृत्वा दृष्ट्वा भूपेन दूरतः ।
हसित्वा ताः स पप्रच्छ[8] ज्ञातो वररुचिर्मया[9] ॥३५६॥

नरान्प्रेषितवांस्तत्र न प्राप्तो धीनिधिः[10] क्वचित् ।
खेदखिन्नस्ततो भूपो निराशः सन् द्विजे[11] स्थितः ॥३५७॥

दध्यौ वररुचिर्नैवं गमनावसरोस्ति मे ।
कृत्वा रूपपरावर्तमुदकारं यतोन्तरम् ॥३५८॥

सुखासने समारुह्य वधूवेषधरो द्विजः ।
गतो धाराङ्गीमध्ये पत्नी यत्र सा स्थिते[12] ॥३५९॥

दिव्यवस्त्रभृता[1] बाला दिव्याभरणभूषिता ।
सुखासनात्समुत्तीर्य पटहं स्पृष्टवत्यहो[2] ॥३६०॥

ये नराः पटहारक्षा विज्ञप्तस्तैर्नरेश्वरः ।
कयापि श्रेष्ठिवध्वाद्यागत्य त्वत्पटहो धृतः ॥३६१॥

तद्वचःश्रुतिमात्रेण प्रेषिताश्च निजा नराः[3] ।
तथैव वाहनारूढा समानीता नृपान्तिके ॥३६२॥

यवन्यन्तरतः[4] क्षिप्ता स्त्रीजनान्तश्च [5]संस्थिता ।
भूपस्तु सपरीवार उपविष्टोग्रतो[6] बहिः ॥३६३॥

देवराजकुमारोपि यवन्यासन्नतः[7] स्थितः ।
समक्षं सर्वलोकानां वध्वा पृष्टो नृपात्मजः ॥३६४॥

द्विजः प्राह कुमाराय तव देहे व्यथा किमु ।
विसेमिरावचस्तावद्बभाषे तद्वधूं प्रति ॥३६५॥[8]

एतद्वचनमाकर्ण्य रोगं ज्ञात्वावदद्द्विजः ।
एकाग्रेण कुमारेदं श्रोतव्यं मद्वचस्त्वया[9] ॥३६६॥

विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तानां हन्तुः किं नाम पृ(पौ)रुषम् ॥३६७॥[10]

एतद्वचनमाकर्ण्य कुमारः पुनरब्रवीत्[11] ।
त्यक्त्वा ह्याद्याक्षरं प्राह[12] सेमिरे[13]त्यक्षरत्रयम् ॥३६८॥

सा वधूः पुनराचष्ट श्रूयतां नृपनन्दन ।
स्थिरं चित्तं समाधाय[14] यद्वदामि तवाग्रतः ॥३६९॥

---

1. B1, B2 and B3 °स्त्रावृता । 2. B1, B2 and B3 स्पृष्टवान् स्वयम् । 3. B1, B2 and B3 प्रेषयित्वा नरान्निजान् । 4. B1, B2 and B3 °रमं° । 5. B1, B2 and B3 °न्तरसं° । 6. B1, B2 and B3 °वारोपविष्टस्तत्पुरो । 7. B2 and B3 यवन्यासन[B2 न्नि]के । 8. B1 omits this verse । 9. B1, B2 and B3 एकचित्त कुमार त्वं श्रूयतां मद्वचोखिलम् । 10. B1 and B2 substitute this verse with another verse which reads as follows:—

संसारस्य अ(त्व)सारस्य वाचासारस्य देहिनाम् ।
वाचा विचलिता येन सुकृतं तेन हारितम् ॥

11. B1, B2 and B3 कुमारेणापि भाषितम् । 12. B1, B2 and B3 त्यक्तमाद्यक्षरं तावत् । 13. B3 स्वमेरे° । 14. B1 °दाय ।

सेतुं गत्वा [1]समुद्रस्य महानद्याश्च[2] संगमे ।
ब्रह्महा मुच्यते पापैर्मित्रद्रोही न मुच्यते[3] ॥३७०॥

एवं श्रुत्वा कुमारोऽपि त्यक्त्वान्त्या(द्या)क्षरयुग्मकम् ।
आलापितो वदत्येवं मिराक्षरयुगं मुखे[4] ॥३७१॥

ऊचे पुनर्वधूर्भूत्वा कुमाराग्रे शृणु त्वकम् ।
हितवाक्यं तृतीयं मे कथयामि यथाविधि ॥३७२॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च[5] ये च विश्वासघातकाः ।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ[6] ॥३७३॥

वधूवचनमात्रेण राजा विस्मितमानसः ।
पुत्रमालापयामास परमस्नेहतत्परः ॥३७४॥

पितृवाक्यात्कुमारोऽवग्रकारमेकमुत्तमम् ।
चमत्कृता सभा सर्वा श्रुत्वा श्रेष्ठिवधूवचः ॥३७५॥

राजंस्त्वं राजपुत्रस्य यदि कल्याणमिच्छसि ।
देहि दानं द्विजातीनां[7] वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः[8] ॥३७६॥

एतच्छ्लोक[9]चतुष्केन नीरोगोऽभून्नृपात्मजः ।
एवं श्रवण[10]मात्रेण विस्मितो भूपतिर्जगौ ॥३७७॥

श्रेष्ठिनोऽसौ वधूः कस्य श्रेष्ठिनः कस्य वा सुता ।
पाठिता केन गुरुणा सुशिक्षा सत्कुलाप्यसौ ॥३७८॥

आश्चर्यं तु परं मेदो यद्भूगृहवासिनी ।
भाषा[11]मरण्यजीवानां जानात्येतद्धि कौतुकम्[12] ॥३७९॥

राजोवाच, युग्मम् ।

पुरे वससि[13] कौमारि[14] ! कदाचिन्नैव गच्छसि[15] !
आरण्यप्राणिजां भाषां[16] कथं जानासि पुत्रिके[17] ! ॥३८०॥

वधूः प्रत्युत्तरं दत्ते यवन्य[1]न्तरके स्थिता ।
वेद्म्यहं यत्प्रसादेन तद्वचः शृणु भूपते ॥३८१॥
देवाचार्य[2]प्रसादेन जिह्वाग्रे मे सरस्वती ।
तत्प्रसादेन[3] जानामि भानुमत्यास्तिलं यथा ॥३८२॥
एवमत्यद्भुतां[4] वाणीं श्रुत्वा धाराधिपोवदत् ।
न वेत्ति तिलवृत्तान्तं मां च वररुचिं विना ॥३८३॥
एप नूनं वररुचिर्वधूवेपात्स[5]मागतः ।
विना तेन न[6] मर्त्येषु बुद्धिलेशः कुतः स्त्रियः ॥३८४॥
चिन्तयित्वैवमेवान्तर्यवन्यां[7] भोजभूपतिः ।
दूरीकृत्य समाश्लिष्टोभीष्टो वररुचिर्द्विजः ॥३८५॥
तयोः प्रमोद उत्पन्नो द्वयोरपि परस्परम् ।
संजातो हृदि[8] संतोपो यं[9] जानाति विधिः परम् ॥३८६॥
प्रमोदेन दिवा रात्रौ शास्त्रचर्चापरायणौ ।
गमयामासतुः[10] कालं सुखेनापि च सर्वदा ॥३८७॥
नृपतिभोजगुणाधिककीर्तनं श्रुतवती किल भानुमती मुदा ।
नृपतिना कुतुकं हि विवाहिता सुमतिना पुरुषेण साप्सराः ॥३८८॥

इति धर्मघोष[11]गच्छे [12]राजवल्लभकृते भोजचरित्रे भानुमतीविवाहवर्णनो देवराज-सञ्जीभवनवर्णनो[13] नाम पञ्चमः प्रस्तावः [14]॥ ५ ॥



1. B[3] °वना° । 2. B[1], B[2] and B[3] देवगुरु° । 3. B[3] तेनाहं नृप ! । 4. B[3] एवं स्तुत्वाद्भुतां । 5. B[1], B[2] and B[3] °वेषे स° । 6. B[1], B[2] and B[3] तद्विना न हि । 7. B[1], B[2] and B[3] °यित्वा तत्रस्थितो यवन्यां । 8. B[1], B[2] and B[3] यज्जातं हृदं° । 9. B[1], B[2] and B[3] °दं तत् । 10. B[1], B[2] and B[3] °मतं । 11. B[3] श्रीघोष° । 12. B[1] and B[2] add before this word; श्रीधर्मसूरिसंताने मूलपट्टे[B[1] ट्ट]श्रीमहेन्द्रसूरिशिष्यपाठकश्री° B[3] adds धर्मसूरिसंताने पाठकश्री° । 13. B[1], B[2] and B[3] सञ्जीभूतवर्णनो ।

19. वृत्तान्तम्—Note the neuter gender of the word which is rather very rare. भूपेन प्रियायाः अग्रतः तस्य वृत्तान्तम् (उक्त्वा) "पुण्ययोगाल्लब्धोसौ हे भद्रे ! अङ्गजन्मवत्पाल्यः" इति उक्तम् इत्यन्वयः ।

20. (N) The Prakritic word मोह means 'deep affection'.

21. वर्द्धापन, 'a festival (on child's birth)'. Cf. the Prakritic वद्धावण.

23. षष्ठिकाचार, 'a religious ceremony performed on the sixth day after the child's birth', in honour of the Mother goddess Shashṭhī, who is believed to decide the whole future of the new-born on that day. नखशुद्धि, 'cutting or washing of the nails (of the child)'. B3 explains the term as नखशुद्धिप्रमुख अशुचिटालना. This ceremony appears to be now not very popular. दशाह्निके, obviously wrong for दशमेहनि, 'on the tenth day'.

31. Note the construction, सिन्धुनृपेण कन्ये तौ विवाहितौ.

32. Note the disyllabic पित्रोः being changed into trisyllable पितरोः to suit the metre. B1 supplements the idea by quoting: गुणैरुत्तमतां याति बालोपि वयसा न हि । द्वितीयायां शशी वन्द्यः पूर्णिमायां तथा न हि ॥ यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः । स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ विभवः पूज्यते लोके न शरीराणि देहिनाम् । चाण्डालोपि नरः श्रेष्ठो यस्यास्ति विपुलं धनम् ॥ (The second of these three verses occurs in Bhartrihari's *Nitisataka*, v.51.)

33. पालक, 'a fostered child',

34. B1 supplements by quoting the following :

एह्यागच्छ समं विशासनमिदं प्रीतोस्मि ते दर्शनात् का वार्ता पुरि दुर्बलोसि च कथं कस्माच्चिरं दृश्यसे ।
इत्येवं गृहमागतं प्रणयिनं ये भाषयन्त्यादरात् तेषां युक्तमसंहृतेन मनसा गन्तुं गृहे सर्वदा ॥

This verse is found in the *Panchatantra* (N. S. Press, 1936, p. 108, verse 276) with some variations.

39. This verse is found in the *Hitopadesa* (Peter Peterson, 1887, p.112).

40. स्पर्शयन्, for स्पृशन् । स्पर्शयन् पाणिना स्पृष्टम्, वात्सल्येन हेतुना पुनः पुनः हस्तेन स्पृशन् इत्यर्थः ।

41. विनाशमित्यादि—तव नाशार्थं यत्नरप्यसौ सिन्धुलः मद्वित्तगौरवात् परिपालनीय एव ननु हन्तव्यः इति भावः ।

42. यदृच्छया = यथेच्छम् । वार्द्धक, 'old age'. परं भवम्, 'next life' or 'great prosperity, i. e. *moksha*'.

44. A maxim, viz , षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः,is attributed to Chāṇakya. *(The Nitisutras*, Mysore, 1957, pt.3, p.2, *sutra* 33). To supplement the idea B1 adds: षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णस्तु धार्यते । द्विकर्णस्याथ मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ॥

This verse is found in Vallabhadeva's *Subhāshitāvali*, (verse 2718).

45. झाट्कार, i- a word imitative of a sound, here that of the sword. व्याघुटितः, 'came back'.

90. जन्मकुण्डलिका, 'the horoscope'.

98. राज्यस्य = राज्यम् ।

99. बाल्ये वयसि संतिष्ठते इति बाल्यसंस्थः । B1 supplements the context by quoting the folowing: काकः पद्मवने घृतिं न कुरुते हंसोपि कूपोदके मूर्खः पण्डितसंगमे न रमते दासोपि सिंहासने । कुस्त्री सत्पुरुषे सदा न रमते नीचं जनं सेवते या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता दुःखेन सा त्यज्यते ॥ विद्यारत्नं सरसकविता भोगरत्नं मृगाक्षी वाञ्छारत्नं परमपदवी यानरत्नं तुरङ्गः । अम्भोरत्नं त्रिदशतटिनी मासरत्नं वसन्तो भूभृद्रत्नं कनकशिखरी मूर्तिरत्नं जिनेन्द्रः ॥ Both of these verses are found in the *Subhāshitaratnabhāṇḍāgāra* (N. S. Press, 1952, p. 84, verse 21; and p. 115, verse 45) with some variations of which केनापि न त्यज्यते, for दुःखेन सा त्यज्यते, and नृसिंहः for जिनेन्द्रः are worth noticing.

104. वधन—Cf. the Prakritic वहण, in the sense of वध, or हनन

108. B1 and B3 have विधीयते, instead of विधीयताम्. This shows that the author, or at least the copyists, do not differentiate between the Present Passive Indicative and the Passive Imprative. And it is why we have the former in the place of the latter in a number of places in this work.

111. कृते कार्ये *i.e.* यस्मिन्नुपाये । चित्रकारकात्—चित्रकारद्वारा इत्यर्थः ।

112. क्षीरोदकपट, probably 'the bark of the kshirodaka tree.' एषः viz. वक्ष्यमाणः *i. e.*, in verse 117 below.

114. Note the Prakritism in प्रेमम् ।

115. Atfer this verse add' इत्युक्त्वा वधकैः सः क्षीरोदकपटः समर्पितः' ।

117. This verse is found in the *Bhojaprabanda* (*op. cit.* p. 7, verse 38), *Prabandhachintāmaṇi* (*op. cit.*, p. 22, verse 35) etc. To supplement this verse, B adds the following: "एतत्काव्यप्रेष(क्ष ?)णात् प्रबुद्धेन मुञ्जेन भोजो न हतः। न धरणी धरणीधर सुंगई नलन भूपति भूधर सिगई । गयते कौरवपाण्डव जगवणी वसुमती कामहिई आपणी ॥

121. भोजदुःखमित्यादि—मृतिं विना मे मनो भोगवियोगदुःखं न विस्मरेदित्यर्थः ।

122. विद्यमानः for जीवन् ।

125. आत्मानं पालकत्वेन (*i. e.* पालितत्वेन) प्रकटीकृत्येत्यर्थः ।

126. B1 supplements : यथा शिखा मयूराणां नागानां च मणिर्यथा । तथाहि सर्वशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

127. गोला (Prakrit)=गोदावरी । तीरं समर्पितम्—तीरपर्यन्तमभिव्याप्तं राज्यं समर्पितमित्यर्थः Cf. भोजसीमायां न स्थातव्यम् etc. in verse 129 below. B1 supplements : राज्यं पालयते राजा सत्यधर्मपरायणः । विजित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयन् ॥ आज्ञामात्रफलं राज्यं ब्रह्मचर्यफलं तपः । परिज्ञानफलं विद्या दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ The last verse is found in the *Dvātrims' atputtalikā* (*upākhyāna, 11*) and in the *Subhāshitaratnabhāṇḍāgāra* (*op. cit.*, P. 157, verse 196).

129. सीमा, 'territory'.

130. प्रयाने, मेनात्तो दोरमङ्कायां सत्यामित्यर्थः । काष्ठं दत्वा, 'having offered wood' *i. e.* for preparing a funeral pile; cf. "कदाचित्तो नृपतेर्नान्तमवगम्य कामपि भाविनीमविनीततया दिपदं विमृश्य स्वयं चितानले प्रविवेश-" *Prabandhachintāmaṇi* op. cit. p. 22-23.

158. B[1] supplements : आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी ज्ञाने मान्द्यकरी तपःक्षयकरी धर्मस्य निर्मूलिनी । पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलोच्छेदिनी मामापीडति सर्वदुःखजननी प्राणप्रहारी क्षुधा ॥

159. तापयति, 'melts'.

161. सन्, विद्यमानः, गर्वो यस्यास्तां सद्गर्वाम् । प्रजल्पति, 'utters'. B[1] supplemetns : वने हि सिंहा मृगमांसभक्षिणो बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति । तथा कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरन्ति ॥

164. मली, 'food'; Cf मलीदा in Hindi. पश्यन्नपि दिशो दिशम्, 'staring at one direction after another [in perplexity]'. B[1] supplements : मांसपेशीमयै रूक्षैर्मूर्खैरक्षरवर्जितैः । पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ता च मेदिनी ॥ दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः । जीवन्तोपि मृताः पञ्च पञ्चभिर्दीर्यते मही ॥

165. गरिष्ठोसि नृपास्मासु—A sarcastic remark.

166. गम्यम्, used for गन्तव्यम् ।

169. Originally प्राप्य instead of ज्ञात्वा (?)

170. ईक्ष्य for प्रेक्ष्य, as in epics.

172. This verse is found in the *Prabandhachintāmaṇi (op. cit.*, p. 23, verse 36*)*, with some variations.

175. दापयामास, used in the sense of कारयामास ।

176. मुक्ताः, i.e. स्थापिताः । प्रचक्रमे *Scil.* 'भोजः' P[1]

179. रसवती, 'a kind of dish mede of cured milk with sugar and spices'.

179-80 विदग्धचित्तया दास्या 'कारणं किम् ? नोदितं मधुरं············गुणः, (तस्मात्) असौ पत्री सकारणा अस्ति' इति चिन्तितम्; (ततः) क्षणात् सा दासी स्नेहान्मूढं नृपं प्रति '(इयं पत्री मन्निकटे) वक्तुं योग्या, अथवा न ?' इत्यवदत् इत्यर्थः । B[1] supplements :

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च । वंचनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥ This verse is found in Prastāva IV [verse 590]. Cf. आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमौषधसंगमे । दानमानापमानं च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ *(Dvātriṃśatputtalikā, Upākhyāna 1).*

182. दापिता = कारिता । वामपादेन तिष्ठति for वामपादमनुतिष्ठति ।

186. B[1] supplements : खलानां नास्ति दोषोयं स्वभावमनुवर्तते । कुर्वन्ति तेषु साधुत्वं ते खला न खलाः खलाः ॥ दुर्जनस्य दुराध्य(ढ्य?)स्य वाचा चन्दनशीतला । मधु स्रवति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम् ॥ न च मे पर्वता भारा न च मे सप्त सागराः । कृतघ्ना हि महाभारा भारं विश्वासघातनम् ॥ अहो प्रकृतिसादृश्यं दुर्जनस्य खलस्य च । मधुरैः कोपमायाति कटुकैरुपशाम्यते ॥

187. लत्ता—A Desi word meaning 'a kick'. Cf. लात, in Hindi.

189. पापम्, *i.e.*, वधः ।

191. मर्कटेन etc : One may expect मर्कटो हि योगिनेव भ्राम्यते । योगी = मर्कटोपजीवी ।

192. This Prakritic verse is found in *Prabandhachintāmaṇi* (*op. cit.*, p.23, verse 38).

193. मण्डकम्, *s. a.* मांडा, (Hindi) *i. e.*, a kind of thin, large bread, made of wheat, sugar and ghee. खण्डितम्, 'broken'.

Subhashitaratnabhāṇḍāgara(op. cit., p. 185 verse 19) B[1] supplements: अग्रे मात्स्यिकपुत्री मिलिता, तयोक्तम् – नदीपु दीयते दानं प्रतिग्राही न जीवति । दातारो नरकं यान्ति तस्याहं कुलबालिका ॥ अग्रे चित्रकरपुत्री मिलिता, कारवम् ? तयोक्तम् – विहिता निर्विषा नागा गजाः शक्तिविवर्जिताः । बलमुक्ता भटास्तत्र तस्याहं कुलबालिका ॥

224. गतः *Scil.*, द्विजः While describing the meeting of Sarasvatīkuṭumba with the hunter's wife, Rājavallabha combines, not very ingeniously, the episodes of Sarasvatīkuṭumba, of a hunter's wife's meeting with Bhoja; and of a conceitful scholar separately told by Merutuṅga (*Prabandhachintāmaṇi* op. cit. p. 27-28 and p. 29-30). Hence it is difficult to explain, suitably to the context, the expressions पुलिन्द कुटिकां गतः (verse 224) गता भोज सभान्तरे (verse 225), देव ! त्वं जय, and भोज ! (verse 226) and पटकुटीस्थितः (verse 227)

226. पलम् 'flesh'. This verse is found one of the MSS. of the *Prabandhachintāmaṇi* (See note on verse 224 and also in the Bhojaprabandha *(op. cit.*, p. 39-40, verse 182) with some variation. दुर्वलम् = दुर्लभम्

228. शिशुः, used in the sense of कुमारः ।

230. रारटीति—A form of Intensive, from the root रट् 'to cry'. Note the localism in विद्वांसलक्षणम् ।

231. क्रिया, 'a verbal form'. गुज्यते, in the sense of गुज्यताम् ।

233. पृष्टा, in the sense of उक्ता । In the *Prabandhachintāmaṇi*, this समस्या is found given to the grandson of Sarasvatīkuṭumba (*op, cit.*, p. 27). The expression भोजराज्ये does not form part of the *samasyā* Cf. verse 236 below.

234. Note the word समस्या, used in the sense of that portion of the verse to be filled up; *i. e.*, the first three feet of it.

235. This verse together with verses 237, 240, 242, 245 found, with some variations in the *Prabandhachintāmaṇi* (*op. cit.*, pp. 27–28, verse 58–61). The second foot is from Kalidāsa's *Kumārasambhava* (verse 1).

237. Before यथा, add 'तच्छ्रुत्वा पुन उवाच' See note on verse 236.

238. Note the meaning of समस्या here. तद्द्वितया पुनरपि क्रिया; Cf. *Prabandhachintāmaṇi* (op. cit., p. 27, 11. 26–27).

241. विनोदेन = विनोदार्थम् ।

242. Add, before this verse, सा उवाच ।

244. Note the rare use of आरटम । कनी = कन्या ।

245. This verse is found in the *Bhojaprabandha* (op. cit., p. 46, verse 212) as uttered by the maid-servant carrying the fly whisk of Bhoja. Cf. also note on verse 235 above.

246. कन्याः the possessive form of कनी । उद्वोढुं व्यभिलषदित्यर्थः ।

247. लक्षम् viz कन्यकानि etc.

248. To obey the metrical rule पञ्चमं लघु सर्वत्र, the expression तद्विपासनया is

279. प्रतोलीदान, in the sense of प्रतोलीद्वारविधान; Cf. द्वारे चोद्घाटिते सति, in verse 282 below.

280. संस्तारकं व्यधात्, 'made (his) bed' *i. e.*, 'slept'.

283. This verse is an adaptation of a passage in the *Prabandhachintāmaṇi* (op. cit., p. 36, pp. 16–20).

584. अङ्गचिन्तार्थं, 'to attend the nature's call'; Cf. कायचिन्ता, in prastāva III, verse 1.

285. गुरु, (i. e.) the head of the *sangha* at Ujjayinī. B1 supplements :

शूद्रोपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोपि क्रियाहीनः शूद्रापत्यसमो भवेत् ॥

and एह्यागच्छ समं विश etc. *i. e.* the verse quoted to supplement the verse 34 above. And it adds also चत्वारि खलु कर्माणि ।

286. The idea is this : Śobhana first greeted the *sangha* and then, following the instruction of the *guru*, went his brother's house.

287. चित्रशाला उपाश्रयत्वेन दत्ता इत्यर्थः ।

288. संसाराद्विमुक्तं नान्यकं, संन्यासिनम् इत्यर्थः । तेन् *viz*, 'शोभनेन' p1 and p3.

289. आधाकर्मिकदोष, 'sin resulting from आधाकर्मन्, or food specially prepared for the sake of a jaina *bhikshu*'. The jaina *bhikshus* are prohibited from accepting such food.

Cf. भजेन्मधुकरीं वृत्तिं मुनिर्म्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नैव भुञ्जीत बृहस्पतिसमादपि ॥

in the same context in the *Prabandhachintamaṇi* (op. cit., p. 36, verse 85). गोचराय = भिक्षार्थं ।

291. श्राद्धी, 'a woman with belief (in jainism)'. Note the very rare Ātmanepada form शुद्ध्यमानम् 'इदं दधि अपि शुद्ध्यमानम् ?' इति गुरोः प्रश्नः । 'दिनत्रयसंबन्धि इदं दधि' इति श्राविकया संप्रोक्तम् इत्यर्थः ।

The fourth foot is the final declaration of the *guru* and it probably means 'according the scriptures, it is not acceptable for me'.

292. प्रच्छनीयः, in the sense of प्रष्टव्यः ।

293. B1 supplements :

पापान्निवारयति योजयते हितेषु
दोषं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति लोके
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

294. श्राद्धः, 'a man with faith (in jainism)'. विप्रतारकः = विशेषेण प्रतारकः

295. वाचा प्रतार्यते, used in the sense of वाचा (= वाक्) सम्यक् पाल्यताम् ।

cit., p. 39, verse 67) and in the *Prabhāvakacharitra* (op. cit., p. 233, verse 143) in the same context.

331. केवलज्ञानवर्जिते पश्चिमकाले, 'In the later period devoid of the *Kevala-jnāna* or Omniscience'. The *gaṇadhara* Jambūsvāmi is said to be the last Jaina to reach the goal of *Kevala-jnāna*. After him, both the *Kevala-jnāna* and *Moksha* became unobtainable for men due to the degeneracy of the *Avasarpiṇi*. पूर्वं मिथ्यात्वी, मिथ्याज्ञानवान् धनपालः इदानीं यथा प्रबुद्धः तथा न परः इत्यर्थः ।

332. संस्तारदीक्षा, 'a vow to lay down and not to get up'. Here the idea appears that Dhanapāla took the *sallekhanā* vow or a vow of voluntarily submitting to death through starvation. Cf. धनपालः⋯ ⋯ ⋯अनशनात्सौधर्मंगतः, in one of the MSS of the *Prabandhachintāmaṇi* (op. cit., p. 42, line 15). क्षामणक *s. a.* क्षामणा, 'begging pardon (during the time of fast) for one's past misbehaviour'.

II PRASTĀVA

1. विज्ञप्तः, *i. e.* विज्ञापितः ।

2. The first half of this verse constitutes the report by the *Pratīhāra*, while the second half tells us what action was taken by Bhoja on getting the above information.

Kaliṅga is a country roughly comprising the modern Orissa. न्यग्रोधाधः; probably 'a guest house near the *nyagrodha* trees. Note the position of अधः in the compound.

3-4. These two verses make a *yugmaka*. शीर्षाणि, 'skulls'.

5. कथं मूल्यं विधीयते, विधातुं शक्यते इति इयं वार्ता, हृदये विचार्या, विचारणीया इत्यर्थः । इदं च भोजराजवचनम् ।

6. Before this verse add : वररुचिरूचे ।

7. 'मूल्यकारणमधिकृत्य वक्तव्यम्' इति विज्ञप्तमित्यर्थः ।

8. दिव्यग्रन्थनात् छोटितानि, 'taken out of the excellent bag'. Cf. the prākritic छुट्ट ।

10. वक्त्रे = वक्त्रमार्गेण ।

11. सहस्रदशकम् *viz.*, मूल्यम् ।

12. भग्नवराटिका, 'a broken cowrie'.

16. वद्धापक, 'an informer of good things'.

17. Note the synonyms in आशा-दिशि । पुहवि (Prakrit) = पृथिवी । But B[3] explains पुहविट्ठान, as 'पैठाणपुरपट्टन' *i. e.* the modern Paiṭhān on the northern bank of the Godāvari in the District of Aurangabad in the modern Mahārāshtra. However it may be remembered that Paiṭhān is known in the literature and in epigraphs only as *Pratishṭhāna*. *Paiṭṭhāṇa*, *Palitthāṇa* *Paithāna* or *Potali*, and not as *Puhavisṭhāna*.

18. कीर्तनक, 'praise'. Cf. the Prakritic कित्तण । स्वयंवरः = स्वयं भर्तृवरणयोग्यवयोविशेषः।

57-58. 'तौ गतौ' इति प्रजापतिः अवक्; ततः, '(यदा) वलमानौ (पुनः दृश्येते) तदा अस्माकं (निकटे) कथनीयम्' इति शिक्षां दत्त्वा इत्यन्वयः। प्रजापतिः = 'कुम्भकारः' P[1] The words पतङ्गी and पतङ्गिका (verse 60 below), though ordinarily mean 'flying ant', appears to be used to mean here 'horse flying by means of mechine'. Cf. the word पतङ्ग meaning 'horse'; and also अश्वाकाशस्थितं सैन्यम् in verse 67 below.

60. Note the word स्फुरति (from the root स्फुर, 'to shine') used as an adjective of darkness. Cf, तमः प्रभा, in note on Prastāva I, verse 137.

61. चङ्ग and झात्कार are imitative words

63. अदग्धस्वर्णकार्येण = अत्युत्कृष्टस्वर्णानयनरूपकार्यार्थम्(?)। प्रस्थानके स्थितः 'is on his march'.

65. Note the form जल्पतुः for जजल्पतुः। महत्यपि कष्टे, 'inspite of great difficulties.'

70. अर्जुनम् = 'स्वर्णम् P[1] and P[3].

71. ताः = इष्टकाः।

72. प्रेष्यन्ते, *i. e.* प्रेष्यन्ताम्।

74. चौरे इव, चौरवत्।

75. प्रगे, 'in the morning' विज्ञप्तः *i. e.* विज्ञापितः।

76. दानी = दाता। मानेश्वरः = मानवतां मुख्यः।

77. Note the gender of वज्रम्।

78. स्तोके अर्थे (प्रेषिते सति), न (किंचित्) विरुद्ध्यते, न हीयते, इत्यर्थः।

79. This verse occurs in the *Dvātrinis'alputtlaikā (upākhyāna 18)* and twice in the *Panchatantra* (op. cit., p. 6, verse 19; and p. 191, verse 29.) स्वल्पाद्भूरिरक्षणम् = स्वल्पमपेक्ष्य परित्यज्य वा भूरिवस्तुनो रक्षणम्।

80. तैः = विभीषणस्य प्रधानैः।

81. ढौकिताः, 'were offered'.

83. विमुक्तकाः, 'were sent'.

84. उपाङ्गचक्रवर्ती, 'a master of state craft'. वचः = विरुदम्।

85. Note the localism, in the use of the word दण्ड to mean "the amount paid as a fine of tribute".

88. मेदिनीचारिणः = मेदिन्यामेव चारिणः।

89. रङ्ग, 'divertion', भूमिस्थोपि देवराजवत्, इत्यर्थः।

III PRASTĀVA

1. कायचिन्ता, *s. a.* अङ्गचिन्ता, in prastāva I, verse 285.

2. राजप्राहरिकान् नृपान्, 'the chiefs, working as *Prāharikas* of Bhoja.'

4. अन्तः हृष्टः सन् इत्यर्थः। रमा, 'wealth'.

5. यः वररुचिः आस्ते सः प्रगे, प्रातः, आगन्ता, आगमिष्यति, स एव न अपरः इमां वार्ताम् अधिकृत्य प्रष्टव्यः इत्यर्थः।

60. तानि, 'the heads of the *syamaka*. Note the localism in तापे मुक्त्वा । अतिपाचनात् = सम्यक्पाचनादनन्तरम् । तापे मुक्त्वा पाकं, अतिपाचनादनन्तरं परिवेषणं च अकरोत् इत्यन्वयः ।

61. भाजने *i. e.* अन्नस्य भाजनसमीपे ।

62. कदन्नम्, 'rude food'. षड्भागेनेत्यादि–षड्भागेन परिच्छिद्य, अधिकप्रमाणं यथा स्यात् तथा परिवेषितमित्यर्थः । भग्नी = भगिनी ।

64. तत् = तथा (एव) ।

65. धर्मलाभस्याशिषमित्यर्थः ।

66. This verse appears to be a quotation. प्राप्यन्ते' *viz.*, 'पूर्वोक्ताः' P¹ and P³.

67. Before this *(verse)* add : देवराज उवाच

68. भावतः, 'with devotion'.

69. प्रासुक, 'pure'; Cf. Prastāva IV, verse 172,

75. स्वभावेन, 'on her own accord'.

77. अहम् = 'सारङ्गः' P¹ and P³. Note the repetition of अहम्.

79. शूलोदितम्, *i. e.*, शूलवेदनातुल्यम् उदितम् । हुंकारात् इत्यादि – तत्क्षणे एव मुनिः हुंकृत्वा चारण इव आकाशे गत इत्यर्थः ।

81. वल्लभाः = प्रियाः

86. भक्तपानादिविषया त्वच्चिन्ता अतःपरं मम अधीना अस्तु इत्यर्थः ।

87. तत्र = 'जिनालये' P¹ and P³.

88. Note the Passive पाल्यमानः and लाल्यमानः used for the Active पालयानः and लालयानः respectively. पूर्वं, पूर्वस्मिन् काले, अर्पिताः प्रदत्ताः श्रियः राज्यादि धनसंपदः यया ताम् पूर्वार्पितश्रियम् ।

91. धूर्तितः 'was cheated'. Cf. the Prakritic धुत्तारिअ, and धुत्तिअ ।

92. स्वरारोपात्, *i. e.* रोपेण । तलारक्षः same as तलवरः (of the inscriptions), meaning 'city-guard'.

93. निरर्थकम् : मद्वाचकं न भवेदित्यर्थः ।

95. कियत्स्वहस्सु गतेषु इत्यर्थः ।

98. काया = कायः ।

99. नागरिका, for नागरिकया ।

100. नैष्कल्यमिति; अर्थात् तेषां गुणानाम् ।

101. घन, 'many' or 'great'.

103. प्रस्ताव, 'opportunity'.

104. काश्मीरमण्डल, same as the modern Kashmīr.

105. खाद्यफल, 'eatable (fruits).

106. Note the synonyms अहन् and दिवस ।

107. Note यत् and यथा used side by side.

108. गुफा = गुहा । केटके, 'in the rear'

109. यास्तिहोपि न निवर्तते इत्यर्थः ।

110. विश्रामनगीं = विश्रामजननीम् ।

111. कियत्स्वपि दिनेषु गतेषु इत्यर्थः ।

5. कथम्, 'why ?'.

7. Before this verse add शुक ऊचे ।

8. मे शिक्षां कुरुत = मया कर्तव्यत्वेन शिक्ष्यमाणामुपदिश्यमानामनुतिष्ठत ।

11. आवाभ्यां गम्यते *i. e.* आवां गमिष्यावः । पुलिन्द्र = पुलिन्द ।

13. This verse appears to be a quotation. राजते = विराजते । राजते = रजतमये ।

17. This verse attributed to Mayūra is found in the *Subhāshitāvali* (op. cit., verse 2513).

19. शुकवाक्ये प्रमाणतां कृत्वा 'कोरमूल्यं समादिश' इति भूपालः पुनः पुनः वदति स्म इत्यर्थः ।

20. घनम्, 'great amount'.

21. शुकः स्वपार्श्वस्थः कृत्वा रक्ष्यते इत्यर्थः ।

24. कियद्भिस्तु दिनैः *i. e.* कियद्दिनानन्तरम् । वनेत्यादि–बहुदिनसाध्यायाः वनक्रीडायाः अर्थे हे स्वामिन् ! गम्यताम् इत्यर्थः ।

25. शशिप्रभा, *i. e.* 'पट्टराज्ञी' P[1] and P[3].

26. पुरी, *i. e.*, अन्तःपुरी ।

27. सामुद्रिकीम् (°द्रिकाम्) = 'शरीरलक्षणाम्,' P[1] and P[3], *i. e.* शरीरस्य लक्षणानि ।

29. मक्षिकाः मधुवृन्दे इव इत्यर्थः ।

31. Note गत्या and गामिन्या ।

36. 'सा पट्टराज्ञी' इति समादिशेत्यर्थः ।

49. तत्समाना त्वम् : cf. मत्समाना, and त्वत्समाना in verses 45 and 47 above.

50. सपत्निकाः for सपत्नयः; cf. the Prakritic सवत्तिया । मन्ये, *scil.*, 'अहम्' P[1] and P[3].

52. आभोप for आभोग, 'enjoying'.

54. आह = पप्रच्छ । स्थित्वा = तूष्णीं स्थित्वा ।

54. विरुद्धम् = विपरीतम् ।

57. ताम्, *viz.*, 'दासीम्' P[1] and P[3]. गृहीत्वेत्यादि – तां सखीं स्वसमीपे गृहीत्वा त्वं राज्ञीप्रसादहेतवे "किं करोमि, तिर्यञ्चः ज्ञानवर्जिताः" इति वद इति नृपः प्राह इत्यर्थः ।

59. भूपं कारय भोजनम् *i. e.* भूपं भोजय ।

60. कुत्सितम् आग्रहम् = कदाग्रहम् ।

62. आलापान् = 'वचनान्' (*i. e.* वचनानि) P[1] and P[3].

63. विवेकिनि, P[1] and P[3] explain this word as हे विवेकिनि । It may also be taken as an adjective of हृदये । The usual reading of the verses supplemented by B[3] is :

गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी सीदत इव, प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव ।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो ! कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम् ॥

[Vallabha attributes this verse to Bāṇabhaṭṭa (*Subhāshitāvali op. cit.* verse 1612)]

मन्दे वात गृहे गृहे युवतयस्ताः पृच्छ गत्वाधुना, प्रेयांसः प्रणमन्ति किं तव पुनर्दासो यथा वर्तते ।
आत्मद्रोहिणि ! दुर्जनप्रलपितं कर्णे वृथा मा कृथाश्छिन्नस्नेहरसा भवन्ति पुरुषा दुःखानुवर्त्या यतः ॥

106. आलापितवान् स्त्रियः *i. e.* स्त्रीभिः सहालापितवान् ।

107. मनोरमा, *i. e.* 'जन्मेजयस्य राज्ञी' P[1] and P[3].

109. देवदूष्यम्, 'the heavenly garment'. Cf. the Prakritic दूस and देवदूस ।

111. राज्ञी आत्मनि ऊचे इति भावः । प्रियः = 'भर्ता' P[1] and P[3].

113. प्राघूर्णिकाः 'guests'. Cf the Prakritic पाहुणिअ, पाहुणग in the same sense.

114. चतुर्धाशन, *viz.*, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, and चोष्य । गभस्तिः = 'सूर्यः' P[1] and P[3].

116. Note the word प्रावृत, used in connection with a jewel. Cf. verse 109. above,

117. दानेन प्रेषिताः, obviously in the sense of दानानन्तरं प्रेषिताः । सुखग्राही = सुखी ।

119. Add राज्ञ्यूचे and राजोचे, respectively at the beginnings of the first and the second halves of this verse. प्रच्छनीया, for प्रष्टव्या । वार्ता = विषयः । ममापि = मत्सकाशादपि ।

120. विधीयते *i. e.* विधीयताम्; तद्दोहदपूरणायेति शेषः ।

121. मारिवाक् = मारणवार्ता ।

122. घातनीया for हन्तव्या ।

124. न अन्यथा दर्शनैः नवैः, 'not by new instructions (intended to satisfy me) in a different way' (?).

125. प्रवर्तितः, for प्रवृत्तः । लङ्घनम्, 'fasting'.

126. कियद्दिनैः, for कियद्दिनानन्तरम् ।

127. बुद्धिप्रपञ्चं, 'various tricks'. ग्रहीतव्य, 'to be brought round'.

128. लङ्घते, 'abstains from food'.

132. सा (in the fourth foot) = 'वापी' P[1].

133. दीनानां दुःस्थितानां च दानानि इत्यर्थः ।

136. शोधिता, 'was searched'.

68-136. The *Kathāsaritsāgara (Taranga 9)* tells us the following story: Once Janamejaya's son Śatānika fought in the side of the gods against the demons and died. Indra invited Śatānika's son Sahasrānika to the heaven. Being cursed by Tilottamā there, the prince lost his wife, who was fond of having a bath in a blood-tank in the same way as Rājavallabha narrates. But Sahasrānika got her back after fourteen years.

140. वाढं पं(म)चयति स्वं यः, 'One who too adamantly bindes oneself to cause' (?).

141. परिणीता वा, कौमारी वा, *i. e.* अपरिणीता वा, इति वृत्तान्तमित्यर्थः । Cf. कुमार्यद्यापि किं त्वकम् ? (verse 399 below), a question of the parrot put to Pushpāvatī.

145. P[1] and P[3] explain शेनिका विक्रमेण as शेनिका नाम्नी, विक्रमेण राज्ञा. The name of this heroine is given also as Sechānī in the succeeding verses *viz.*, 155 etc. This story is actually found among the legends of Vikrama with some variations; *e. g.* doves, play the part of the *sechānakas*.

147. Vāruṇapattana may be identical with the place Varuṇatīrtha or Salilarājatīrtha on the mouth of the Indus, mentioned in the *Mahābhārata*.

149. कियद्वर्षैः : अनन्तरं नूनीया ।

150. संतारं नन्वसौ = 'संतारकर्त्री' P[1] and P[3]

188. समायान्ति, for संवसन्ति or समातिष्ठन्ति ।

189. विदित: etc., 'was well known even in those places which were far removed from (his) way'.

190. कनी = 'कन्या' P1 and P3.

193. सुस्वरा: = सुस्वरगानशीला: । सरसा: = सरसालापिन: सरसकविताकर्तारो वा । मन्ये, *scil.*, अहम् (i. e. the author).

194. सन्नह्य = 'सन्नाहं(= कवचं)परिधाय' P1 and P3. Note शस्त्रपाणिस्थ:, evidently used in the sense of पाणिस्थशस्त्र: । Cf. कण्ठपादेस्थ:, in the sense of पादेस्थकण्ठ:, in Prastava I, verse 140.

197. वाचम् *i.e*, अहं ते प्रार्थनां पूरयिष्यामि इति प्रतिज्ञावाचम् ।

199. धार्यते, 'is preserved' or 'is kept'.

201. शिक्षा, 'advice'.

206. कबन्ध = 'धड' P1 and P3.

208. नमस्कृतम् for नमस्कृतम् ।

209. तया, *viz.*, 'प्रियया' P1 and P3. काष्ठानीति–अग्निप्रवेशार्थं काष्ठानि मेर्पयेति भाव: (Cf verse 212 below and note on Prastava I, verse 130). नारिणामित्यादि सामान्यतो नारीणां विशेषत: कुलस्त्रियामित्यर्थ: ।

210. मृतेपि, भर्तरि मृतेपि इत्यर्थ: ।

211. तव, etc., 'O lord' is there anything called good conduct in your land ?'

212. काष्ठावरोहणे इत्यादि – चिताकाष्ठारोहणसमये बन्धुभि: "तिष्ठ तिष्ठ" इति वच: उच्यत इत्यर्थ: ।

213. अकारापयत्, for अकारयत् ।

214. युग्मस्नान : It is believed that two baths are necessary to get oneself purified of the *savasaucha* or the impurity caused by being associated in the obsequies. ना = नर: ।

216. महपुरुषै: पूर्वोक्तं वच: न अन्यथा भवतीत्यर्थ: ।

217. This verse appears to be a quotation. All MSS read 'स्त्री:' only । दुर्गत: = 'दरिद्र:' P1.

221. कैवारं = 'नृत्यम्' P1 and P3. नरप = 'नृप' P1 and P3. घनम्, '(of) great amount'.

222. नृपतेर्लोक: = राजपुरुषा: । संमद, 'great joy'.

192-222. A story of a magician similar to this is found among the legends of Vikrama *(Dvatrims'atputtalikā, Upākhyāna 30)*.

224. तिलक, 'caste mork'.

225. ज्ञाता = 'ज्ञातासि' P1 and P3.

226. प्रकरितम् = उक्तम् । प्रत्यय: = परिनिष्ठितं ज्ञानम् *'confidence'* or 'clear understanding'. वहे, *Scil.*, 'अहम्' P1 and P3.

227. The word प्रत्यय, appears to used in the sense of उद्देश्य, 'motive' in the first three instances. अंहते: = 'दानस्य' P1 and P3 प्रत्ययप्रत्यया: प्रत्यय:, सम्यक् ज्ञानं, तया, प्रत्यय:, उद्देश्यम्, इत्यर्थ: ।

279. पञ्चामृत, *viz.*, मधु, क्षीर, पयस्, दधि and घृत ।

280. गजवाजिसुवर्णाद्याः (मदीयाः यदि दत्ताः, ते) तव मन्दिरे (विद्यमानानां) पादार्घाः (एव भवेयुः) इत्यर्थः । तव, *i. e.* 'तव परम्' P1, तवैवेत्यर्थः ।

281. एतद्वचनमाकर्ण्य, *Scil.* 'मन्त्रिमुखात्' P1 and P3.

282. मण्डपम् = विवाहमण्डपम् ।

283. The word *karamochana* literally means 'releasing of the hand (of the bride by the bridgroom)' but figuratively 'the end of the marriage ceremony'. Cf verses 429 and 498 below and also :

मुमोच स कृतोद्वाहः करात्तत्सेश्वरो वधूम् ।
ततस्तथा ददौ तस्मै रत्नानि मगधाधिपः ।

Kathāsaritsāgara (op. cit, p. 54 verses 82-83). जामातृकरमोचने for जामात्रे करमोचने ।

284. वीवाह = विवाह ।

285. सेचानिका, *i. e.* 'चन्द्रसेनस्य पुत्री' P1.

286. Note the localism in the expression उद्यमोपरि in the sense of उद्यमे, *i. e.* उद्यमविषये ।

289. शकुनजांघेया, wrong for °जाङ्घेया ? But B3 explains the expression as 'शकुन-जंघ उपरि' ।

292. Daśapura is usually identified with the modern Mandasor in Malwa.

293. पितृमातृभ्याम् for मातापितृभ्याम् । बालत्वे, for बाल्ये वयसि ।

297. 'अस्य पित्रा विवाहमधिकृत्य वार्तापि न कथ्यते' इति वदन्तो हसन्ति इत्यर्थः ।

299. संप्रदायेन संयुतः, 'one who follows the custom'. Cf. संप्रदायेन संयुता, in Prastāva V, verse 129. वामशायीत्यादि—यत्र श्रेष्ठी वामशायी स्थितः, तत्र नापितः संप्रदायेन संयुक्तः सन् आगतः इत्यन्वयः ।

303. कस्य चाप्यन्तिकात् इत्यर्थः ।

304. निकटं ह्यस्ति चात्मनः—In Malwa there appears to be no Virāṭanagara near Mandasor i. e. Dasapura, the home town of the śreshthin. The famous Virāṭanagara of the *Mahābhārata* is identified with Bairat in the former Jaipur State.

306. स्वस्थम् = वस्तुस्थितिम् ।

308. देव्या = देवी, (just as कन्या = कनी). The meaning of this word is rather doubtful. It is this *devi* that appears to be referred to as *sakuna* in verses 315, 316, 338 etc., below. So *devyā* may be same as the *sakunadevatā* or a goddess presiding over omens. (Cf. the expression मातः ! in verse 312 below.) Again here the goddess appears to be supposed to make sound thrice at the left hand side of a person (denoting good omenf or him) throug the mouth of *sakunā*, or 'a house-lizard' whose sound is often similar to that of a sparrow. (Cf. verse 311 below). ग्रामान्तरे तदा यामि, अन्यं ग्रामं, अर्थात् स्वगुरुग्रामं, तदा गच्छामि इत्यर्थः । व्याघुटिष्ये, for व्याघुटिष्यामि, or व्याघोटिष्ये, '(I) will come back'.

309. सूता, for उक्तवती । सा, *viz.*, देवी । प्रातः, *scil.*, द्वितीयदिने (?)

311. चटकः 'a sparrow'. मधुरमदुस्वरः, a *Bahuvrihi* compound. जल्पितः = जल्पितः ।

353. नूनम् = 'स्फुतम्' P1 and P3.

354. भ्रुकुटीभीषणेक्षणो राजा नग्नत्वमित्यादि तं प्रत्युवाचेत्यन्वयः ।

356. द्रव्यदान, 'giving money as bribe'.

357. तलारक्षाः = स्थलरक्षकाः, 'police men'. दीर्घः, 'tall'. अल्पा = 'ह्रस्वा' B1and B2. शूलारोपणं कथं क्रियते इत्यर्थः ।

358. शूलिकामानः—a *Bahuvrihi* compound of उष्ट्रमुख type.

360. शूलिकानुमानेन ज्ञात्वा = शूलिकामानमनुसृतेन मानेन सहितं ज्ञात्वा । सालकम् = श्यालम् ।

362. शिक्षा, 'advice'. धार्यते, in the sense of धार्यताम् ।

363. दण्डः, used to mean 'that which is paid (as penalty)'. तलारक्षे, for तलारक्षाय or °रक्षेभ्यः । नेष्याम: forआनेष्यामः । दीनार, 'a gold coin' (from the Greek *dinarius*) It is not easily explainable why the king himself (or his ministers) had to pay his city guards 1000 *dinaras* for releasing his brother-in-law. Probably it was in tune with the funny law of Anyāyapurapattana.

364. यज्जातमन्यायपुरपत्तने, तादृशं तव राज्येपि पश्यामि इत्यर्थः ।

369. नन्दायाः भगिन्याः लघुनन्दायाः कनीयस्याः नन्दानाम्न्याः इत्यर्थः । नन्दायाः भगिन्या सह लघु अविलम्बेन इति वा अर्थः ।

272-370. In a legend of Vikrama, we meet a parrot telling a story of a disloyal wife almost like the above story. There a thief plays the part of the *sakuna* of the present story.

371. The construction is somewhat confusing. probably it means this: चन्द्रसेनेन भूपेन यथा शुकमुखात् श्रुतं, तथा शकुनस्य जातौ (i. e. शकुने) आस्तिक्यं जातम्; पुनः पृच्छा (कृता तेन; तदा शुकः) उत्तरं ददौ ।

372. आगमे i. e. शास्त्रे, निमित्तशास्त्रे अथवा, आगमे ज्ञानाय, शुभनिमित्तस्य सम्यज्ज्ञानाय इति वा ।

374 अथ = "तदनरः" P1 and P3 , evidently for तदनन्तरम् । पुण्यावती, *i. e.*, 'परिणेतुं या प्रागङ्गीकृता' सा, P1 and P3 .

376. अटव्या, for अटवी ।

380. Note अर्थ-हेतु and the चतुर्थी one after another.

381. महता = श्रेष्ठेन ।

382. अस्याः कुमार्याः पित्रोरित्यन्वयः । मम सुतारत्नम् for अस्मत्सुतारत्नम् ।

384. गृहाण is changed into गृह्ण to suit the metre.

385. मया गम्यते *i. e.*, मया सह गम्यताम् । वचः *i. e.*, वचोविषयं कार्यम् ।

387. युगादिः, 'Jina Rishabha'. गर्भगृह 'sanctum sanctorum'. प्रविष्टो दक्षिणे भुजे, 'entered (a path) in the right hand side'. The first and second halves of this verse appear to have been interchanged.

388. अष्टप्रकार, *viz.*, the five *pujas* mentioned in prastava II, verse 42, together with *pradakshina*, *namaskara* and *prarthana*. कायोत्सर्गं 'in the stable posture for meditation'. Cf. the Prakritic काउस्सग्ग, काउस्सग्ग and काओसग्ग in the same sense.

389. Note the position of the *avyaya* सार्धम् in the compound. Cf. *prastava* I, verse 10.

441. स्त्रिया, *i. e.*, 'नव्यपरिणीतया' P1 and P3 .

443. निर्व्यञ्जनस्थितम् = 'रहसि स्थितम्' P1 and P3. चिन्तां पप्रच्छ, चिन्तामधिकृत्य पप्रच्छेत्यर्थः ।

446. मद्वचः = मयोपदिष्टम् ।

447. वा = यदि । अथ = तदा ।

448. परं कारणम् = विरुद्धं (*i. e.*, त्वदुक्ताकरणे) कारणम् ।

449. P1 explains : 'यथा चक्री चतुःषष्टिसहस्रस्त्रीपतिस्तथासावपि ।' कियत्यः, अल्पसंख्याकाएव, वल्लभाः चक्री पुनः चतुःषष्टिसहस्रस्त्रीणां भर्ता इति श्रूयते; तथापि स तासु समानानुरागः इति वा । 'कियत्यः सन्ति वल्लभाः ?' इति प्रश्नो वा; अल्पसंख्याका एव इति भावः ।

450. प्रधानता, *scil.*, भोजमहिषीणां मध्ये ।

453. अन्यदा = एकदा । कलहन्तौ, for कलहायमानौ ।

455. कलहते, for कलहायते, or °यति (according to a few grammarians). Cf. कलहायसे, in verse 472 below. स्फोटय etc., 'put an end to our quarrel and make us have divorced or partitioned'. Or स्फेटय, 'remove'. Cf. the Prākritic फेडिअ ।

456. गृहलक्ष्मीः, 'property in the house'. न्यायमार्गे, 'according to law'. मम आयाति, 'belongs to me'.

458. येषां प्रसवव्यया = यत्प्रसवव्यथा । यया, *viz.*, 'मात्रा' P1 and P3. अन्यथा कृता *i. e.*, अस्वामिनी कृता ।

459-60. निष्पन्ने, फले निष्पन्ने सति, तत्फलं स एव, कर्षक एव गृह्णाति इत्यर्थः । टङ्की = टङ्क । टङ्कघुत्कीर्णाक्षरैः, 'in letters engraved by chistle (on stone)'.

461. भूपोक्तं च तया कृतम्: 'अपत्ये च पितुः किल' इति भूपोक्तिमनुसृत्य तया अपत्यादिकं दत्तम् इत्यर्थः । कामिके = कामप्रदे ।

462. झंपां ददौ : a Prakritic construction meaning 'jumped'.

463. पञ्चोच्चग्रहसंभूता, *i. e.*, पञ्चोच्चग्रहसमये संभूता ।

465. यत् कथ्यते इत्यादि-यत् कर्तव्यत्वेन कथ्यते, तत् वचः न लुप्यते, न विरुद्ध्यते इत्यर्थः । मिष्टा, 'sweet'.

466. गृह्यताम्, i. e. क्रीयताम् ।

367, घोटक, 'a horse'.

469. धन = 'सुखम्' P1 and P3. निजाश्वानित्यादि—'अप्यस्मदीयाश्वाः सुखिनः ?' इति तत्स्वामिनः सूत्रधारः पृच्छति स्म इत्यर्थः ।

470. श्रावयत्यपि लोकेभ्यः, for (अमुं वृत्तान्तं) लोकान् श्रावयति स्म ।

471. झगटकः, 'a quarrel'.

473. स्थिरीभाव्यम्, *Scil*, मन्त्रलेन; राजसंनिधौ जयो ममैव भविष्यति इति भावः ।

474. लोकेषु न निवर्तते, 'does not get settled among the people themselves or according to the practice'.

479. गजदन्तावित्यादि, etc. The tusks of the elephant start alike, grow alike and are treated alike. In the same way here the judgement in the case of the sparrow (चटिका) is also the judgement in the case of the horses, as both of them are based on

538. नगमुक्तिः – See note on Prastāva I, verse 23. मंजानात् = 'जन्मदिनात्' P1 and P.3

540. गृहकिशोराः, *i. e.*, भुपास्वादगर्भ प्राप्तानां गृहे विद्यमानानां तुरगीणां किशोराः । एवं = वक्ष्यमाणप्रकारेण ।

542. विनिमितः, in the sense of विशेषेण अलंकृतः ।

543. सुखासन, 'a palanquin'.

546. प्रत्यायस्व, 'convince (me with proof)'.

549. A story to similar to that of Satyavati, above told, is found among the folk lores of Tamilnāḍ·

550. मदनमञ्जरी, *i. e.*, 'चन्द्रसेनकन्या' P1 and P3,

551. यतः, *i. e.*, यतोऽवधिदिग्मम् । नरइत्यादि–अन्यो नरो न नरणीयो मम; हि, यतः, सः सहोदर-समो मे, सहोदरत्वेन समाश्रितः, इत्यर्थः ।

555. Cf. Prastāva I, verse 5.

556. अपश्यत for अपश्यत् ।

560. वामदक्षिणे, for वामदक्षिणपार्श्वयोः ।

561. शीर्षे, *i. e.*, शीर्षोपरि । सीमान्ताः = सीमान्ताः

562. सः *i. e.*, अमात्यः । नियम् इत्यादि — नमस्कृत्योपविष्टममात्यं नित्यं, कृतप्रश्नं, पृच्छति इत्यर्थः ।

563. दाराः = 'स्त्री' P1 and P3. वाह्यानाम् = 'अश्वानाम्' P1 and P3.

564. सः *viz.*, 'मन्त्री' p1 and p3.

565. तल्लग्ने, *i. e.*, विवाहशुभलग्नविषये ।

568. सन्तोष्य = सम्यक् तोषयित्वा ।

569. चाल्लितः for चलितः । सामान्यैः, used in the sense opposite to सोत्सवैः found in verse 374 above.

571. भोजः स्थापित इत्यर्थः ।

572. The *Pāiasddamahaṇṇavo* recognises the word रत्त (Sanskrit रत्त) in the sense of स्थित ।

573. यदि शिक्षां मे करोषि *i. e.*, यदि मयोपदिश्यमानमनुतिष्ठसि ।

574. तेन, *viz.*, रूपचन्द्रेण ।

575. लग्न is used in the sense of 'marriage' as in Hindi. तुरगेन etc. According some Jain custom, the bridegroom is to ride on a horse to the house of the bride on the eve of the marriage.

576–77 चतुरिका—A Sanskritized form of the Deśi चउरिया, (meaning 'a marriage hall') and used in the sense of 'a four-pillared *maṇḍapa* temporarily built for celebrating the marriage in the house'. Cf. the Gujarati *chauḍi*. फेरक, 'going around'. Cf. the Deśi फेरण, Hindi फेरना and the Marathi फेर, फेरा। फेरकत्रयम् : During the marriage function, the Jaina bride and bridegroom are expected to make together *pradakshiṇas* around fire and four decorated pots, one by one, kept in the *chauḍi*. or *chaturikā* and to perform *dāna* of each pot, to some near relatives. This ceremony is called *pheri* or *pherakā*. It is said that unless the fourth *pheraka*, viz., the

-wards Bhoja must have learnt the art of the *Parakayapravesa,* stayed as a parrot in the court of Chandrasena at least some months, got back his body, married Madanamañjari and then got through her the son, Vatsa. Therefore Devaraja must have been older than Vatsa at least by six or seven years and not by three years. And it is obvious that the author is not aware of this fact.

6. दिनैः स्तोकतरैः–अचरैर्गतैः ।

7. Note the ages of the princes. See above. वार्षिकाः for वर्षीयः ।

8. तत्पुत्रयोरुभयोरपि या प्रीतिः तदा अत्यधिका इत्यर्थः । तेनतोरिव = तेनतन । तेषाम् for तयोः ।

9. अकित्तिमम् (Prakrit) = 'अकृत्रिमम्' P[1] and P[3] .

11. प्रान्तिके = 'समीपे' P[1] and P[3] .

12. मंतुष्ट इति कथितमित्यर्थः ।

13. न जागरणीयाः i. e. न जागरणीयाः, used to mean 'should not be awaken'.

15. (N) कुर्वन् भानुमति भानुमति, i. e. भानुमति ! भानुमति ! इति शब्दं कुर्वन् : One syllable is elided to suit the metre. This verse gives a clue to (i) why Bhoja should be so angry with his beloved sons; (ii) why he should all on a sudden ask them to bring Bhānumatī and (iii) how he was able to identify when he first saw her (verse 221 below). It is evident here that he was very happy with Bhānumatī in his dream when he was aroused by his sons.

16. Note the Localism in जागरितोऽहं निमित्तः । कुट्टाकिः, viz., 'राजा' P[1] and P[3] .

17. देशपट्टकम् i. e. देशान्निष्क्रमणार्थं प्रकटितम् आज्ञापट्टकम् । देशपट्टकमदात्, 'ordered banishment'.

19. शिक्षावन् 'giving instructions' or 'desirous of being able to do anything wanted'.

20. इति, 'as follows'. प्रमाणार्थम्, 'to honour'

21. The Prakritic कोमल, means सुकुमार, 'tender'. पीड्यमानो, i. e. पीड्यमानोऽपि ।

23. Dhanañjaya is the name of the merchant बोहित्थ, 'a ship'.

26. अद्यापि बालको, 'still quite young'. जलान्त, = मध्ये समुद्रम् । सन्देहः i. e., प्राणसन्देहः ।

27. वेलायाम् = 'अवसरे' P[1] and P[3] , अर्थात्, आपदवसरे ।

28. सेवकाः i. e. 'श्रेष्ठिसेवकाः' P[1] and P[3] . सार्थीय, 'one belonging to the band of the merchants'. अतिवाह्यते for अतिवहति ।

29. वाहन, 'ship'. पवनादुत्सुकः पोतः, 'a ship, active due to the wind'.

31. लग्नाः, 'started'. नाङ्कर, 'an anchor'. Cf the Persian *langar,* the Desi लंगर, meaning 'an anchor'. एकः, इत्यादि—एकः (उद्धर्तुं) महसाऽऽयातः, द्वितीयोऽप्यायातः एवं सर्वेऽपि; तथापि स नाङ्करो न निःसृतः इत्यर्थः ।

32. न निःसरेत्, *Scil.,* नाङ्करः । स्वस्वगोत्रीयाणां, वंशीयानां मरुतां, देवतानां, ततेः, समूहस्य इत्यर्थः ।

23. पूर्वोक्तं वचनम्, i. e, the words in verse 27 above.

34. इति, goes with ऊचे in the previous verse. सः पुमान् i. e. देवराजः ।

37. मोक्षामि for मोक्षयिष्यामि ।

persons to carry. (*Prabandhachintāmaṇi*–op. cit.–p. 63). Probably Rājavallabha thinks that the temple with the charter of Bharata must have been built by him. Cf. also note on verse 47 above.

53. चतुर्विशजिनाश्रितम्, obviously to mean चतुर्विंशतिजिनैराश्रितम् । As in verse 49 above, the पूरणप्रत्यय serves no purpose here.

The Jainas believe that each of the *sarpiṇis* preceding to the present one had twenty-four Tīrthaṅkaras, just like the succeeding *sarpiṇis* will be having. Consequently there is no historical anachronism in describing that Bharata, the son of the first Tīrthaṅkara built a temple for the twenty-four *Tirthankaras*. Similarly there is also no anachronism in the description of Sagara as a contemporary of the second *Tirthankara* Ajita and as the worshipper of the twenty-four *Tirthankaras* (See verses 73-74 and 101-103 below).

55. भरथ s. a. भरत. For the conquest of the six *khaṇḍas* by Bharata, see the *Harivaṃsa* (op. cit., chapter XI).

56-57. अस्य *viz* भरतस्य । निधानानि = निधयः । करे जातानि 'came to (his) hand'.

Cf. चतुर्दशमहारत्नैर्निधिभिर्नवभिर्युतः । निःसपत्नं ततश्चक्री बुभोज वसुधां कृती ॥
कालश्चापि महाकालः पाण्डुको माणवस्तथा । नैसर्पः सर्वरत्नाख्यः शङ्खः पद्मश्च पिङ्गलः ॥
अमी पुण्यवतस्तस्य निधयो निधना नव ॥

Harivaṃsa (op. cit., chapter XI, verses 103, 110-11).

57. पिण्डविलासिन्यः, 'harlots staying for food (and cloth)'.

58. रथमद्गजवाजिनाम्: Note the treatment of the compound as चतुर्द्वन्द्व ।

59. लासमंवद्धवाजिन्; 'a horse kept for sports'.

60. एकदा for एकत्र ।

63. This verse with slight variations is met with among the imprecatory verses in the inscriptions.

64. घातिकर्माणि घातितानि, कामक्रोधादीनि ज्ञानावरणानि नाशितानि इत्यर्थः । Cf. the Prakritic घाइकम्म । पुराभवे = पूर्वजन्मनि । अन्तरङ्गाश्च वैरिणः, i. e. 'क्रोधाद्याः' P[1] and P[3]. Cf. निहत्य घातिकर्माणि केवलज्ञानमाप्तवान् । *Bṛihatkathākosa*, Śiṅghi Jain Series No. 17, p. 320, verse 15).

65. भावना = ज्ञानजन्यसंस्कारविशेषः । प्रमाणेन, in the sense of प्रमाणस्य आधिक्येन । शुक्लध्यानस्य = शुद्धस्य (= अचञ्चलस्य) ध्यानस्य । Cf. प्रातिहार्ये कृते देव्या शुक्लध्यानगतो मुनिः । *Bṛihatkathākosa* (loc. cit.)

66. नादेनति-सहयोगे तृतीया । वर्ण, 'colour'. रत्नवृष्टीः for °वृष्टिः । केवलिसत्कृतिः 'as an honour to the omniscient *viz.*, Bharata'.

67-68. Cf. द्वात्रिंशत्त्रिदशेन्द्रैः स (भरतः) कृतकेवलि पूजनः । (*Harivaṃsa*-op. cit. Chapter XIII, verse 4); and also कल्पवासिनः १२, भवनवासिनः १०, व्यन्तराः ८, सूर्याचन्द्रमसौ इति = ३२ (Ibid. note).

69. सौधर्मेन्द्र, 'the chief of the 10 Indras of the Heaven'.

70. जिनेन्द्रजम्, used in the sense of जिनेन्द्रप्रतिमावत् । चिन्ता, 'care'.

71. प्रोक्त्वा, for प्रोच्य । हरिः = 'इन्द्रः' P[1]. सौधर्मम् = 'देवलोकम्' P[1].

72. The reading of B³ *viz.*, पञ्चाशल्लक्षकोटीनां सागरेषु, follows the popular belief of the Jaina. For meaning of सागर, see note on verse 46 above.

75. वितरणम् = 'दानम्' P¹ and P³. धनभरम् = 'बहुधनम्' P¹ and P³. तनुरुहम् = 'पुत्रम्' P³. श्रयति न = 'नाप्नोति' P¹.

75-76. These two verses appear to be quotations.

86. शासनदेवता, 'a *devatā* obeying the *śāsanas* or orders of the Jina'.

89. व्यतिकर, 'incident'.

91. This verse is said to be in the *Śukasaptati* (*Subhāshitaratnabhāṇḍāgāra*, p. 90, column, 1, verse 19).

93. जात = 'पुत्र' P¹ and P³. The first half is taken from a verse in the *Pañchatantra* (op. cit., verse 27),¹ and the other half runs : आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा । But the second half is from a verse attributed to Bhartṛihari (*Nītiśataka*, verse 25) of which the first half goes : परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।

93. This verse is found in the *Subhāshitaratnabhāṇḍāgāra* (op. cit., p. 90, column 1, verse 9)

95. जलोदरमिव, 'as if it had the disease of dropsy'.

96. घृतप्लुतरुग्णान्तरे 'in the broken pieces (of pots) filled with ghee'. रुग्ण is from the root रुज् 'to break'.

99. This verse appears to be a quotation. The fourth *pada* is incomplete.

100. Here the author appears to have confounded the Ashṭāpada, or the Mount Kailāsa, with S'rīpura. Cf. note on verse 47 above.

104. कीर्तनं पूर्वजानाम्, 'The fame-producing work' *i. e.* 'the temple, (built) by the ancestors'.

105. पञ्चमारकजाः–कालचक्रस्य पञ्चमे आरके, दुषमाख्ये आरे जाताः इत्यर्थः । षष्ठारकजानामपि भविः कैमुतिकन्यायेन । तीर्थं, 'holy place'. न विधीयते in the sense of न कर्तव्यः ।

107. The things in which the author approves of *vilamba* or delay, are actually prohibited ones.

108. भवनराट् 'the lord of the *pātāla*, or nether part of the world'.

110. दण्ड, 'scepter'. चक्री *i. e.* सगरः ।

111. भुवनेशः *s. a.* भवनराट् ।

112. बोलित, *s. a.* the Prakritic बोलिअ, 'sunk'.

116. This verse appears to be a quotation.

124. नरे तस्य प्रेक्षणे च द्विष्टा, द्वेषवती इत्यर्थः ।

125. एवं विधा मे सुता इति मत्वा इत्यर्थः ।

127. विभोः = 'देवस्य' P¹ and P³.

128. संप्रदायेन संयुता : See note on Prastāva IV. verse 2??.

129. क्षमम्. *viz.*, 'देवः' P¹ and P³.

131. घृतवैश्वानरन्याय : 'the principle of fire and ghee'.

132. दिवौकसि = 'स्वर्गे' P¹ and P³.

133. विलापं कुर्वती वक्ते : Cf. note on Prastāva IV. verse ???.

134. एवम्, 'in the following manner' सन्निधौ = 'समीपे' P^1.

135. हृष्टहृत् = 'हृष्टमना:' P^1 and P^2.

140. जीवापय, for जीवय ।

141. वदेत् for अवदत् । आदि = 'गृहाण' P^1 and P^2.

146. The meaning of the second half is not quite clear. Probably it means : बहोरपि जीवितात् (यदि) सुन्दरं दृष्टं, (तर्हि) बहु दृष्टं स्यात् (इति) जनोक्तिः ।

148. सामानिकैः *i. e.* (वस्त्राभरणस्वकान्त्यादिभिः) समानैः ।

150. क्व भवः ? किं वा (करोषि) ? कोऽसि ? किमर्थमागतः ? इत्यर्थः ।

157. कुर्वे, *scil.*, 'अहम्' P^1 and P^2.

158. निर्लोभत्वं समादाय = 'लोभं परित्यज्य' P^1 and P^2.

159. This verse is found in the *Pañchatantra* (op. cit., *Tantra* II, p. 127, verse 151).

160. This verse appears to be a quotation,

164. ते = 'स्त्रियो' P^1 and P^2 .

165. Note the perenthesis 'सिद्धे कार्ये etc.'

166. शृङ्गस्था शृङ्गस्थात्, *i. e.* 'पूर्वस्मात्' P^1 and P^2 .

169. This verse is founn in the *Subhāshitaratnabhāṇḍāgāra* (op, cit., pp. 90-91, verse 6).

170. भानुमत्याः वृक्षायाश्च वियोगः इत्यर्थः ।

173. Gomukha, the male spirit, and Chakreśvarī, the female spirit are said to attend on Ṛishabha.

174. चक्रेश्वरीपुरः, for चक्रेश्वर्याः पुरतः । 'लङ्घनम्' 'fasting'.

176. हे देवि = 'हे चक्रेश्वरि' P^1.

177. Note the local influence in the construction भीतिमदर्शयत्, in the sense of भीतिमजनयत्, 'frightened'.

178. कस्यापि *i. e.* कस्मादपि । सत्यतः 'in his true form'.

179. खटिका, 'chalk'.

180. यक्षः *i. e* गोमुखः । सत्क, 'belonging to'; cf. the Pāli सन्तक ।

181. गम्यते used to mean गन्तुं शक्यते ।

182. पश्चात् चतुरङ्गचमूयुक् त्वं यथेच्छं गच्छेत्यर्थः ।

189. व्यजिज्ञपत्—वत्सराज इति शेषः ।

192. 'सर्वेषां पश्यतां (i. e. सर्वेषु पश्यत्सु) मया झंपा दत्ता' इत्यारभ्य, 'यावदागां हिते पुरः' इति निगमय्य सर्वोऽपि वृत्तान्तः कथितः इत्यर्थः ।

193; एकविंशतितमे, for एकविंशे । अदः, i. e. वक्ष्यमाणम् ।

195. इति, 'in the following manner'.

197. भ्रंश, used in the sense of विलम्ब । But cf. स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता (*Pamchatantra,* op. cit., Tantra III, p. 177 verse 232).

198. कृतनिश्चयः आसीदित्यर्थः ।

199. स इदं वचनमब्रवीत् इत्यर्थः ।

200. पृष्ठचाञ्चल, probably means पृष्ठचञ्चल । पृष्ठि, 'back side.' अञ्चल, 'border of the garment'. कन्यायाा मातुदक्षिणम् used to mean कन्याया दक्षिणमञ्चलं मातुरर्थम् ।

201. अस्माकम् *i e.*, अस्मान् ।

202. वनभूमिषु—निर्धारणे सप्तमी ।

203. रूपकान् = रूपान्; note the gender. लिखयामास for लेखयामास । गजादिसदृशान् रूपान्, आकृतिविशेषान् लिलेख इत्यर्थः ।

204. येन येन for यं यम् ।

205. परिच्छदा जाता इत्यर्थः ।

206. सुखासन, 'a palanquin'.

207. ग्रामाकर = ग्रामसमूह ।

209. विस्मयित for विस्मयं प्रापित or विस्मित । ज्ञापयन्ति इत्यादि–'कोपि नृपो भवेत्किम् ?' इति भूपं पृष्टवन्त इत्यर्थः ।

210. कर्तेमम् etc., for कृत्वेमं निश्चयं प्रेष्यं प्रेषयामास पूरुषम् ।

211. प्रहितः = प्रेषितः ।

215. उक्तम् = "वचः" P1 and d3.

216. तयोः *viz.*, कुमारयोः ।

217. तत्का युत्थितः, for तत्काले घोत्थितः ।

218. हट्ट, 'market place.'

221. बाला, *i. e.* 'स्त्री' P1 and P3. भुक्ता etc., cf. note on verse 15 above.

222. वराचि, for वररुचि to suit the metre. लग्नेन for लग्ने ।

223. तौ, *viz.*, 'पुत्रौ' p1 and p3. चतुर्दिशम् = चतुर्दिक्षु ।

226. कथयिष्ये, *Scil.*, 'अहम्' P1 and P3.

227. 'देशपट्टे गतौ' इत्यारम्य यावद्विवाहं, विवाहपर्यन्तं, सर्वो वृत्तान्तः कथितः इत्यर्थः ।

229. उद्धरितम्, a Prakritic form for उद्धृतम् । जीवापितः = जीवमितः, in the sense of जीवितः ।

231. Note the construction प्रवेशमसृजत्, for प्रवेशमकरोत् or प्राविशत् ।

232. भट्टाज्जयजयारवैः for भाट्टैर्जयजयारवैः or भट्टानां च जयारवैः ।

235. उद्वासयितुमित्यादि–सीमान्तराजैः देशं, देशस्यजनम् उद्वासयितुं, देशान्निष्कासयितुम्, आरब्धमित्यर्थः ।

236. दापयामास = कारयामास ।

238. ताप, 'fever'. संताप 'burning'

239. समाधिः = (मनसः) समाधानम् ।

240. आलोचम् = आलोचनम् ।

242. विलम्बः कार्यते भूयात्, in the sense of विलम्बेन किं भवेत् । शशिवदन इति [illegible] भानुमतीविशेषणस्य ।

244. कृत्वा सुन्दरवर्णकम्, 'having prepared good or beautiful paint'.

246. मे विस्मृतम् *i. e.* मया विस्मृतम् ।

247. कूर्चिका, 'a brush'.

151. (यथा) न कुत्रापि अन्तरं (*i. e.* व्यवधानं) भवेत्, (तथा) कर्णाकर्णतयानीत्वा इत्यन्वयः ।

252. तिलम्, 'a mole (like *tila*)'.

258. आयतिसुन्दरां शिक्षाम्, 'advice (fetching) good in future'.

260. यत्र प्रदेशे त्वयि स्थिते, तत्र नामापि न श्रूयेत राज्ञा, तत्र गच्छ इत्यर्थः ।

263. द्वितीय, 'next'.

264. कुमारः, *viz.*, 'देवराजः' P^1 and P^3.

265. ताडितः, probably for कशितः *i. e.* कशया ताडितः ।

266. तदा चतुर्गुणीभूय etc. for तदा चतुर्गुणीभूतवेगाद्भूमिमल्लङ्घयत् । योजनानि इत्यादि—अश्वेन अयं कुमारः कियन्त्यपि योजनानि गत्वातिभीषणेऽरण्ये नीत इत्यर्थः ।

267. समुत्प्लुत्यावलम्बितः, 'jumping he alighted from the horse'. Note the use of अवलम्बितः, in the Active sense.

269. प्राणमुक्तः = प्राणैर्मुक्तः *i. e.* मुक्तप्राणः ।

272. अत्र = 'अटव्याम्' P^1 and P^3.

273. शीतलैः वारिभिः, जलैः पूर्णमित्यर्थः ।

274. वस्त्रपूतं जलम्, 'water filtered by means of a cloth'.

276-77. समारूढः = 'चटितः' P^1 and P^3, 'reached'. The Locativs द्रुमे and तरौ are more suitable to चटितः than to समारूढः ।

The author appears to think that व्याघ्र and सिंह are synonyms. And he uses वानर and कपि (see verses 278 279, etc. below) in the sense of ऋक्ष, or 'bear', a word which is used in the legend of Vikramāditya in this context. (cf. note on verse 380 below). Cf. also भक्षयिष्यति, and ऋक्षव्याघ्रादिजां वाचम् respetively in verses 299 and 380 below.

277-78. Note the construction मा कुरु and मा भक्षयेत् ।

281. हरिः = 'सिंघः (*i. e.* सिंहः)' P^1 and P^3

284. क्षणे in the sense of समये । शेहि for शेष्व । पूर्वप्राहरिक, 'the first *prāharika*'.

288. नृणां वाक् सारा अस्ति चेत्, तदा स्ववर्गपरवर्गाभ्यां (*i. e.* स्ववर्गीयः परवर्गीयः इति विचारणया किं स्यात् ? न किमपि इति भावः ।

290. अयम्, *viz.*, अहम् । भयात् for भयम् । तुभ्यम्, for तव ।

291. Note भद्र ! and दुष्टे, जीवे uttered in the same breath.

293. मयका = मया ।

294. प्रपंची, 'cunning'.

295. कालिन्द्याम् = 'यमुनायाम्' P^1 and P^3. श्यामाङ्गः = काकः । असौ *viz.*, सिंहः ।

296. Note सुष्ठु used as a noun and in the sense opposite to दुष्टकार्यम् ।

298. मृष्या = मिथ्या ।

299. Note the expression वानरो भक्षयिष्यति त्वाम्; cf. note on verses 276-77 above.

300. Note the compound मत्पुरः ।

302. इदं कार्यम् *i. e.*, विश्वस्तस्य पातनरूपं कार्यम् ।

305. Note the phrase वाचा मे याति in the sense of मे वाचा मृषा भवति। एवमित्यादि–एवं, पूर्वोक्तप्रकारेण, उक्त्वा, लगित्वा समीपमागत्य, कुमारस्य कर्णे दारुणचीत्कृतिं ददौ, अकरोत् इत्यर्थः।

306. ग्रथिलस्य, पिशाचावेष्टितस्य, चेष्टा संजाता अस्य इति ग्रथिलचेष्टितः, 'behaving as if possessed by a devil'.

307. पदानुसारेण 'by following the foot marks (of the prince).' पृष्ठौ = पश्चात्।

309. एकस्मिन् सैनिके कुमारं क्षेमं पृच्छति सति कुमारः विसेमिरा इति प्रजल्पति इत्यर्थः। प्रजल्पति and भाषति (Parasmaipada as in the epics) : *Scil.*, 'कुमारः' P[1] and P[3].

310. Note the construction वक्त्रं स्वं स्वम् etc., in the sense of 'looked at the face of each other'.

312. सुखासन, 'a palanquin'.

313. ददौ, *Scil.*, कुमारः।

315. इति चित्ते दोलायमानः, विविधं चिन्तयानः, इत्यर्थः।

317. उपायः *i. e.* रोगनिवृत्त्युपायः।

319. कुरुते for कुर्यात्।

322, कृतनिर्भयः for निर्भयः कृतः।

324. आनेष्यामि *i. e.* आनयिष्यामि।

325. शोध = शोधन, 'searching'.

326. ग्राह्यः for ग्रहीतव्यः। बर्करः, 'a lamb' स्थूलमित्यादि-यः बर्करं स्थूलं कृशं वा कर्ता, करिष्यति, स इत्यर्थः।

327. शुश्रूषितः, '(if) attended upon'.

330. बोत्कटः 'a goat'.

331-32. स्थूलः इत्यादि–केषां (निकटे स्थापितः बोत्कटः) स्थूलः केषां वा कृशः, केषां वा सदृशाः (i. c. पूर्वसदृशाः) इति तोलिताः, तुलायामारोप्य परीक्षिताः ते बर्कराः नोत्तरन्ति; परन्तु नन्दकग्रामसंगतो बोत्कटः, तोलितः सन् 'समः' इति उत्तीर्णः इत्यर्थः। तेपि *viz.* नन्दकग्रामवासिनोऽपि। द्विजं ज्ञात्वा, i. c. द्विजं तत्रस्थं ज्ञात्वा।

333. स्वरूपम् = वस्तुस्थितिम्। समम् = समकालम्।

337. क्रियते किम् इत्यादि-किं कर्तव्यं किं वा वक्तव्यमिति ते न जज्ञुः; किं बहुना, सर्वोऽपि देश-जनः, उपद्रुतः, पीडितः इत्यर्थः।

340. प्रेष्येते, for प्रेषयिष्येते।

341. प्राप्तः, गतः, *Scil.*, 'वररुचिः' P[1] and P[3].

342, या महादृढा विलोक्यन्ते ता वालुकारज्जवः प्रेष्या प्रेषितव्याः इत्यर्थः।

343. लञ्चा, 'bribe'.

346. एका रज्जुः *Scil.*, 'वालुकामयः' P[1] and P[3]. दृष्ट्वानेष्यामः सन्, 'we will return back (the rope) after seeing it';

352. नारूढैः *i. e.*, वाहनमनारूढैः।

356. ताः = प्रजाः = जनान्।

357. द्विजे, *i. e.* द्विजस्य प्राप्ते।

359. सुखासन, 'palanquin'. पटहो मम वाद्यते—from the context it appears to be described that Bhoja had kept a drum at Dhārā to be sounded by those who wanted to meet the king or rather who came forward to cure Devarāja of the disease.

360–61. Note the phrases पटहं स्पृशति and पटहो धृतः both probably in the sense of 'पटहो वादितः'

367. It may be noted that this verse together with the verses 370, 373, 380, 382 are found in the *āmukha* of the legends of Vikramāditya which is the source of the present episode of Devarāja to a great extent. It may also be observed that the first letters of these four verses, sung by Vararuchi to cure the prince, put together, constitute the meaningless expression विसेमिरा, constantly repeated by Devarāja. Moreover verse 387 is also quoted in the *Hitopadeśa* (op. cit., p. 142, verse 55).

370. See adove.

371. वसन्तमेवं गिरागह्वरगुहं मुने : cf. note on Prastāva IV, verse 313, and verse 133 above.

372. त्वकम् = त्वम् ।

376. See note on varse 367 above. This verse is also found in the *Pañcha-tantra* (op. cit., p. 94, verse 454).

375. रकारम् = रेफम् ।

376. See note on verse 367 above.

377. एवं श्रवणमात्रेण *i. e.* स्वस्यदेवराजमुखात् सर्वमपि वृत्तान्तम् एवम्, ईदृशम्, इति श्रवण-मात्रेण ।

803. See note on verse 367.

382. P¹ and P³ comment 'भानुमत्याश्चिह्नकं (*i. e.*, तिलं) यथा ज्ञातं तथेदमपि'। भानुमती *i. e.*, 'भोजराज्ञी' P¹ and P³. This vere is found with some variations in the आमुख of the legerd of Vikrama.

385. यवन्यां दूरीकृत्य = 'जवनीं दूरीकृत्य' P¹ and P³.

388. Bhoja had already married Bhānumatī (verse 222 above) and had spent some happy days with her (verse 234 above). Then he marched against his enemies and, during the course of the expedition, ordered the execution of Vararuchi. Has the author forgotten all these ? Or, does he want to indicate that, suspecting Bhānumatī's fidelity, Bhoja had divorced her and now, having known her innonecence, he married her again ?

It is to be noted that the story of Bhānumatī's picture is found, with some variations in the *Kathāmukha* or the introduction of the legends of Vikrama. In that story–told to Bhoja by his minister–the king Nanda of Viśālā plays the part of Bhoja of the story told by Rājavallabha; Nanda's beautiful wife Bhānumati figures only as an earthly womon; Devarāja's counter part is Jayapāla; and Śatānanda, in the place of Vararuchi, does not paint the picture, but points out to the king the absence of the mole on the private part. in the picture of Bhānumatī.

INDEX

To

Proper names occuring in the text.

[The Roman figures indicate *prastavas* and the Arabic numerals denote verses.]


LIBRARY

INDEX

To

Introduction

[The Roman numerals denote the pages in the Introduction.]

N

P

R

S

P. ३६,	f. n. ४	,,	The intended reading of the fourth foot may be गुणिजनगुणिमूढं भोजभूपस्य दानम्	
P. ४४,	v. ७१	Read	योगाद्	for योगाद्
P. ४६,	v. ९९	,,	गीतदर्शितनः	,, गीतदर्शी तनः
P. ५६,	v. ३७	,,	‘°स्तु’	,, °स्तु°
P. ५७,	v. ५३	Read	स्वाभिन्ना	for स्वाभिन्न
P. ७०,	f. n.3	,,	पुण्यांकुरस्य	,, पुण्याकुरस्य
P. ७८,	v. ३०८	,,	तस्य गामि	,, नस्यगामि
P. ८०,	v. ३२३	,,	तर्जन	,, नजन
P. ८५,	v. ३८८	,,	कार्योत्सर्गं	,, कार्योत्सर्गं
P. ८८,	f. n.6	,,	पुरीषकः	,, पुरीषके
			मेनीन	,, मेनीन
P. ८९,	v. ४३१	,,	मुक्तकलाप	,, मुक्त (कला) लाप
P. ९२,	v. ४६५	,,	कार्यं	,, कार्ये
P. ९५,	v. ५०२	,,	वासवेदेवे	,, वासदेवे
P. १२५,	v. २८२	,,	निजदर्शन	,, नितदर्शन
	v. २५३	,,	दत्वो	,, दत्वो
P. १२७,	v. २७८	,,	सर्वथापतिसुन्दराम्	,, सर्वथापति सुन्दराम्
P. १३३,	v. ३३०	,,	धाराणां	,, धराणां
P. १४१,	n. 81	,,	‘Cf. the names like *Chūḍāmaṇisāra, Chūḍāmaṇisāraṇikā*’	,, ‘Cf. *Chūḍāmaṇi Sāra*. The names like *Chuḍāmaṇisāraṇikā*’.
P. १४२,	n. 115	,,	‘After’	for ‘Atier’.
	n. 126	Add	‘This verse is found in the *Vedāṅgajyautisha* (Ed. by Dr. R. Shamasastry, 1936 verse 4). But, there the 3rd foot reads: तद्वद्वेदांगशास्त्राणाम्’.	
P. १४३,	n. 141	Read	‘having heard Muñja's reply’	for ‘having Munja's reply’
		,,	‘elephants’	,, ‘elephant.’
		,,	‘सिंहो’	,, ‘सिह्नो’
P. १४४,	n. 179	Read	‘made’	for ‘mede’.
	n. 182	,,	वामपादमनु तिष्ठति	,, वामपादमनुतिष्ठति
P. १४५,	n. 219	,,	‘verse 221 below’	,, ‘verse 22 below.
P. १४६,	n. 230	,,	रद्	,, रद
	n. 237	,,	‘verse 235’	,, ‘verse 236’.
P. १४७,	n. 260	,,	‘modern’	,, ‘madern’.
	n. 273	,,	‘*Chhedo*’	,, ‘*Chhede*’.
	n. 277	,,	Omit the word ‘lekha’	

P. १४८,	n. 279	Read	'281'	for	'282'.
P. १४९,	n. 304	„	'P¹ and P³'	„	'P¹ and³,.
	n. 314	„	Omit the bracket before '*Prabandhachintamani*.		
		Read	'*Prabhāvakacharita*'	for	'*Prabhavakacharitra*..
	n. 316	„	कीर्तिप्रदं	„	कीतिपदं
P. १५०,	n. 17	„	'Pratishṭhana, Patiṭṭhāṇa, Paiṭṭhāṇa, Patiṭṭhāṇa, Paiṭhāṇa'	„	'*Pratisthana, Paitthana, Patitthana, Paithana.*'
P. १५१,	n. 31	„	'Dhanapāla'	„	'Dharmapala'.
	n. 43	Add	'Note the construction भूपौं यथाविधि पूजां कृत्वा, [illegible] समुपागता'		
P. १५२,	n. 1	„	अङ्क	„	अङ्त
P. १५४,	n. 67	„	'Verse'	„	'(Verse)',
P. १५५,	n. 152	„	साध्या: कथितं	„	साध्या: । कथितं
P. १५९,	n. 170	„	'Badarikasiama'	„	'Badarikasrama'.
P. १६०,	n. 224	„	'mark'	„	'mork'.